

Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
Class no. 891.3
Book no. P83V1
Reg no. 789

गंगा-पुस्तकमाला का १६२वाँ पुष्प

विजय

(प्रथम भाग)

लेखक
श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव
बी० ए०, एल्०-एल्० बी०
(विदा, विकास और आशीर्वाद के यशस्वी लेखक)

—:o:—

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द ३॥)] सं० २००१ वि० [सादी २॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

हमारी अन्य शाखाएँ—

१. दिल्ली—दिल्ली-गंगा-ग्रंथागार, १६२३, चर्खेवालाँ
२. प्रयाग—प्रयाग-गंगा-ग्रंथागार, गोविंद-भवन, शिवचरणलाल रोड
३. काशी—काशी-गंगा-ग्रंथागार, मच्छोदरी पार्क
४. पटना—पटना-गंगा-ग्रंथागार, मछुआटोली

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ


-प्रेमोपहार-



स्वर्गीय श्रीमान् रायबहादुर सर सुखदेवप्रसादजी साहब काक केटी०, सी० आई० ई० ठाकुर साहब ठिकाना जसनगर (मारवाड़), भूत-पूर्व दीवान तथा मुसाहिब-आला जोधपुर और उदयपुर-राज्य की पुण्य स्मृति में, कृतज्ञता-स्वरूप, सादर समर्पित ।

Kamlesh

(१)

"मन्नो !"

मन्नो का पूरा नाम था मनोरमादेवी।

मा ने उत्कंठित दृष्टि से मनोरमा की ओर देखते हुए कहा—"क्यों, आज कॉलेज से इतनी जल्दी क्यों चली आई ? अभी तो एक बजा है।"

राजेश्वरी अपनी उमँगती हुई हँसी को छिपाने की चेष्टा करने लगी, और उधर मनोरमा की आँखों और कपोलों का बुरा हाल था। आँखें कपोलों की ललाई देख-देखकर नत हुई जा रही थीं, और लाज के पुतले कपोल तो कटकर लहू-लुहान हुए जा रहे थे। मनोरमा चुपचाप अपने कमरे की ओर जाने लगी। वह दौड़कर एक ही साँस में ऊपर भाग जाना चाहती थी, किंतु न-मालूम किसने उसके पैरों में लाज की बेड़ियाँ डाल दी थीं। वह मुँह झुकाए सीढ़ियों की ओर बढ़ी।

राजेश्वरी भी आज प्रसन्न थी। हर्ष का स्रोत उसके अंग-प्रत्यंग से उमड़ा पड़ता था। उसने मनोरमा को चुपचाप जाने दिया, और मन-ही-मन हँसती हुई दूसरे कमरे में चली गई।

राजेश्वरी अभी दूसरे कमरे में पहुँचकर मेज़ पर से एक पत्र उठा ही रही थी कि उसके पति बाबू राधारमण ने उसी कमरे में एक ओर से प्रवेश किया। राजेश्वरी ने सिर उठाकर देखा, और चकित होकर पूछा—"अरे, तुम भी आज इतनी जल्दी कोर्ट से आ गए ? क्या आज कोई मुक़द्दमा नहीं था ?"

बाबू राधारमण ने हँसते हुए पूछा—"क्यों, अगर चार बजे से पहले एक दिन भी जल्दी आ जाऊँ, तो शायद मुझे उसका जवाब देना पड़ेगा ? और कौन जल्दी आया है ?"

राजेश्वरी ने अपनी हँसी छिपाते हुए कहा—"और कौन जल्दी आवेगा ? जिसे ग़रज़ होगी, वही जल्दी आवेगा।"

बाबू राधारमण ने अपने कपड़े उतारते हुए कहा—"आज तो बड़ी बेरुख़ी है। कुछ मामला समझ में नहीं आता।"

राजेश्वरी ने सोफ़े की ओर संकेत करते हुए कहा—"यहाँ आकर बैठिए, धूप में आ रहे हैं, ज़रा शांत होइए, गरम-गरम हवा ने तो झुलसा दिया होगा ?"

"स्त्रियाँ ही सबसे भली, जिन्हें इस तरह गरमी में जलना तो नहीं पड़ता। आराम से घर में बैठी हुई धन का सद्व्यय करती हैं, और आनंद करती हैं।"

बाबू राधारमण ने सोफ़े पर बैठते हुए जेब से नोटों का एक पुलिंदा बाहर निकालकर राजेश्वरी को देते हुए कहा—"हाँ, और घर में बैठे-ही-बैठे लक्ष्मी आप-से-आप दौड़कर आँचल में आ पड़ती है, क्यों ?"

यह कहकर बाबू राधारमण ने राजेश्वरी को नोट दे दिए। राजेश्वरी ने नोट लेकर गिनते हुए कहा—"अरे, आज तो कुल आठ सौ हैं ! बहुत थोड़े हैं ! तुमने कुछ अपने पास तो नहीं रख लिए ?"

बाबू राधारमण ने हँसते हुए कहा—"आज से पंद्रह वर्ष पहले जब मैं तुम्हें आठ रुपया निकालकर देता था, तब उसी को प्रसन्नता से रखकर मुझसे कुछ पूछती न थीं, और आज आठ सौ पाकर भी मुझसे कहती हो कि बहुत कम है ?"

बाबू राधारमण की आँखों से वह प्रकाश निकल रहा था, जो एक

सफल मनुष्य की आँखों से प्रकट होता है। उनकी हँसी में, उनकी एक-एक बात में, उनकी प्रेम-भरी दृष्टि में सफलता झाँक रही थी।

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"उस समय तुम आठ रुपए के थे, लेकिन आजकल तो तुम ढाई-तीन हज़ार के हो।"

पति-पत्नी दोनों हँसने लगे।

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"अरे, देखो, मैं तुम्हारी बातों में ऐसी उलझ गई कि मुझे ज़रा भी याद न रहा। तुम्हारे जल पीने को तो कुछ ले आऊँ।"

बाबू राधारमण ने हँसते हुए कहा—"हाँ, जब रुपए मिल गए, तो खिलाने-पिलाने की सूझी है। अभी तक तो बैठी रहीं, जैसे कुछ ख़याल ही न था। यह क्यों नहीं कहतीं कि पहले मैं रुपए रख आऊँ, तब आऊँ।"

यह कहकर बाबू राधारमण ने राजेश्वरी का कपोल चूम लिया। राजेश्वरी के नेत्रों से यौवन झाँकने लगा। उनका हाथ हटाते हुए और उठने की चेष्टा करते हुए कहा—"तुम्हारी पुरानी आदतें नहीं छूटतीं! पैंतालीस वर्ष के होने आए, बाल सफ़ेद होने लगे, सिर गंजा होने लगा, और अभी तक चुहुलपन नहीं गया। मानो अभी बीस ही वर्ष के बने हैं। ज़रा शीशे में अपना मुँह तो देखिए।"

बाबू राधारमण ने हँसते हुए दूसरा कपोल भी चूमते हुए कहा—"और तुम भी शायद वही पंद्रह वर्ष की नवेली बनी हो। क्यों?"

राजेश्वरी ने लजाते हुए कंठ-स्वर से कहा—"पंद्रह वर्ष की न सही, लेकिन तुमसे अभी छोटी ही हूँ। आओ, शीशे में मिलान करोगे। न मेरे बाल सफ़ेद हुए, और न सिर ही गंजा हुआ।"

बाबू राधारमण ने राजेश्वरी को बैठाते हुए कहा—"लेकिन दाँत गिरनेवाले हैं। गालों पर अभी एक-ही-आध झुर्री पड़ी है,

और शरीर में अभी थोड़ी ही शिथिलता आई है। अभी तक तुम अपने को पंद्रह वर्ष की सुंदरी समझ रही हो, क्यों?"

यह कहकर बाबू राधारमण ने तीसरा प्रेम-चिह्न अंकित कर दिया। राजेश्वरी अब और अधिक वहाँ न ठहर सकी। जाने के लिये उठ खड़ी हुई। बाबू राधारमण ने उसका हाथ पकड़े हुए कहा—"अरे, तुम तो नाराज़ हो गईं। तुम्हारी भी पुरानी आदत कहाँ गई। तुम वही पुरानी मानिनी नायिका बनी रहती हो। बात-बात पर रूठने के लिये तैयार रहती हो। जिसकी लड़की पंद्रह वर्ष से अधिक हो जाय, और वह भी पंद्रह वर्ष की बने, तब तो आश्चर्य ही है।"

राजेश्वरी ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा करते हुए कहा—"हाँ, भई, मुझे जाने दो। मैं सत्तर वर्ष की बुढ़िया सही, बस, अब तो ख़ुश हो।"

बाबू राधारमण ने राजेश्वरी का हाथ नहीं छोड़ा। वह उसे पकड़े ही रहे, बल्कि उन्होंने और ताक़त से पकड़ लिया। राजेश्वरी का हाथ दुखने लगा। उसने उनकी ओर देखते हुए कहा—"अरे छोड़ो, हाथ टूटता है। उफ़्! तुम तो......।"

बाबू राधारमण ने अपना हाथ ढीला करते हुए कहा—"हाँ, हाँ, यह क्यों नहीं कहतीं कि तुम बड़े बदमाश हो? रुकती क्यों हो? देखो, ये ही सब पुरानी आदतें हैं। जब तुम युवती बनती हो, तो मैं ही क्यों पीछे रह जाऊँ? अगर मैं युवक बनूँ, तो तुम्हें बुरा लगे। प्रेम के राज्य में ऐसा अन्याय तो नहीं होता?"

राजेश्वरी ने सोफ़ा पर बैठते हुए कहा—"ठीक है, लेकिन इतना जाने लो कि यह वह अदालत है, जहाँ तुम्हारी वकालत नहीं चलने की, तुम्हारे-ऐसे वकील यहाँ झख मारते हैं।"

बाबू राधारमण कुछ कहने जा ही रहे थे कि घड़ी ने टन-टन करके दो बजा दिए।

राजेश्वरी ने चौंकते हुए कहा—"दो बज गए हैं। मुझे जाने दो। इतनी देर की हँसी बहुत है। तुम्हें कुछ जल-पान के लिये ले आऊँ। खाकर तुम्हें कहीं जाना होगा।"

बाबू राधारमण ने चकित होकर कहा—"कहाँ जाना होगा ?"

राजेश्वरी ने उत्तर दिया—"अभी क्या जल्दी है। ज़रा धैर्य रक्खो, बतलाऊँगी, जहाँ जाना होगा। तुम्हें इससे क्या मतलब। जहाँ कहूँ, वहाँ चुपचाप चले जाना, बस।"

बाबू राधारमण ने कहा—"अच्छा, भई, जहाँ दौड़ाओगी, दौड़ना ही पड़ेगा ! लेकिन मैं कुछ खाऊँगा नहीं। अभी कचहरी में जल-पान किया ही है, और सीधे यहाँ चला आ रहा हूँ। आज एक ही मुक़द्दमा था, जीतकर आ रहा हूँ, और तुम कहीं दौड़ाने के लिये तैयार हो। अगर मैं जानता, तो कभी न आता, बार-एसोसिएशन ही में टाँग फैलाकर आराम से सोता।"

राजेश्वरी ने कहा—"वहाँ भी न सोने पाते। मैं तुम्हें बुलाने के लिये मुरली को अब तक भेज दिए होती। तुम्हीं को पत्र लिखने के लिये तो मैं तुम्हारे कमरे में आई थी।"

बाबू राधारमण ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"कुछ बतलाओ तो, ऐसी कौन-सी ज़रूरत आ पड़ी है। कोर्ट जाते समय तो तुमने कुछ कहा ही न था। इतनी जल्दी कौन काम आ गया है ?"

राजेश्वरी ने मुस्किराते हुए कहा—"अभी नहीं बतलाऊँगी। तुम्हें कुछ पानी पीना होगा, चाहे जो कुछ हो। आज पेठा बनाया है। एक कौर खाकर पानी पी लेना, बस।"

बाबू राधारमण ने कहा—"तुम मानोगी नहीं। अच्छा, लाओ।" फिर कुछ सोचकर कहा—"अभी नहीं, ठहर जाओ, तीन बजने दो। मन्नी आ जाय कॉलेज से, तब हम दोनो साथ ही खायँगे।"

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"मन्नी तो तुमसे आज पहले आ गई

है। आप समझते थे कि मैं ही आज जल्दी घर आया हूँ, लेकिन तुम्हारे आने से कुछ ही देर पहले तो मन्नी भी आ गई है।"

बाबू राधारमण ने चिंतित स्वर में कहा—"मन्नी क्यों आज कॉलेज से चली आई? उसकी तबियत अच्छी तो है, मैं उसे कई रोज़ से उदास देखता हूँ। उसके घंटे तो एक भी ख़ाली नहीं हैं। आज के पहले कभी इस समय तो आती न थी? फिर आज कैसे चली आई?"

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"मैं क्या जानूँ, मन्नी इतनी जल्दी आई। मैंने भी तो यही प्रश्न पूछा था। उसने कुछ जवाब नहीं दिया। चुपचाप अपने कमरे की ओर चली गई। मन्नी की तबियत में कोई ख़राबी नहीं मालूम पड़ती।"

बाबू राधारमण ने निश्चिंत होकर कहा—"ख़ैर, तो फिर चली आई होगी। उसके प्रोफ़ेसर न आए होंगे, या और कुछ बात हुई होगी। मुमकिन है, कॉलेज ही बंद हो गया हो।"

राजेश्वरी ने बाबू राधारमण की ओर हास्य-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा—"न कॉलेज ही बंद है, और न प्रोफ़ेसर ही ग़ैरहाज़िर हैं। मन्नी कॉलेज से छुट्टी लेकर आई है।"

बाबू राधारमण की चिंता बढ़ने लगी। उन्होंने फिर उत्सुकता से पूछा—"फिर मन्नी क्यों चली आई, क्या बात है? एक बार तो कहती हो कि मैंने पूछा था, क्यों चली आई, तो उसने जवाब नहीं दिया, और फिर कहती हो कि वह छुट्टी लेकर आई है। मेरी कुछ समझ में नहीं आता कि तुम्हें यह भेद कैसे मालूम हो गया। मन्नी ने कुछ कहा भी नहीं, और तुम्हें यहाँ से बैठे-बैठे सब हाल मालूम हो गया। आश्चर्य है!"

राजेश्वरी ने कहा—"इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात? क्या मैं आदमी नहीं हूँ? क्या मैं बुद्धि से बिलकुल हीन हूँ?"

बाबू राधारमण ने हँसते हुए कहा—"कौन कहता है कि तुम मूर्ख हो ? जो तुम्हें मूर्ख कहे, वह स्वयं एक बड़ा भारी मूर्ख है। मन्नी के असमय आ जाने से मुझे बड़ी चिंता है। कुछ-न-कुछ ज़रूर अनिष्ट हुआ है। वह अपने लेक्चर 'मिस' करनेवाली नहीं है, चाहे जो कुछ हो, वह कॉलेज छोड़नेवाली नहीं। असमय कॉलेज से आना कारण से ख़ाली नहीं है।"

राजेश्वरी ने खीझकर कहा—"ज़रा-सी बात कह दी, बस, उसी के पीछे पड़ गए। मैं क्या जानूँ, क्यों मन्नी चली आई। मैंने तो पूछा था, उसने कुछ जवाब नहीं दिया। अब तुम्हीं जाकर पूछो, तो तुम्हें शायद बता दे।" यह कहकर राजेश्वरी फिर हँसने लगी।

बाबू राधारमण राजेश्वरी की हँसी देखकर अप्रतिभ हो गए। उन्होंने कहा—"सच है, स्त्री-चरित्र समझना टेढ़ी खीर है। अभी-अभी नाराज़ हो गईं, चार बातें सुना दीं, और अब हँस रही हैं! अच्छा, मैं ही जाता हूँ मन्नी से पूछने। मन्नी मुझसे कोई बात नहीं छिपाती। तुमसे छिपाती होगी, क्योंकि तुम उसकी......।"

राजेश्वरी ने उत्फुल्ल कंठ से कहा—"भले ही मैं उसकी सौतेली मा होऊँ, लेकिन मन्नी तो अपनी मा से अधिक ही मुझे प्यार करती है। यदि बहन जीती भी रहतीं, तो वह उन्हें मुझसे अधिक न चाहतीं। मन्नी-ऐसी लड़की पैदा करके वह धन्य हो गईं। क्या करूँ, मैं ही अभागिनी हूँ, जो मेरे एक लड़की भी न हुई। यह भी अच्छा हुआ। शायद अगर कहीं मेरे एक-आध लड़का-बड़का होता, तो वह मन्नी-जैसा न होता, और मैं उसे देख-देखकर कुढ़ती। मारे डाह के शायद सब मन्नी पर बीतती, और मैं यह सोने का फूल खा जाती। मन्नी हमारी चिरंजीवर रहे, बस, लड़की-लड़का दोनो है। हमें न चाहिए।"

बाबू राधारमण ने हँसते हुए कहा—"अरे, तुमने तो ख़ासी

छोटी-सी स्पीच दे डाली। क्यों, अगर तुम्हारे कोई लड़का हो, तो क्या तुम भी साधारण स्त्रियों की भाँति मन्नी से ईर्ष्या करोगी ?"

राजेश्वरी ने गंभीर होकर कहा—"अभी तक तो मेरे हृदय में यह विचार कभी उठा ही नहीं है। न-मालूम क्यों मन्नी पर मेरा इतना स्नेह है। पहलेपहल जब इस घर में आकर मैंने मन्नी को गोद में उठाया, तो मन्नी ने मेरे मुख की ओर देखकर धीरे से कहा—मा, मा ! मन्नी डेढ़ ही वर्ष की थी, किंतु उसने इस तरह मा कहा था, मानो उसे बड़ा आश्वासन मिला हो। उसकी वह तोतली बोली मेरे कलेजे में तीर की तरह बिंध गई। न-मालूम कैसा एक स्नेह और ममत्व का स्रोत मेरे हृदय से उमड़ पड़ा। मेरा शरीर रोमांचित हो गया। मैंने आवेश से उसे कलेजे से लगा लिया, और बार-बार उसका मुख चूमने लगी। उसी समय मैंने बड़ी ज़ोर से अपने मन से कहा—यह मेरी लड़की है, मैं ही इसकी मा हूँ। भगवान्, ऐसा करना, जिसमें मेरे लड़का-लड़की न हो। मैं इस बालिका को कभी न खोऊँ। न-मालूम क्यों मेरी आँखों से आँसू बहने लगे, और मैं कातर होकर बार-बार मन्नी का मुँह चूमने लगी। भगवान् ने सत्य ही मेरी प्रार्थना सुन ली, और मन्नी मुझे ही अपनी मा समझती है। समझती है क्या, मैं उसकी मा हूँ ही। बहन ने तो उसे सिर्फ़ पेट में रक्खा-भर था, फिर तो सब मैंने ही किया है। मन्नी मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है। लेकिन कौन जानता है, शायद मेरे लड़का-लड़की होने से मैं भी साधारण स्त्रियों की भाँति हो जाती। अपने पुत्र पर प्रेम करना मा का स्वाभाविक गुण है। शायद मन्नी की ओर से मैं भी कुछ विरक्त हो जाती, किंतु यह सबसे अच्छा हुआ, जो मेरे पुत्र ही नहीं हुए। नहीं तो शायद तुम्हारा खाना-पीना हराम हो जाता, और रात-दिन लड़ाई लगी रहती।"

बाबू राधारमण ने कहा—"तुम्हारे ऊपर जो मेरा विश्वास है, शायद वह ठीक नहीं है।"

राजेश्वरी ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"किंतु तुम्हारा मेरे ऊपर कौन विश्वास है। अभी-अभी तुमने मुझे मन्नी की सौतेली मा कहकर मेरी बात पर अविश्वास किया था।"

बाबू राधारमण ने मुस्किराते हुए कहा—"मैंने वह सब हँसी में कहा था, क्या तुम इतना भी नहीं समझती हो ?"

राजेश्वरी ने हँसकर कहा—"समझती मैं बहुत हूँ, लेकिन बात भी सच है। सौतेली मा हमेशा सौतेली मा है। संसार में किसी को विश्वास नहीं होता कि सौतेली मा कभी अच्छी हो सकती है। और कहाँ तक, स्वयं पिता तक को विश्वास नहीं होता, फिर तो सब कहने को हैं ही। लेकिन मैंने आज तक मन्नी के भाव-व्यवहार से या और किसी तरह से यह नहीं जाना कि वह मुझे सौतेली मा समझती है। जैसे बालक अपनी मा से निर्भीक, निश्चिंत और भेद-रहित होता है, वैसे ही मन्नी भी है। अपनी व्यथा सबसे पहले मुझसे कहेगी, मेरी छाती में सप्रेम अपना मुख छिपाकर जो कुछ कहना होगा, कहेगी। उस समय मैं सब कुछ भूल जाती हूँ। मेरे सामने मन्नी को छोड़कर संसार में कुछ नहीं रहता। मन्नी मानवी नहीं, उस जन्म की देवी है।"

कहते-कहते राजेश्वरी की आँखों से मातृप्रेम पानी होकर बहने लगा। बाबू राधारमण मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर देख रहे थे। वह सोच रहे थे कि कौन देवी है, राजेश्वरी या मन्नी ? उन्होंने सिर उठाकर ऊपर विधाता की ओर देखा—भाग्यदेव मुस्किरा रहे थे।

राजेश्वरी ने अपनी आँखें पोंछकर कहा—"अच्छा, तो अब जाने दो। ढाई बज गया है। अभी तुम्हें स्टेशन जाना होगा। पेशावर-मेल सवा तीन बजे लखनऊ पहुँच जाता है।"

बाबू राधारमण ने कहा—अच्छा, इतनी देर बाद तो मालूम

हुआ कि स्टेशन जाना होगा। अब यह बताइए कि क्यों जाना होगा ?"

राजेश्वरी ने जाते हुए कहा—"अभी इसका जवाब नहीं मिलेगा। थोड़ी देर में दूँगी। पेटा ले आऊँ, और मन्नी को भी बुला लाऊँ, तो कहूँ।"

यह कहकर राजेश्वरी हँसती हुई चली गई। बाबू राधारमण सोफ़े पर ही लेट गए। थोड़ी देर बाद मनोरमा निःशब्द आकर सोफ़े के पीछे खड़ी हो गई। आँखों और मुँह से प्रसन्नता उमड़ी पड़ रही थी, किंतु उसके दबाने की चेष्टा साफ़-साफ़ झलक रही थी। स्वाभाविक चपलता न-मालूम कहाँ तिरोहित हो गई थी। लाज की बेड़ी दूर ही से देख पड़ती थी। गुलाबी रेशमी साड़ी का छोर बार-बार बिजली के पंखे की हवा से इधर-उधर उड़ रहा था, और मनोरमा उसे हाथ से पकड़ रखने की चेष्टा कर रही थी। आँखें ऐसी नत थीं, मानो बहुत भारी बोझ उन पर रक्खा हुआ हो, और वे उसी के बोझ से दबी जा रही हों। बाबू राधारमण अपने नेत्र बंद किए कुछ सोच रहे थे। उन्हें अनुमान तक न था कि उनकी प्यारी मन्नी उनके पीछे खड़ी है।

मनोरमा ने जब देखा कि किसी प्रकार वह उसकी ओर मुख़ातिब नहीं होते, तो सोफ़े पर एक हाथ रखकर कहा—"पापा, क्या आपने मुझे बुलाया था ? अम्माजी ने अभी मुझसे कहा है कि आप मुझे बुला रहे हैं।"

एक समय था, जब बाबू राधारमण को अँगरेज़ी सभ्यता इतनी पसंद थी कि वह अपनी जातीयता छोड़कर उसी में रँग गए थे। यह वह ज़माना था, जब वह इँगलैंड से बैरिस्टर होकर आए थे, और लखनऊ में अपनी वकालत शुरू की थी। इँगलैंड से लौटने के एक ही वर्ष बाद मनोरमा का जन्म हुआ। उन्हें बाबूजी, बापू आदि

नामों से घृणा थी। मनोरमा के मुख से 'पापा' ही वह सुनना चाहते थे। मनोरमा की मा भी बड़ी विदुषी रमणी थी। उसने पति की आज्ञानुसार उसे पापा ही कहना सिखलाया, किंतु अपने लिये उसने अम्मा से 'मामा' कहलवाना पसंद न किया था।

बाबू राधारमण ने चौंककर उठते हुए कहा—"मन्नी, तुम हो? आओ बैठो।"

मनोरमा मंद पदों से आकर सोफ़े की एक ओर बैठ गई।

बाबू राधारमण ने मनोरमा की ओर देखा। उसकी आँखें उनकी ओर होती ही न थीं। न-मालूम वे किस उधेड़-बुन में संलग्न थीं। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा—"मन्नी, तुम्हारी तबियत तो अच्छी है! मैं आज कई दिनों से तुम्हें उदास और मलीन देखता हूँ, क्या बात है? तुम्हें किस बात का कष्ट है? तुमने कुछ अपनी मा से भी नहीं कहा। अच्छा, अब मुझसे कहो। तुम्हें कौन कष्ट है? तुम्हीं एक मेरी संतान हो, तुम्हें मैं हर तरह प्रसन्न रखना चाहता हूँ। तुम्हारे भाग्य से मेरे पास रुपया भी काफ़ी है। तुम्हारी जो वेदना हो, कहो, मैं उसका उपाय करूँगा।"

मनोरमा लाज से कटी जा रही थी। उसकी आयु इस समय लगभग १८ वर्ष की थी। लखनऊ में आइसाबेला-थॉबर्न-कॉलेज में बी० ए० में पढ़ती थी। अँगरेज़ी और फ्रेंच भाषाएँ जानती थी। रहन-सहन भी आधा भारतीय और आधा विलायती था, किंतु नारी-सुलभ स्वाभाविक लज्जा अब भी पैरों में बेड़ियों की भाँति पड़ी थी। पिता के प्रश्नों का वह क्या उत्तर दे, उसकी समझ में कुछ भी न आया।

मनोरमा चुप रही। कुछ भी उत्तर न देकर द्वार की ओर देखने लगी। बाबू राधारमण ने मनोरमा से उत्तर न पाकर, अधिक चिंतित स्वर में पूछा—"क्यों मन्नी, बोलती नहीं? क्या बात है?"

मनोरमा ने देखा, अब बिना उत्तर दिए प्राण नहीं बचने के। उसने धीमे कंठ से कहा—"कुछ भी नहीं। मैं उदास तो नहीं हूँ, और न मुझे कष्ट ही है। अम्मा ने भी यही पूछा था, लेकिन जब कोई बात हो, तो मैं बताऊँ। जब कोई बात ही नहीं है, तब क्या कहूँ। इसीलिये चुप हूँ।"

बाबू राधारमण ने पूछा—"अच्छा, आज तुम कॉलेज से इतनी जल्दी क्यों चली आईं?" इस प्रश्न ने मनोरमा के गाल लाल कर दिए।

मनोरमा ने कुछ उत्तर न दिया। इसी समय राजेश्वरी दो तश्तरियों में पेठे लिए हुए कमरे में आई। पिता-पुत्री को मौन और मनोरमा का लाज से बुरा हाल देखकर वह बड़े ज़ोर से हँस पड़ी।

बाबू राधारमण अप्रतिभ होकर राजेश्वरी की ओर देखने लगे।

मनोरमा ने उठते हुए कहा—"अम्मा, ये सब तुम्हारी ही कारस्वाई है। पापा ने मुझे नहीं बुलाया था। तुम्हीं मुझे परेशान करती हो। सब जान-बूझकर तुम मुझे हैरान करती हो। घबराओ नहीं, मैं भी कभी तुम्हें ऐसा हैरान करूँगी कि बहुत दिनों तक याद रहेगा।" कहती हुई मनोरमा कमरे से बाहर हो गई।

मनोरमा की धमकी सुनकर राजेश्वरी की हँसी और ज़ोर पकड़ रही थी। बाबू राधारमण अप्रतिभ होकर राजेश्वरी की ओर देख रहे थे। अंत में उन्होंने पूछा—"क्यों, आज तुमने क्या रंग मचा रक्खा है। मुझे अलग भूलभुलैया में डाले हो, और मन्नी को अलग। अच्छा तमाशा है, कुछ भी समझ में नहीं आता।"

राजेश्वरी की हँसी रुक ही नहीं रही थी। बल्कि बाबू राधारमण की झिड़की ने तो उसे और हँसने के लिये उत्तेजित कर दिया।

बाबू राधारमण ने भी हँसते हुए कहा—"अरे, तुम तो मारे हँसी

के फुलझड़ी हुई जा रही हो। अच्छा, हँस लो। कभी-न-कभी भेद तो खुलेगा ही।"

इसी समय घड़ी ने तीन बजाए। घड़ी का शब्द सुनते ही राजेश्वरी की हँसी थम गई। उसने जल्दी से एक तश्तरी उनके सामने रखते हुए कहा—"लो, जल्दी से खाकर पानी पी लो, मैं मुरली से कहकर मोटर बाहर मँगवाती हूँ। तीन बज गया है। खाकर जल्दी स्टेशन जाओ।"

बाबू राधारमण ने हँसते हुए कहा—"अब मेरी बारी है। न मैं खाऊँगा, और न स्टेशन जाऊँगा। तीन नहीं, चार बज जाय, तो क्या होता है। बजने दो।"

राजेश्वरी ने अपने हाथ से पेठा खिलाते हुए कहा—"अच्छा, तुम खाओ तो, मैं अभी कहती हूँ। न कहूँगी, तो तुम स्टेशन जाकर क्या करोगे।"

बाबू राधारमण ने पेठा खाते हुए कहा—"मन्नी को तो बुलाओ। वह भी तो खाए।"

राजेश्वरी ने कहा—"मन्नी के लिये आप चिंतित न हों। वह किसी तरह यहाँ न आएगी। खाकर जल्दी से जाइए तो, आज आपके दामाद साहब तशरीफ़ ला रहे हैं। पेशावर-मेल से आ रहे हैं, आज दोपहर को तार आया है।"

बाबू राधारमण का मुख प्रसन्नता से प्रदीप्त हो उठा। उन्हें राजेश्वरी की बात पर विश्वास न हुआ। उन्होंने उठते हुए कहा—"सच ! कहाँ है तार, लाओ देखूँ। तुमने अभी तक मुझे नहीं बतलाया ! बड़ी रंगबाज़ हो। अब सब समझ में आ गया, तभी मन्नी शरम से कटी जा रही थी। तुम्हारी हँसी भी अच्छी है। सब जान-बूझकर उसी बेचारी को तंग किया। अब जब मन्नी इसका बदला लेगी, तो हम दोनो तुम पर हँसेंगे।"

राजेश्वरी ने तार दे दिया। बाबू राधारमण ने उसे पढ़कर कहा—"अब एक गिलास पानी लाओ, और न खाऊँगा। गाड़ी आने में १५ मिनट रह गए हैं। मैं जाता हूँ।"

यह कहकर वह वायु-वेग से कमरे के बाहर हो गए। राजेश्वरी को कुछ और कहने का समय न मिला।

राजेश्वरी मन-ही-मन हँसती हुई पेठे की दूसरी तश्तरी लेकर मनोरमा के कमरे की ओर चली।

उसी समय बाबू राधारमण स्टेशन की ओर रवाना हुए।

---

(२)

राजेश्वरी ने मनोरमा के कमरे में जाकर देखा कि वह मेज़ के पास कुरसी पर बैठी है, और सिर झुकाए बड़ी तल्लीनता से एक पत्र पढ़ रही है।

मनोरमा पत्र पढ़ने में इतनी मग्न थी कि उसे कुछ मालूम न हुआ कि कब से उसकी मा उसकी ओर देख रही है। राजेश्वरी पेठे की तश्तरी लिए हुए आगे बढ़ी। मनोरमा ने फिर भी पद-शब्द न सुना। राजेश्वरी धीरे-धीरे जाकर मनोरमा के पीछे खड़ी हो गई। मनोरमा अब भी पत्र पढ़ने में संलग्न थी। राजेश्वरी अपना सिर झुकाकर उसके कानों के समीप ले गई, और वह भी पत्र पढ़ने लगी। उसकी तप्त साँस ने मनोरमा के गले में लगकर उसे किसी व्यक्ति के होने की सूचना दे दी। मनोरमा ने चौंककर पीछे देखा—राजेश्वरी खड़ी हुई उसका पत्र पढ़ रही है। मनोरमा ने तुरंत ही वह पत्र मरोड़कर अपनी मुट्ठी में दबा लिया, और कहा—"अम्मा, यह क्या?"

मनोरमा के गाल लाल हो गए थे, और माथे पर स्वेद-बिंदु झलक रहे थे।

राजेश्वरी ने पेठा मेज़ पर रखकर कहा—"मन्नी, ज़रा मुझे भी पढ़ लेने दे। देखूँ तो, राजेन बाबू ने क्या लिखा है?"

मनोरमा ने पत्र और दृढ़ता से अपने हाथ में दबा लिया।

राजेश्वरी ने पेठा मेज़ पर रखकर कहा—"मन्नी, तुम पेठा खाकर पानी पियो, और तब तक मैं तुम्हारा पत्र पढ़ूँ। पत्र लाओ,

मुझसे कौन शरम ! लाओ, ज़रा मैं भी पढ़ लूँ। मन्नी, मुझसे यह पत्र छिपाओगी ?"

मनोरमा ने पत्र को अपनी जेब में रखते हुए कहा—"अम्मा, आज क्या तुमने मुझे परेशान करने की क़सम खा ली है। पापा के सामने तुमने मुझे कितना खिझाया !"

राजेश्वरी की आँखों के सामने थोड़ी देर पहलेवाला दृश्य आ गया। उसकी हँसी किसी तरह न रुकी। वह हँसने लगी।

मनोरमा का मुख लाल हो गया—लाज से या क्रोध से। उसने कुछ तीव्र कंठ से कहा—"मैं पेठा नहीं खाऊँगी, ले जाओ।"

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"हाँ, मा का बनाया पेठा अब थोड़े ही अच्छा लगेगा !"

मनोरमा के हृदय के भीतर उल्लास किलकारी मारकर हँस रहा था। झूठा अभिमान कब तक उसके मुख से प्रकट होता—एक हलकी हास्य-रेखा की ओट से उसके हृदय का सोहाग-सिंधु राजेश्वरी की ओर देखने लगा।

मनोरमा ने हँसते हुए कहा—"अम्मा, तुम आज बड़ी प्रसन्न मालूम होती हो।"

राजेश्वरी ने गंभीर होकर कहा—"क्यों, प्रसन्न होने की क्या बात है ? प्रसन्न तो तुम हो ! यह राजेन बाबू का पत्र है या और किसी का ? देखूँ तो।"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"किसी का हो, फिर। तुम्हें क्यों दिखलाऊँ ?"

राजेश्वरी ने साभिमान कहा—"अच्छा, न दिखलाओ; मैं तुम्हारी मा थोड़े ही हूँ। मुझे सौतेली मा समझती हो, तभी तो।"

मनोरमा ने भी कुछ तीव्र स्वर में कहा—"हाँ, हाँ, तुम मेरी सौतेली मा हो। जाओ, नहीं दिखाती।"

राजेश्वरी ने जाते हुए कहा—"लो भई, तुम्हारे कमरे से जाती हूँ। ठीक है, सौत की लड़की क्या कभी अपनी होती है।"

राजेश्वरी धीरे-धीरे कमरे से बाहर की ओर जाने लगी। मनोरमा के हृदय का उल्लास एक कृष्ण छाया से आवृत हो गया। उसके नेत्र छुचछुचा आए, और पैर काँपने लगे। उसने दौड़कर कमरे के बाहर जाती हुई राजेश्वरी को पकड़ लिया। उसकी कमर से लिपटकर कहा—"अम्मा, सौत की लड़की से गुस्सा हो गईं। लो, पढ़ लो।" यह कहकर मनोरमा ने वह पत्र राजेश्वरी को दे दिया।

राजेश्वरी ने पत्र लेकर फेंक दिया, और अभिमान-मिश्रित स्वर में कहा—"नहीं, मैं न पढ़ूँगी। अगर तुम मुझे अपनी मा समझती होतीं, तो क्या इस तरह मुझसे झगड़ा करतीं।"

मनोरमा ने आहत कंठ से कहा—"अम्मा, तुम्हें आज क्या हो गया है। मैंने कौन-सी ऐसी बात कह दी। मैं तो इससे कड़ी-कड़ी बात कहती हूँ, लेकिन कभी तुम्हारे दिल में मैल नहीं आता, पर न-मालूम तुम्हें आज क्या हो गया है। अच्छा, मेरा अपराध है, माफ़ करो। मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूँ, यह कभी न कहा करो कि 'मैं सौतेली मा हूँ।' न-मालूम क्यों यह सुनकर मेरा मन दुखी हो जाता है। तुम तो कभी ऐसा न कहती थीं, फिर........." मनोरमा की आँखों से आँसू बहने लगे, कंठ रुद्ध हो आया, और वह आगे न कह सकी।

राजेश्वरी उसे रोते देखकर, खिलखिलाकर हँस पड़ी, और कहा—"मन्नी, तुम तो मुझसे बदला ले रही थीं। यह क्या, तुम तो रोने लगीं?"

मनोरमा की हिचकियाँ बंद ही न होती थीं। मौन वेदना हिचकियों द्वारा अपना दुख प्रकट कर रही थी।

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"अरे पगली, कौन कहता है कि तू मेरी सौत की लड़की है। जो कहे, उसकी ज़बान मैं खींच लूँ। तू मेरी लड़की है, और मैं तेरी मा हूँ।"

मनोरमा ने राजेश्वरी के वक्षःस्थल में मुँह छिपाकर कहा—"हाँ अम्मा, मैं तुम्हारी ही हूँ। आज से फिर ऐसा कभी न कहना।"

राजेश्वरी ने उसे सस्नेह अपने हृदय से लगाते और उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"अरे, मैंने कब कहा था।"

मनोरमा ने अपने को शांत करते हुए कहा—"अब मुकरी जा रही हो। कह भी डाला, और साफ़ नाहीं भी कर रही हो।"

राजेश्वरी ने कमरे की ओर मनोरमा को ले जाते हुए कहा—"अच्छा, मैंने कहा, सुबूत ?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"सुबूत मैं हूँ। मैं कहती हूँ कि तुमने कहा था।"

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"वादी का कथन प्रमाण नहीं है।"

मनोरमा ने कुरसी पर बैठते हुए अपना सिर उसकी गोद में रखकर कहा—"अम्मा, अगर तुम वकालत पास कर लो, तो तुम्हारी वकालत ख़ूब चले।"

राजेश्वरी ने कहा—"हाँ, अब जब तुम बी० ए० पास कर लोगी, तो हम-तुम दोनो मा-बेटी वकालत पढ़ेंगी। देखो मन्नी, आज से कभी बदला लेने की धमकी मुझे न देना, नहीं तो जैसे आज..."

मनोरमा की वेदना तिरोहित हो चुकी थी। उसने हँसते हुए कहा—"आज क्या ?"

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"जैसे आज ज़रा-सी बात पर रोने लगीं, और क्या !"

मनोरमा ने अभिमान-मिश्रित स्वर में कहा—"हाँ, ठीक है, सौतेली

मा क्या कभी अपनी होती है। ईश्वर करे, सब कुछ हो, लेकिन सौतेली मा न हो।"

राजेश्वरी ने मनोरमा का सिर अपनी गोद से हटाकर कहा—"अच्छा, मैं सौतेली मा हूँ, हूँ, हूँ। बस, मुझसे आज से न बोलना!"

मनोरमा ने तीव्रता से कहा—"तुमसे बोलने की मुझे ज़रूरत? मैं क्यों बोलूँगी?"

राजेश्वरी ने उठते हुए कहा—"मैं भी सौत की लड़की के कमरे में नहीं रहती। जाती हूँ।" यह कहकर राजेश्वरी कमरे से बाहर हो गई। मनोरमा ने कुछ आपत्ति न की। वह खड़ी-खड़ी उसकी ओर देखती रही। राजेश्वरी शीघ्रता से चली गई।

कुछ ही क्षण बाद फिर लौटकर कहा—"मैं अपनी तश्तरी लेने आई हूँ। सौत की लड़की के लिये मेरे यहाँ खाने-पीने को कुछ नहीं है। आने दो राजेन बाबू को, आज ही शाम को अपने यहाँ से सौत की लड़की को भगा दूँगी।"

मनोरमा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। राजेश्वरी क्रोध में भरी हुई कमरे के बाहर हो गई। बाहर मनोरमा का पत्र पृथ्वी पर पड़ा हुआ था। राजेश्वरी ने उसे उठा लिया, और वह शीघ्रता से खोलकर पढ़ने लगी। पत्र मनोरमा के पति बाबू राजेंद्रप्रसाद का था। पत्र इस प्रकार था—

इलाहाबाद

"प्राणेश्वरी! १२। ४ ...

आज मैं तुम्हें एक सुसंवाद लिख रहा हूँ, नहीं जानता कि तुम्हें उससे कितना हर्ष प्राप्त होगा। किंतु इतना मुझे विश्वास है कि तुम उसे सुनकर अवश्य प्रसन्न होगी। आज ही के 'लीडर' में तुम मेरा नाम देखोगी। मुझे युनिवर्सिटी की ओर से छात्र-वृत्ति मिल गई है, और मैं इँगलैंड जाने के लिये तैयार हूँ। शायद अगस्त

मास में मैं भारत छोड़कर इँगलैंड की ओर चल दूँ। परंतु एक चिंता है, वह यह कि तुम्हारे बिना दो वर्ष मैं कैसे व्यतीत करूँगा? अभी जब तुम मेरे इतने समीप रहती हो, लेकिन तुम्हें एक पल-भर के लिये भूलना मेरी शक्ति से बाहर है, दिन-रात हृदय तुमसे मिलने को तड़पा करता है, फिर उस समय, जब हम दोनो के बीच में ७,००० मील का अंतर होगा, मेरी क्या दशा होगी, तुम इसका क्या अनुमान कर सकती हो। अनुमान! अनुमान तुम नहीं कर सकतीं, क्योंकि नारी का हृदय वास्तव में बड़ा कठोर होता है। पुरुष-जाति को उँगलियों पर नचाना तुम्हारी जाति का काम है। प्यासे को तड़पा-तड़पाकर मारना ही तुम्हारी जाति का गुण है।

"अम्मा मुझे जाने नहीं देना चाहतीं। जब से उन्होंने यह समाचार सुना है, तब से वह निरंतर रो रही हैं। उन्हें हज़ार समझाओ, लेकिन वह समझतीं नहीं। कहती हैं कि मैं मर जाऊँगी। भला, तुम्हीं बताओ, मैं इस दशा में क्या करूँ? इँगलैंड जाने से मेरा भविष्य उज्ज्वल हो जायगा, और साथ-ही-साथ कुछ यश और ख्याति भी मिलेगी। परंतु अम्मा के कारण शायद सब नष्ट हो जाय। मैं भी उन्हें छोड़कर, इस भाँति निराधार, जाना नहीं चाहता। महेंद्र अभी छोटा है, ज़मींदारी और घर की देख-रेख करने में असमर्थ है। इसके अतिरिक्त अगले वर्ष उसे बी० ए० की परीक्षा में बैठना है। अब तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ? केवल एक उपाय है। वह है तुम्हारे हाथ में। मन्नी, मेरी प्राणों की मन्नी, क्या तुम उसे करोगी? अम्मा को समझा-बुझाकर मैंने उन्हें इस शर्त पर राज़ी किया है कि अगर तुम आकर यहाँ रहो, तो वह फिर मुझे जाने की अनुमति दे देंगी। तुम्हें अपने पास पाकर फिर वह कुछ आपत्ति न करेंगी। तुम जानती हो कि वह तुम्हें कितना प्यार करती हैं। मेरा तो विश्वास है कि वह तुम्हें मुझसे अधिक प्यार करती हैं। क्यों, क्या यहाँ आकर अपने

प्रकाश से हमारा घर आलोकित करोगी ? प्राणेश्वरी, क्या तुम आना स्वीकार करोगी, और अम्मा को धैर्य बँधाओगी ? मुझे विश्वास है, तुम अवश्य ही विचार करोगी, और यहाँ आने के लिये तैयार हो जाओगी। मैं कल की डाक से लखनऊ पहुँच जाऊँगा, और फिर हम दोनो मिलकर इस समस्या पर विचार करेंगे। अम्मा तुम्हें आशीर्वाद कहती हैं।

तुम्हारा ही राजेंद्र।"

पत्र पढ़कर राजेश्वरी का हृदय काँप गया। सारा अभिमान क्षण ही भर में न-जाने कहाँ विलुप्त हो गया। घबराकर तुरंत ही उलटे पैरों लौटकर कहा—"मन्नी, राजेन बाबू क्या तुम्हें लिवा जाने के लिये आ रहे हैं ?"

मनोरमा ने अभिमान-मिश्रित स्वर में कहा—"सौतेली मा भी तो रखने के लिये तैयार नहीं है। अभी-अभी तुमने कहा ही था कि मैं तुम्हें उनके साथ भेज दूँगी।"

राजेश्वरी ने मनोरमा की पीठ और बालों पर सप्रेम हाथ फेरते हुए कहा—"यह क्या मन्नी ? मैं क्या तुम्हारी सौतेली मा हूँ ? देखो, आज से अगर तुमने मुझे सौतेली मा कहा, तो समझ लेना कि उसी दिन तुम मुझे जीवित न पाओगी। तुम्हें अपने कलेजे से लगाकर इतना बड़ा किया, क्या इसलिये कि तुम मुझे सौतेली मा कहो ? जब तुम मुझे सौतेली मा कहती हो, तो मेरे कलेजे में हूक-सी लगती है। मन्नी, अपने हृदय पर हाथ रखकर कहो, कब मैंने तुम्हें अपनी लड़की से कम समझा है ? आज तक कभी स्वप्न में भी मेरे हृदय में यह नहीं आया है, फिर तुम मुझे क्यों इस तरह दुख देती हो ?"

कहते-कहते राजेश्वरी की आँखों में पानी भर आया। उसका कंठ अवरुद्ध हो गया, और उसने अधीर होकर मनोरमा को अपने

हृदय से लगा लिया। मनोरमा का अभिमान दूर हो गया, और वह हँसती हुई राजेश्वरी के हृदय से लग गई। मनोरमा के मुख पर एक शैतानी से भरी हुई मंद मुस्कान थी।

मनोरमा ने राजेश्वरी के कपोलों को चूमते हुए कहा—"अच्छा, मैं कभी न कहूँगी, लेकिन आज से तुम भी मुझे परेशान मत करना। अगर तुम मुझे हैरान करोगी, तो मैं भी तुम्हें परेशान करना जानती हूँ। अम्मा, तुम हमारी अम्मा हो। यह तो मैं जानती नहीं कि मैं तुम्हारे गर्भ से पैदा हुई हूँ या नहीं, लेकिन हाँ, जब से मैं बड़ी हुई हूँ, कुछ-कुछ समझ आने लगी है, तब से तुम्हीं को अपनी मा जानती हूँ। मैं तो तुम्हें आज शाम तक रुलाती, लेकिन तुम्हारे आँसू देखकर न-मालूम मन क्यों विकल होने लगा है।"

राजेश्वरी ने कहा—"अच्छा मन्नी, क्या सचमुच तुम्हें लेने के लिये राजेन बाबू आ रहे हैं? मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। अपनी आँखों से ओट नहीं करूँगी। शादी में तुम दो ही हफ़्ते वहाँ रहीं, लेकिन उन पंद्रह दिनों में मेरे सब कर्म हो गए। राजेन बाबू भी यहीं रहें, और तुम भी। तुम्हें मैं अपने सामने से दूर नहीं कर सकती। जिस दिन मेरी आँखों के सामने से दूर चली जाओगी, उसी दिन तुम्हारी मा भी यह संसार छोड़ देगी। मेरा अवलंब तुम्हीं तो हो। मन्नी, क्या तुम अपनी मा को छोड़कर जा सकोगी?"

मनोरमा ने हँसते हुए कहा—"अम्मा, मनुष्य बड़ा स्वार्थी होता है।"

राजेश्वरी ने उत्तर दिया—"हाँ, स्वार्थ का ही दूसरा नाम है प्रेम। किंतु मा के वात्सल्य में स्वार्थ का लवलेश नहीं है।"

मनोरमा ने कहा—"नहीं, वात्सल्य में भी स्वार्थ है।"

राजेश्वरी ने पूछा—"अच्छा, मेरे प्रेम में क्या स्वार्थ है?"

मनोरमा ने मुस्किराते हुए कहा—"तुम्हें मुझसे सुख मिलता है। तुम्हारे हृदय में एक बलवती कामना है, उसका नाम है वात्सल्य। तुम मुझे प्यार करती हो, इसलिये कि मैं तुम्हारी उस कामना को पूर्ण करती हूँ। मुझे प्यार करके ही तुम्हारी वह इच्छा पूर्ण होती है। मान लो, थोड़ी देर के लिये कि मैं मर जाऊँ ...?"

राजेश्वरी ने मनोरमा के गाल पर एक हलकी चपत लगाकर कहा—"चुप पगली! मैं ऐसी बात नहीं मानती। ख़बरदार, जो फिर कभी ऐसी बात मेरे सामने कही!"

मनोरमा ने हँसते हुए कहा—"मान लो। मानने से कुछ सत्य न हो जायगा।"

राजेश्वरी ने क्रुद्ध होकर कहा—"चुप, मानती नहीं, बक-बक किए जाती है। मैं नहीं सुनना चाहती। बड़ी तर्क-शास्त्र की ज्ञाता बनी है!"

मनोरमा ने हँसकर कहा—"तुम तो अपनी ज़िद के आगे मेरी बात मानोगी नहीं। अच्छा, यह न सही, अगर मैं यहाँ से कहीं चली जाऊँ, और वहाँ से फिर न आ सकूँ, तो तुम्हारी वह कामना पूर्ण न हो सकेगी। उसके पूर्ण न होने से तुम्हें दुःख होगा, तुम्हारा मन किसी को वात्सल्य भाव से प्यार करने के लिये उतावला हो जायगा, और उस समय मुझे न पाकर और न मेरे स्थान पर किसी दूसरे को पाकर तुम्हारी वह कामना सफल न हो सकेगी, इसीलिये तुम दुखी होगी। मनुष्य दूरदर्शी है। वह भावी आशंका से अधिक भयभीत हो जाता है, क्यों? इसलिये कि उसमें ज्ञान और विवेक है, वह अपना भविष्य सोच सकता है। पशुओं में भी वात्सल्य होता है, यहाँ तक कि उनके वात्सल्य की सीमा को मनुष्य नहीं पहुँच सकते, किंतु उनमें विवेक और ज्ञान नहीं होता। वे भविष्य नहीं सोच सकते, इसीलिये वे मनुष्यों की तरह कातर नहीं होते।"

राजेश्वरी कुछ कहने जा रही थी कि बाहर एक मोटर बड़े वेग से आकर खड़ी हो गई। राजेश्वरी और मनोरमा, दोनो चौंक पड़ीं। मनोरमा का हृदय उछलने लगा। एक हलकी लालिमा ने गंड-स्थल से कपोलों तक फैलकर उन्हें लाल कर दिया। आँखें अपने आप नत होने लगीं। किसी अदृश्य शक्ति ने आकर उसके कानों में कह दिया कि देखो, वह आ गए। वह उनसे मिलने के लिये उतावली हो उठी। किंतु उसके पैर न उठे, वे शिथिल होकर अपना सहज कार्य भूल गए। मनोरमा संकुचित होकर मेज़ के सहारे खड़ी रही। उसमें साहस न था कि वह पास ही खड़ी हुई अपनी मा से आँख मिला सके। एक तड़ित्प्रवाह का मृदु कंपन उसके तंतुओं में दौड़ने लगा। राजेश्वरी ने एक दृष्टि-भर मनोरमा की ओर देखा, और फिर तुरंत ही कमरे के बाहर जाने लगी। उसके अंगों का कंपन उसे शीघ्र चलने से रोक रहा था। मनोरमा की दशा देखकर वह मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थी। मातृगौरव उसके मुख पर आलोकित हो रहा था। वह उसी रूप से बाबू राजेंद्रप्रसाद से मिलने को दौड़ पड़ी।

बाबू राधारमण ने घर के अंदर आकर द्वार पर खड़ी हुई राजेश्वरी से कहा—"वह नहीं आए। शायद कल की गाड़ी से आवें।"

राजेश्वरी ने उनकी बात पर अविश्वास करते हुए कहा—"नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। देखो, मैं देखे लेती हूँ। मन्नी के पत्र में भी उन्होंने यही लिखा है। वह ज़रूर आए हैं।"

यह कहकर वह घर के बाहर आकर मोटर की ओर देखने लगी। मोटर के पास ही दो नौकर खड़े थे। एक पीछे से असबाब खोल रहा था, और एक मोटर का दरवाज़ा खोलकर किसी के बाहर आने की प्रतीक्षा में खड़ा था। एक गौर, कांतिमय, सुंदर व्यक्ति मोटर से बाहर निकलने का आयोजन कर रहा था।

राजेश्वरी को देखते ही उसने प्रणाम किया। राजेश्वरी ने मन-ही-मन सहस्रों आशीर्वाद दिए, किंतु मुख से कुछ न कहा। केवल साधारण रीति से उसने प्रणाम का उत्तर दिया।

युवक ने राजेश्वरी के पास पहुँचकर कहा—"कहिए अम्मा, सब कुशल तो है?"

राजेश्वरी ने हँसकर उत्तर दिया—"अब आप आ गए हैं, चारो ओर कुशल-ही-कुशल है। आज हम लोगों का बड़ा भाग्य था, जो आपने अपने चरणों से हमारे घर को पवित्र किया। आइए।"

बाबू राधारमण भीतरी बैठक में उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने राजेंद्रप्रसाद को देखकर कहा—"अरे, आप आ गए? मैं तो तलाश करते-करते परेशान हो गया, लेकिन आपका पता न लगा!"

बाबू राधारमण की बात सुनकर राजेंद्रप्रसाद अप्रतिभ होकर उनकी ओर देखने लगे। किंतु राजेश्वरी ने हँसकर कहा—"तार मेरे पास आया था न, इसीलिये मैं इन्हें लिवा लाई।" फिर युवक की ओर देखकर कहा—"आप मुझे बहला रहे हैं। आप इनकी बातों पर ध्यान मत दें।" बाबू राधारमण हँसने लगे।

राजेश्वरी ने कहा—"आज बड़ी गरमी है, आपको बहुत कष्ट हुआ होगा।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"नहीं, कुछ विशेष कष्ट नहीं हुआ। आज और दिनों की अपेक्षा कम गरमी है।"

बाबू राधारमण ने कहा—"आइए, बैठिए, कोट निकाल डालिए। अरे, कुछ जल-पान के लिये लाओगी या नहीं, या कोरी बातों से ही अतिथि-सत्कार करोगी।"

राजेश्वरी ने लज्जित होकर कहा—"अरे, मैं तो बिलकुल ही भूल गई थी।" यह कहकर वह शीघ्रता से कमरे के बाहर हो गई।

---

(३)

बाबू राधारमण ने इँगलैंड से लौटकर लखनऊ में ही वकालत शुरू की थी। उस समय वकील टके सेर नहीं बिक रहे थे। उनका दाम बढ़ा-चढ़ा था। बहुत-से उर्दू-हिंदी-मिडिल पास भी न थे, और कुछ थोड़े-ही अँगरेज़ी की प्रवेशिका-परीक्षा पास करके वकालत कर रहे थे। बैरिस्टरों का बड़ा मान था, और पासशुदा वकील तो बेगुठली के मेवे हो रहे थे। लक्ष्मी उनके चरणों की दासी हो रही थी, और थोड़े ही परिश्रम और बुद्धि से किसी की भी वकालत चल निकलती थी। बाबू राधारमण एक तो बैरिस्टर, दूसरे क़ानून के आचार्य थे, फिर उनकी वकालत क्यों न चलती। पहले दो-एक वर्ष तक उन्हें कचहरी की धूल छाननी पड़ी थी। उनकी आय दो-तीन रुपए से अधिक न होती, फिर भाग्य के साथ-साथ उनकी कुशलता भी चमकने लगी। इस समय वह लखनऊ के सबसे सुविख्यात बैरिस्टर थे। उनकी मासिक आय बीस-पचीस हज़ार के लगभग थी।

बाबू राधारमण के पिता का नाम था मुंशी राममोहन। मुंशी राममोहन एक औसत दर्जे के साधारण व्यक्ति थे। लखनऊ के पुराने निवासी थे, और उनके पिता लखनऊ के नवाबों के यहाँ अस्तबल के मुंशी थे। उस समय उनका चारो ओर मान था, लक्ष्मी की भी कृपा थी, किंतु वह ऐश्वर्य थोड़े ही दिन रहा। किसी कारण-वश उन्हें अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी, और घर पर ही बैठकर सानंद जीवन व्यतीत करने लगे। अस्तबल के मुंशी होने के कारण

उन्हें ऊपरी आय बहुत थी। इसी कारण उनका हाथ खुला हुआ था। जो कुछ पैदा करते, वह सब-का-सब शराब और कबाब में उड़ा डालते। पद-त्याग करने के बाद भी मुंशी राममोहन के पिता ने अपने ख़र्च कम नहीं किए। वह उसी प्रकार उन्मुक्त-हस्त होकर रुपया उड़ाते रहे। उन्होंने लाखों की संपत्ति पैदा की थी, अब धीरे-धीरे उस पर हाथ साफ़ करने लगे। इधर लखनऊ में नवाबों का सौभाग्य-सूर्य अस्त हो रहा था, और पूर्व दिशा से फ़िरंगियों का भाग्य-चंद्र अपनी चंद्रिका फैलाता हुआ लखनऊ को भी आलोकित करने के लिये आगे बढ़ रहा था। मुंशी राममोहन के पिता ने तीन विवाह किए थे। पहली दो स्त्रियों से उनके कोई संतान न हुई। तीसरी स्त्री के गर्भ से मुंशी राममोहन का जन्म हुआ। जिस समय इनका जन्म हुआ, उस समय उनकी जायदाद लगभग समाप्त होने पर थी। अपने आगे पुत्र देखकर उन्हें ज्ञान हुआ, और दुर्व्यसन छोड़कर शांति-पूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगे।

मुंशी राममोहन बहुत सरल व्यक्ति थे। लोग उन्हें देवता की भाँति पूजते थे। सुंदर, गौर शरीर, उन्नत-प्रशांत ललाट और तेजोमय नेत्र थे। मुंशी राममोहन के पिता दूरदर्शी मनुष्य थे। वह भय-विह्वल नेत्रों से फ़िरंगियों की उठती हुई शक्ति को निरख रहे थे। उन्होंने सब सोच-विचारकर मुंशी राममोहन को अँगरेज़ी पढ़ाना शुरू किया। मुंशी राममोहन ने परिश्रम तो बहुत किया, किंतु वह अँगरेज़ी पढ़ न सके। उन्हें उस भाषा से घृणा थी। उनकी प्रवृत्ति फ़ारसी की ओर अधिक थी। उन्हें कविता से प्रेम था। उस समय लखनऊ उर्दू-कवियों का केंद्र हो रहा था। 'आतिश' और 'नासिख़' के दिन तो न थे, और न 'अनीस' और 'दबीर' की चोंचों से ही लखनऊ मुखरित हो रहा था, लेकिन शायरी ज़िंदा थी। उस समय मुंशी राममोहन की अवस्था केवल चौदह वर्ष की थी। मुंशी राममोहन के

पिता को मुशायरों से शौक़ था। पिता-पुत्र दोनों मुशायरों में जाते थे। धीरे-धीरे मुंशी राममोहन का परिचय लखनऊ के कवि-समाज से हो गया। वह भी कुछ लिखने लगे, और अपनी कविताएँ मुहल्ले के शायर महाशय को दिखाने लगे। मुंशी राममोहन धीरे-धीरे मुशायरों में भी भाग लेने लगे। स्वाभाविक प्रतिभा को विकसित होने का अवसर मिला। थोड़े ही दिनों में उनका नाम चारो ओर लखनऊ में फैल गया। जिस मुशायरे में मुंशी राममोहन अपनी ग़ज़ल पढ़ते, उसमें उनके पिता अवश्य ही जाते, और पुत्र की प्रशंसा सुनने के लिये कान खड़े किए रहते। जिस दिन मुंशी राममोहन की ग़ज़ल अच्छी उतरती, और शायर एक स्वर में चिल्ला उठते—"वाह! क्या तबियत पाई है, लड़के, ज़रा फिर कहना! सुभान अल्लाह, जी चाहता है, क़लम चूम लूँ। वाह, ख़ूब लिखा है! ज़िंदा रहो। साहब, तारीफ़ नहीं हो सकती। क्या चुन-चुनके मिसरे लगाए हैं! वाह!" इसी प्रकार की प्रशंसा सुनकर वह आपे से बाहर हो जाते, और उस दिन उनके सौ-पचास रुपयों पर पानी फिर जाता। कभी फूल न्योछावर करते, और कभी पैसे लुटाते। शाम को यार-दोस्तों के साथ वही मसला पेश रहता, और बीस-पचीस कुज्जों तक नौबत पहुँचती थी। यह वह समय था, जब लखनऊ की नवाबी उषा-काल के प्रदीप की तरह निष्प्रभ होकर बुझनेवाली थी। नवाब वाजिदअली शाह की विलास-प्रियता सीमा को उल्लंघन कर गई थी। बारहदरी और क़ैसरबाग़ हूर-ओ-ग़िल्मा के क्रीड़ा-स्थल हो रहे थे। चारो ओर विलास की धूम थी। क्या राजा, क्या मंत्री और क्या साधारण व्यक्ति, सभी विलास में डूबे हुए थे। रेज़ीडेंट साहब बराबर पत्र-पर-पत्र भेजकर लखनऊ की स्थिति का परिचय लॉर्ड डलहौज़ी को दे रहे थे। वह अपनी आँखें गृद्ध की भाँति मरणासन्न लखनऊ पर लगाए हुए थे। अंत में, सन् १८५४ में, लखनऊ की

नवाबी सदा के लिये दफ़ना दी गई, और लखनऊ के लाड़िले नवाब वाजिदअली शाह कलकत्ते के मटियाबुर्ज़ में रहने के लिये भेज दिए गए।

मुंशी राममोहन के पिता की आयु इस समय लगभग ७९ वर्ष की थी। पुराने आदमी थे, अभी तक एक झुर्री नहीं पड़ी थी। शरीर हृष्ट-पुष्ट, मुख तेजोमय था। कंठ-स्वर दृढ़ और गंभीर था। जिस दिन नवाब वाजिदअली शाह लखनऊ से बिदा हुए, उस दिन मुंशी राममोहन के यहाँ चूल्हा नहीं जलाया गया। मुंशी राम-मोहन के पिता कई दिनों तक मलीन-मन रहे। एक दिन उन्होंने मुंशी राममोहन को बुलाकर कहा—"देखो, अब शायरी - वायरी छोड़ दो। यह वक़्त गुलछर्रे और मौज उड़ाने का नहीं है। अब मुसलमानों के दिन गए, फ़िरंगी ही हमारे राजा होंगे। लेकिन इसके पहले ग़दर की आग इस ज़ोर से भड़केगी कि या तो फ़िरंगी उस आग में जल जायँगे, या हिंदोस्तानी हमेशा के लिये ग़ुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ जायँगे। इसलिये, मेरा कहना मानकर, अब कुछ काम-काज में तबिअत लगाओ। फ़िरंगियों की ज़बान पढ़ो, और अगर इस वक़्त तुम कुछ भी पढ़ जाओगे, तो तुम्हें वे लोग बड़े आदर से सरकारी नौकरी देंगे। तुम अच्छी तरह जानते हो कि मेरे पास कुछ है नहीं; जो कुछ था, सब उड़ा दिया। लेकिन अब जो कुछ बचा है, उसे बचाने की कोशिश करूँगा। तुम भी मेहनत करो।"

मुंशी राममोहन की आयु इस समय लगभग १७ वर्ष के थी। सांसारिक झगड़ों से वह बिलकुल दूर रहते थे। शायरी का भूत सिर पर सवार था। पिता की बात का कुछ भी प्रभाव उन पर न पड़ा। वह पहले की तरह ऐश करते रहे। तीन वर्ष बाद मुंशी राममोहन के पिता की भविष्यवाणी पूर्ण हुई। देश-भर में विद्रोहाग्नि सुलग

उठी। उसकी चिनगारियाँ उड़कर लखनऊ में भी पहुँचीं, और लखनऊ की रेज़ीडेंसी घेर ली गई। अफ़ग़ानी और तूरानी रक्त जाग पड़ा। सोया हुआ बूढ़ा सिंह चौंककर उठ खड़ा हुआ। एक समय तो ऐसा मालूम होता था कि अब फ़िरंगियों का साम्राज्य गया, और उसकी जगह हिंदू-साम्राज्य स्थापित हुआ, किंतु अभी तक भारत को ग़ुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ा रहना था—पश्चिमीय सभ्यता का रंग चढ़ना अवशेष था! लखनऊ-निवासी हार गए, और उनकी हार के साथ-साथ देश फिर दासता की शृंखलाओं में आबद्ध हो गया। बूढ़ा सिंह हारकर फिर सोने लगा। हालाँकि मुंशी राममोहन के पिता ने विद्रोहियों का साथ नहीं दिया था, लेकिन फिर भी उनकी जायदाद छिन गई, और जान के लाले पड़ गए। जो कुछ जवाहरात और नक़द माल था, सबको लेकर कानपुर भाग आए, और वहीं रहने लगे। मुंशी राममोहन ने अब अपना ध्यान पढ़ने की ओर लगाया। एक-दो वर्ष में उन्हें कुछ ज्ञान हो गया, और अपने पिता के साथ, शांति स्थापित होने पर, लखनऊ चले गए। लखनऊ की गलियाँ छोड़कर मुंशी राममोहन के पिता किसी तरह भी कानपुर में न रह सकते थे। दो ही एक वर्ष में वह ऊबकर कानपुर से भाग खड़े हुए। लखनऊ पहुँचकर उन्होंने मुंशी राममोहन का विवाह किया। वधू सुशील और गुणवती मिली। उसकी चतुरता देखकर वह मुंशी राममोहन की ओर से निश्चिंत हो गए। उन्हें विश्वास हो गया कि अब सुख से दोनो का जीवन व्यतीत हो जायगा। वह अब भगवद्भजन और परलोक की चिंता में लग गए।

मुंशी राममोहन बहुत परिश्रम के बाद क़ानूनगो नियुक्त हुए। अँगरेज़ी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी, किंतु फिर भी कई वर्षों तक उन्हें उसी स्थान पर काम करना पड़ा। सबकी उन्नति हो

गई, उनके पीछे के लोग उनसे कहीं आगे बढ़ गए, किंतु वह उसी स्थान पर स्थित रहे। इसका कारण यह था कि वह बहुत ही सरल व्यक्ति थे। किसी की ख़ुशामद करना नहीं जानते थे। आत्माभिमान उनमें बहुत था। वह अपना काम सुचारु रूप से करते और किसी की परवा न करते थे। यही उच्छ्ृंखल प्रकृति उनकी उन्नति में शनि-रूप थी।

पंद्रह वर्ष पश्चात् मुंशी राममोहन के पिता का देहांत हुआ। उनकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो गई थीं। यदि कोई थी, तो वह पौत्र को खिलाने की। विवाह हुए बीस वर्ष के लगभग हो चुके थे, मुंशी राममोहन के बाल पक चले थे, किंतु उनके पुत्र नहीं हुआ था। उनके पिता केवल एक यही साध लेकर स्वर्ग चले गए।

ईश्वर की माया, उनके मरने के बाद एक ही वर्ष में मुंशी राम-मोहन के पुत्र हुआ। पति-पत्नी ने उस दिन शोक भी बनाया, और उत्सव भी। मुंशी राममोहन पुत्र की आशा छोड़ चुके थे, किंतु इस समय पुत्र पाकर उन्होंने कृतज्ञता-पूर्ण नेत्रों से आकाश की ओर देखा। उनकी आँखों के एक कोने में छिपा हुआ अश्रु-कण था। उनके मन ने धीरे से कहा—"तुम्हारे पिता ने ही पुत्र होकर जन्म लिया है।" उनका हृदय धक से रह गया, और वह उसी पर विचार करने लगे। ज्यों-ज्यों विचार करते, त्यों-त्यों उन्हें विश्वास होता कि पुत्र-रूप होकर उनके पिता ने ही जन्म लिया है।

पुत्र होने के दो-एक महीने पश्चात् वह सदर क़ानूनगो नियुक्त किए गए। उनका विश्वास और दृढ़ हो गया। उनके पिता श्रीकृष्ण भगवान् के भक्त थे। राधा और गोपियों की कथा वह सदैव पढ़ते रहते। 'राधारमण' कहकर ही अपने इष्टदेव का स्मरण करते। रात-दिन 'राधारमण' की चरचा करते थे। मुंशी राममोहन ने अपने पुत्र

का नाम राधारमण रक्खा। मृत पिता की स्मृति इस नाम में संक्षिप्त थी। हाय रे, मनुष्य का मोह और ममत्व !

मुंशी राममोहन के यहाँ एक पुत्र था, और वह भी वृद्धावस्था का था। इसके अतिरिक्त उनका आंतरिक विश्वास था कि यह उनके पिता का अवतार है, इसलिये वह उसकी तुच्छ-से-तुच्छ कामना पूर्ण करते। सारे सुख और सुविधाएँ वह उसे देते। राधारमण की बुद्धि अत्यंत कुशाग्र थी। थोड़े समय में उन्होंने उर्दू में कुशलता प्राप्त कर ली, और अँगरेज़ी पढ़ने के लिये वह स्कूल में जाने लगे। मुंशी राममोहन का भाग्य-तारा बड़े प्रकाश से चमक रहा था। अँगरेज़ी-भाषा में वह धारावाहिक रूप से बातें करते, और शिक्षकों में उन्होंने अपनी धाक जमा ली थी। मुख्य अध्यापक रेवरेंड बरनार्ड की कृपा उन पर विशेष रहती और उन्होंने इलाहाबाद में जाकर विश्वविद्यालय में पढ़ने की सलाह दी। मुंशी राममोहन राधारमण को अपनी आँखों से ओट करना नहीं चाहते थे। किंतु रेवरेंड बरनार्ड और राधारमण की ज़िद ने उन्हें अपने संकल्प से विचलित कर दिया, और राधारमण इलाहाबाद-विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये चले गए। जिस वर्ष वह इलाहाबाद गए, उसी वर्ष उनकी पितामही का स्वर्गवास हुआ, किंतु राधारमण अपने संकल्प से विचलित नहीं हुए। चार वर्ष में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके उन्होंने मुंशी राममोहन से इँगलैंड जाने की अनुमति माँगी। इँगलैंड जाने में कई बाधाएँ थीं, एक तो माता-पिता की अनिच्छा और दूसरे जाति-पाँति का डर। अब तक न-मालूम कितने विवाह के प्रस्ताव फेर दिए गए थे। राधारमण विवाह करना स्वीकार नहीं करते थे। एक दिन उनकी मा ने बड़े ही विनीत और वात्सल्य-पूर्ण स्वर में विवाह करने की प्रार्थना की। युवक राधारमण किसी प्रकार भी सहमत न होते थे। उनके सामने इँगलैंड जाने की लालसा थी।

मुंशी राममोहन ने भी बहुत समझाया, किंतु वह अपने विचार पर दृढ़ रहे। रेवरेंड बरनार्ड इस समय लखनऊ के मुख्य पादरी थे। राधारमण फिर उनकी शरण में गए, और सहायता माँगी। उन्होंने मुंशी राममोहन को बुलाकर राधारमण को इँगलैंड भेजने के लिये अनुरोध किया। मुंशी राममोहन ने अपनी आर्थिक असमर्थता प्रकट की। बरनार्ड साहब ने कहा कि वह उसके जाने का व्यय अपने पास से देंगे, और वहाँ रहने के लिये वही प्रबंध कर देंगे। मुंशी राममोहन ने कुछ ठीक उत्तर न दिया, और चले आए।

पिता-पुत्र में कई महीनों तक वाद-विवाद चलता रहा। मा का वात्सल्य, उनकी अनुनय-विनय और पिता का स्नेह राधा-रमण को अपने संकल्प से विचलित न कर सका। अंत में उन्हें इँगलैंड जाने की अनुमति देनी पड़ी, किंतु एक शर्त पर; विवाह करने के पश्चात्। राधारमण विवाह करने पर राज़ी हो गए। उनका मुख्य अभिप्राय तो इँगलैंड जाना था, और उनके माता-पिता का विचार था कि विवाह हो जाने से उनके इस संकल्प में शिथिलता आ जायगी, और वह विदेश न जायँगे। इसके अति-रिक्त यदि वह इँगलैंड भी गए, तो उनके विवाह आदि में विघ्न-बाधा तो न पड़ेगी।

मुंशी राममोहन ने उसी वर्ष उनका विवाह कर दिया। विवाह भी उन्होंने एक अद्भुत सुंदरी बालिका से किया। बालिका यद्यपि अत्यंत निर्धन वंश की थी, किंतु सौंदर्य और कुलीन वंश ने उसके तुच्छ दोष को हरण कर लिया था।

विवाह के पश्चात् राधारमण की मा अपनी वधू को राधा-रमण को अटकाकर रखने का उपदेश देने लगी। राधारमण की पत्नी ने अनेक उपाय किए, किंतु वह किसी प्रकार अपने विचार से विचलित नहीं हुए।

सन् १८६८ में रेवरेंड बरनार्ड से कई एक परिचय-पत्र प्राप्त कर, अगस्त-मास में, इँगलैंड के लिये, उन्होंने प्रस्थान किया। माता की अश्रु-नदी, पत्नी की एकांत-प्रार्थना और पिता के स्नेह-पूर्ण अनुरोध को उल्लंघन करके सुदूर विदेश को चल दिए। वृद्ध मुंशी राममोहन अपना कलेजा मसोसकर रह गए। उन्होंने सब काम-काज छोड़ दिया, और अपने मन को ईश्वर की आराधना में लगाकर शांत करने की चेष्टा करने लगे। सप्ताह में एक पत्र आता था। जिस दिन पत्र आने का दिन होता, उस दिन प्रातःकाल से ही मुंशी राममोहन अपने घर के द्वार पर जाकर बैठते, और चौराहे की ओर देखा करते। डाकिए की जहाँ लाल पगड़ी दिखलाई दी, वह नंगे पैरों उससे मिलने के लिये दौड़ पड़ते। डाकिया भी इनसे भली भाँति परिचित था। वह भी पहले मुंशीजी का पत्र दे जाता, फिर और कहीं जाता। मुंशीजी को देखते ही उसके मुख पर एक हल्की हास्य-रेखा दिखाई पड़ती, और तुरंत उनका पत्र उन्हें दे देता। पत्र पाकर वह उसे खोल डालते और वहीं खड़े-खड़े पढ़ने लगते। एक ही बार पढ़कर उन्हें आश्वासन न होता। वह बार-बार उसे पढ़ते और फिर स्वस्थ होकर घर की ओर आते। घर आकर अपनी स्त्री और वधू के सामने पढ़ते। यहाँ भी एक अथवा दो बार का पढ़ना यथेष्ट न था। बार-बार पढ़वाकर दोनो सुनतीं। उस दिन उनकी विकलता कुछ कम होती। परंतु दूसरे दिन से फिर वह दूसरे पत्र की प्रतीक्षा करने लगते।

इसी प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गए। मुंशी राममोहन प्रतिमास नियमित रूप से व्यय भेजते रहते। कुछ पुरानी संपत्ति थी, और कुछ स्वयं उपार्जन की थी। दो वर्ष निर्विघ्न समाप्त हो गए। उन्हें विश्वास था कि राधारमण अब आ जायँगे। उनके शोक और आश्चर्य का ठिकाना उस दिन न रहा, जब उन्हें पत्र मिला, जिसमें

लिखा था कि दो वर्ष अभी और ठहरने की इच्छा है। वह किसी भाँति भी न आ सकेंगे। मुंशी राममोहन हताश होकर गिर पड़े, और उनकी स्त्री ने उसी दिन से चारपाई पकड़ ली।

मुंशी राममोहन ने एक पत्र में घर का सब यथावत् हाल लिखकर आने का अनुरोध किया। दूसरे पत्र में खर्च बंद करने की धमकी दी, किंतु किसी प्रकार भी राधारमण अपने विचार से हटे नहीं। उन्होंने उत्तर में लिखा कि उनके पास इस समय काफ़ी रुपए हैं, जिससे उनका दो वर्ष का काम भली भाँति चल जायगा, आप इसके लिये चिंता न करें। मुंशी राममोहन विवश होकर उस समय की प्रतीक्षा करने लगे।

किसी प्रकार दो वर्ष बीत गए। एक दिन बिना सूचना के राधारमण बंबई में 'लूमी टेनिया' जलयान से आ पहुँचे। उनकी इच्छा थी कि वह अचानक जाकर माता-पिता को चकित करें। वह उसी दिन बंबई-मेल से लखनऊ के लिये चल दिए। घर पहुँचकर देखा कि उनके घर की दशा बड़ी शोचनीय है। बाहर की बैठक बंद है, जो कभी बंद न रहती थी। द्वार के चारो ओर मकड़ी का जाला फैला हुआ है, और मनो धूल पड़ी हुई है। उन्हें भ्रम हुआ कि यह घर उनका नहीं है, वह भूलकर दूसरे मुहल्ले में आ गए हैं। लेकिन सामनेवाला नीम का पेड़ और शीतलादेवी का चबूतरा गवाही दे रहे थे कि यही उनका घर है। मुहल्ले के लड़के एक 'साहब' को देखकर, उनकी गाड़ी चारो ओर घेरकर खड़े थे। उनमें से किसी को भी बुलाकर पूछने का साहस न हुआ। वह शंकित और कंपित हृदय से घर के भीतर घुसे। घर के भीतर घुसते ही प्रथम उनकी दृष्टि अपनी स्त्री पर पड़ी। सुंदर मुख सूखकर काँटा हो गया था। उनकी स्त्री ने उन्हें साहबी वेश में न पहचाना। वह दौड़कर भीतर चली गई, और चिल्लाकर कहा—"अम्माजी, देखिए कौन भीतर घुस आया है।"

मुंशी राममोहन घर में थे। वह शून्य दृष्टि से छत की कड़ियाँ निरख रहे थे। अपनी वधू की चिल्लाहट सुनकर वह बाहर निकल आए। पिता को देखते ही राधारमण चरण-धूलि लेने के लिये आगे बढ़े। मुंशी राममोहन हत-बुद्धि होकर राधारमण की ओर देखने लगे। क्षण ही भर में पहचानकर कहा—"कौन ? राधे।" और बड़े आवेग से राधारमण के गले से चिपट गए। आनंद के आँसू बह-बहकर दोनो का हृदय स्वच्छ करने लगे।

थोड़ी देर में राधारमण अपनी मा से मिले। वृद्धा मा बहुत दिनों से बीमार थी, किंतु पुत्र का आगमन सुनते ही उसके तंतुओं में न-जाने कहाँ का बल आ गया। वह उठकर दौड़ी चली आई, और दूसरे ही क्षण राधारमण से चिपटकर रोने लगी। केवल सरस्वती (राधारमण की पत्नी का यही नाम था) ने इस अपूर्व मिलन को दूर से देखकर अपनी साध मिटा ली। राधारमण के आने के दूसरे दिन प्रायश्चित्त की चरचा होने लगी। राधारमण प्रायश्चित्त करने के लिये तैयार न थे, किंतु माता-पिता के एकांत अनुरोध को वह टाल न सके, और प्रायश्चित्त करके समाज में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त कर लिया।

उन्होंने वकालत शुरू की। पहले उनका विचार इलाहाबाद जाकर हाईकोर्ट में वकालत शुरू करने का था, किंतु माता-पिता को कष्ट देना उन्होंने अब उचित नहीं समझा, और लखनऊ को अपने व्यवसाय का केंद्र बनाया।

सरस्वती को बहुत दिनों पति-सहवास का सुख प्राप्त न हो सका। बाबू राधारमण के आगमन के एक वर्ष पश्चात् मनोरमा को जन्म देकर काल-कवलित हो गई। बाबू राधारमण सरस्वती की मृत्यु से बिलकुल कातर हो गए। उसके अगाध प्रेम और सेवा से वह भली भाँति परिचित भी न होने पाए थे कि वह देवी संसार से चल बसी।

उनके माता-पिता तो बहुत ही कातर हो गए। दोनो सरस्वती को प्राणों से भी प्रिय मानते थे, किंतु भगवान् की कृपा, फूलने-फलने के समय विधाता भी वाम हो गया। मनोरमा अपनी दादी के पास पलने लगी।

बाबू राधारमण इतने हत-बुद्धि हो गए थे कि उन्होंने एक प्रकार से मुक़द्दमे लेना छोड़ दिया था। रात-दिन बैठे हुए सोचा करते। माता-पिता दूसरे विवाह की तजवीज़ करने लगे। बाबू राधारमण किसी प्रकार राज़ी न हुए। उनकी मा अब बहुत ही वृद्ध हो चुकी थी। मनोरमा का पालन-पोषण वह भली भाँति न कर सकती, किंतु मनोरमा को अपनी छाती से अवश्य लगाए रहती। विधाता को वह भी अच्छा न लगा, और सरस्वती की मृत्यु के डेढ़ वर्ष पश्चात् वह भी स्वर्ग चल दी। अब मुंशी राममोहन को घर बसाने की चिंता हुई। जिस दिन वह अपनी सहधर्मिणी की अंतिम क्रिया करके लौटे, उसी दिन संध्या समय उन्होंने बाबू राधारमण से पूछा—"अब मन्नी की कौन देख-रेख करेगा?" बाबू राधारमण के सामने भी यही प्रश्न था। अंत में बाबू राधारमण ने दूसरा विवाह करना स्वीकार किया। मनोरमा एक दूर के नाते की बुआ के पास रहने लगी।

उसी वर्ष, फाल्गुन-मास में, बाबू राधारमण का विवाह, लखनऊ के सुप्रतिष्ठित रईस बाबू मथुराप्रसाद की आयुष्मती कन्या श्रीमती राजेश्वरीदेवी के साथ, हुआ। राजेश्वरी यदि सरस्वती से बढ़कर न थी, तो किसी प्रकार हीन भी न थी। उसने मनोरमा को अपनी गर्भ-जात पुत्री माना, और उसका लालन-पालन करने लगी। मनोरमा ने कई वर्ष तक नहीं जाना कि वह उसकी मा नहीं है। राजेश्वरी ने एक दिन भी उसे मातृहीन समझने का अवसर नहीं दिया। राजेश्वरी का ऐसा अद्भुत व्यवहार देखकर बाबू राधारमण और मुंशी राममोहन निश्चित हो गए।

मुंशी राममोहन भी अब बहुत जर्जरित हो गए थे। थोड़े दिनों में वह भी चारपाई से लग गए, और दो महीने तक मृत्यु से लड़ते रहे। राजेश्वरी और बाबू राधारमण ने सेवा में कुछ उठा न रक्खा, किंतु भावी प्रबल। अंत में मृत्यु की जीत हुई, और मुंशी राममोहन संसार छोड़कर किसी अन्य अनजान लोक की ओर चल दिए। मृत्यु के समय वह बहुत सुखी थे, और राजेश्वरी की पीठ पर हाथ फेरकर उन्होंने अखंड सौभाग्य का आशीर्वाद दिया, और अपने प्राणों से भी प्रिय मन्नी को राजेश्वरी के हाथों में सौंप सानंद संसार छोड़कर चल दिए।

---

(४)

राजेंद्रप्रसाद को आए एक सप्ताह बीत गया। मनोरमा का पढ़ना-लिखना एक प्रकार से छूट गया था। कल परीक्षा आरंभ होनेवाली थी। दोपहर को वह किताब लेकर पढ़ने बैठी। मन एकाग्र करने का यत्न करने लगी, किंतु चंचल मन किसी प्रकार मानता न था। वह बार-बार कल या परसों की रात की किसी-न-किसी घटना को लेकर सोचने लग जाती। उसके नेत्र अपना कार्य भूल जाते, और पुस्तक सिर्फ़ काली लकीरों से भरी हुई विदित होती। थोड़ी देर में चौंककर वह फिर पढ़ने का यत्न करती। जहाँ से छोड़ा था, वहाँ से फिर पढ़ती, किंतु उसकी समझ में कुछ न आता था। अपने को अच्छी तरह ठीक कर, एक गिलास पानी पीकर, फिर पढ़ने के लिये मेज़ पर पुस्तक रखकर बैठ गई। कुरसी पर की गद्दी निकालकर फेंक दी, जिससे उसका ध्यान दूसरी ओर न जाय। कानों में उँगलियाँ डालकर उन्हें सुनने से मजबूर कर दिया, और सिर झुकाकर पढ़ने लगी। किंतु न-मालूम कब उसका मन कहाँ चला गया। वह फिर किसी प्रेम की गुत्थी सुलझाने में व्यस्त हो गई।

राजेंद्रप्रसाद दबे पैरों आकर, झाँककर मनोरमा को देखने लगे। मनोरमा कानों में उँगलियाँ लगाए बैठी हुई थी। उसका सिर झुका हुआ था, इस कारण उसका मुख दिखाई न पड़ता था।

राजेंद्रप्रसाद निःशब्द आकर मनोरमा के पीछे खड़े हो गए। मनोरमा कुछ न सुनने का पहले से आयोजन कर चुकी थी, उसे कुछ सुनाई भी न पड़ा। वह अपने विचार-सागर में गोते लगा रही थी।

वह उनका आगमन न जान सकी। राजेंद्रप्रसाद उसकी आँखें मीच-कर चुपचाप हँसने लगे। मनोरमा की विचार-धारा टूटकर न-जाने कहाँ अदृश्य हो गई। उसकी तन्मयता भंग हो गई, और कानों से उँगलियाँ निकालकर दोनो हाथों से उनके दोनो हाथों को पकड़ लिया।

राजेंद्रप्रसाद हँसने लगे। मनोरमा ने उनका हाथ हटाते हुए कहा—"छोड़िए जनाब, कल मेरी परीक्षा है, कुछ पढ़ने दीजिए।"

राजेंद्रप्रसाद ने आँखें छोड़कर उसका हाथ पकड़कर उसके सहजारुण कपोलों पर अपने अगाध प्रेम की मुहर जड़ते हुए कहा—"क्यों, क्या तुम सचमुच पढ़ रही थीं?"

मनोरमा ने कहा—"आपके मारे जब पढ़ने पाऊँ, तब तो पढ़ूँ। कल 'पोयट्री' (काव्य) का पेपर है। 'आथेलो' ही समाप्त कर पाई हूँ, अभी न-जाने कितना पढ़ना बाक़ी है। यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो लीजिए, मैं न पढ़ूँगी।" यह कहकर मनोरमा ने 'गोल्डेन ट्रेज़री' नाम की पुस्तक बंद करके मेज़ पर फेंक दी।

राजेंद्रप्रसाद ने मनोरमा के दोनो हाथों को फिर पकड़ लिया, और उसे उठाते हुए कहा—"अच्छा, उठो। बहुत पढ़ लिया है। साल-भर तो पढ़ा नहीं, अब पढ़ने बैठी हैं, मानो एक ही दिन में सब याद कर लेंगी। मैं अच्छी तरह जानता हूँ, जैसा आप पढ़ रही थीं। कानों में उँगलियाँ लगाए कैसे एकाग्र चित्त से पढ़ रही थीं। पढ़ रही थीं, या कुछ सोच रही थीं। क्यों मन्नो, कौन ऐसा भाग्यवान् है, जिसके संबंध में इतनी तल्लीनता से सोच रही थीं?"

मनोरमा ने कुरसी से उठते हुए कहा—"मैं क्यों बताऊँ?" फिर थोड़ी देर बाद कहा—"जब से आप आए, पढ़ने में तबियत नहीं लगती।" कहते-कहते मनोरमा का गाल लाल हो गया, मुख पर एक सुंदर हास्य-श्री नृत्य करने लगी। राजेंद्रप्रसाद हँसने

लगे। दंपति आकर सोफ़े पर बैठ गए। दोनो चुप हो गए, दोनो न-मालूम क्यों एक दूसरे से बात करने के लिये लालायित होते हुए भी बात न कर सके। मनोरमा का एक हाथ राजेंद्रप्रसाद के हाथ पर था, और एक उनके गले में। उनका भी एक हाथ उसका हाथ पकड़े था, और एक हाथ गले में। उन्होंने मनोरमा को धीरे-धीरे अपनी ओर घसीटना आरंभ किया। मनोरमा शिथिल शरीर से उनकी ओर खिंचने लगी।

राजेंद्रप्रसाद ने उसका मुख चूम लिया। मनोरमा ने उसका उत्तर दिया, किंतु दूसरे क्षण लजाकर उनके स्कंध में अपना मुख छिपा लिया। वह उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे, और बार-बार उसके आलुलायित केश-दाम को सुलझाने लगे। दोनो अपनी अवस्था, दशा-स्थिति भूलकर प्रेम-राज्य में भ्रमण करने लगे। प्रेमदेव अपने दो शिकारों को अपने बाणों से छिद्र करके उनकी ओर अधखुले नेत्रों से देख रहे थे। मनोरमा भी अर्ध-प्रस्फुटित नेत्रों से उनकी ओर देख रही थी। उसकी नयन-पुतलियाँ ऊपर की ओर थीं। बेसुधी और शिथिलता, दोनो प्रेमदेव के चोबदार हैं। लालसा और आवेश, दोनो लज्जा के विकट शत्रु हैं।

मनोरमा ने धीरे-धीरे अपना मस्तक उनके कंधे से हटाकर उनके वक्षःस्थल पर रख दिया। राजेंद्रप्रसाद के हृदय में गुदगुदी होने लगी। मनोरमा दोनो हाथों से उनके गले में झूल गई। राजेंद्रप्रसाद अधीर हो उठे। उन्होंने आवेश में आकर उसके ओष्ठों को चूम लिया। मनोरमा भी वल्लरी की भाँति लिपटकर उनका अधर पान करने लगी। एक मीठा-मीठा, अत्यंत सुखद रोमांचकारी तड़ित्प्रवाह राजेंद्र के ओठों से दौड़कर सारे शरीर में झंझावात पैदा करने लगा। अब असह्य हो उठा। यह मदन-

देव का दूसरा बाण था। राजेंद्र ने बल-पूर्वक उसे घसीटकर, दोनो हाथों से अच्छी तरह बाँधकर हृदय से लगा लिया, और स्वयं बेहोश होकर मनोरमा का अधरामृत पान करने लगे। मदनदेव ने अपना तीसरा बाण ताना। पुष्प-धनुष चढ़ाकर तीसरा कुसुम-शर छोड़नेवाले थे कि बाहर किसी की हास्य-ध्वनि ने उन्हें चौंका दिया। तड़िद्वेग से मनोरमा राजेंद्रप्रसाद को छोड़कर उठ खड़ी हुई। उसका शरीर बेंत की तरह काँप रहा था, नेत्र नीचे की ओर झुके जा रहे थे, गालों पर लालिमा कभी दौड़ जाती, और कभी फिर अदृश्य हो जाती। हृदय-स्पंदन बड़े वेग से हो रहा था। मस्तक पर श्रम-बिंदु झलक रहे थे, और वह सिर नत किए हुए अपने वस्त्र व्यवस्थित कर रही थी। राजेंद्र की भी ऐसी ही दशा थी।

मनोरमा ने धीरे से सक्रोध कहा—"यह तुमने क्या किया?"

राजेंद्रप्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह शंकित हृदय से बाहर देखने लगे।

हँसनेवाली मनोरमा की बाल्य सहेली और सहपाठिनी कुसुमलता थी। कुसुमलता ने भीतर आकर कहा—"आप दोनो मुझे क्षमा करें, मैं बहुत बेमौक़े आई।"

मनोरमा लजाकर संकुचित हो गई।

कुसुमलता ने फिर राजेंद्रप्रसाद से कहा—"महाशय, मेरा आपसे यद्यपि कुछ विशेष परिचय नहीं है, तथापि मेरी बाल्य सहेली के आप पति हैं। आशा है, इस अपराध को आप क्षमा करेंगे।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—"यह मेरा भाग्य था, जो आपके दर्शन हुए। आइए, तशरीफ़ रखिए।"

कुसुमलता ने मनोरमा की तरफ़ देखते हुए उत्तर दिया—

"नहीं, मैं अब जाऊँगी। कल परीक्षा है, इसलिये आपसे कुछ सहायता लेने आई थी, किंतु मैं देखती हूँ कि आप व्यस्त हैं।" यह कहकर कुसुमलता जाने के लिये उद्यत हो गई।

मनोरमा ने उसे जाते देखकर पकड़कर कहा—"अब कहाँ जाओगी? आओ, तुम्हारा परिचय करवा दूँ।"

कुसुमलता ने हाथ छुड़ाकर कहा—"नहीं, मुझे जाने दो। मैं तुम्हारे सुख में बाधा नहीं डालना चाहती। परिचय तो मैंने स्वयं दे दिया है, और मैं मिस्टर वर्मा को अच्छी तरह जानती हूँ। भई, मुझे जाने दो।"

मनोरमा ने पुनः उसका हाथ पकड़कर कहा—"मालूम होता है कि आप नाराज़ हो गईं।" फिर अपने स्वामी की ओर देखते हुए कहा—"आपका नाम है श्रीमती कुसुमलतादेवी, आप मेरी सह-पाठिनी हैं। इंटरमीजिएट में प्रथम हुई थीं, और बी० ए० में भी होने की आशा है। आप लखनऊ-चीफ़ कोर्ट के जज सर रामप्रसाद की पुत्री हैं। आपको इसी वर्ष सौंदर्य-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिला है।"

कुसुमलता ने हँसते हुए कहा—"अरे भई, बस, बहुत है। सौंदर्य की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। मिस्टर वर्मा अच्छी तरह जानते हैं कि कौन अधिक सुंदर है। अगर तुम उस दिन बीमार न पड़ जातीं, तो क्या मुझे पुरस्कार मिल पाता?"

मनोरमा ने हँसकर उत्तर दिया—"बीमारी से क्या हुआ, हर हालत में प्रथम पुरस्कार तो तुम्हें ही मिलता।"

कुसुमलता ने अरुण कपोलों और सलज्ज दृष्टि से राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा। दोनो की आँखें चार हुईं, और कुसुमलता के नेत्र अपने आप नत हो गए।

कुसुमलता ने मनोरमा के चुटकी काटकर धीमे स्वर में कहा—

"नहीं मानोगी, तुम आज बहुत बढ़-बढ़कर बातें कर रही हो। अच्छा, मैं फिर कभी तुम्हें बतलाऊँगी।"

मनोरमा छिटककर दूर खड़ी हो गई, और सिसकते हुए स्वर में कहा—"अरे, प्रशंसा करने के बदले में यह पुरस्कार मिला। देखो, ख़ून निकल आया, नाख़ून क्या इसीलिये बढ़ा रक्खे हैं।"

कुसुमलता ने भयभीत होकर कहा—"क्षमा करना, चोट पहुँचाने का मेरा मतलब नहीं था।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"मुझे कुछ डॉक्टरी में भी दख़ल है। अगर आदेश मिले, तो कुछ उपाय करूँ।"

कुसुमलता ने हँसकर कहा—"हाँ, आप इनका इलाज न करेंगे, तो दूसरा कौन करेगा। इनके सब रोगों की औषधि तो आपके पास है। आज मैंने बहुत दिनों में इन्हें हँसते हुए देखा है। आपके आने से इनका 'मौन रोग' अच्छा हुआ है, नहीं तो सदैव अन्यमनस्क रहती थीं। आपने न-मालूम इन पर कौन-सा जादू कर दिया था, जिससे, सदैव विमोहित-सी निस्तब्ध रहती थीं। क्लास में भी हम लोगों से कभी न बोलती थीं। उस दिन जब आपका पत्र मिला, तब जाकर कहीं इनके मुख पर हँसी आई थी। उफ़्!"

मनोरमा ने कुसुमलता के चुटकी काट ली। उसका मुख लाल हुआ जा रहा था!

राजेंद्रप्रसाद ने पूछा—"कहिए, क्या हुआ? क्या आपके भी चुटकी काटी गई?"

कुसुमलता ने अपने हाथ से उस क्षत स्थान को सहलाते हुए कहा—"कुछ पूछिए नहीं। बदला लेने में आप बड़ी चतुर हैं। कभी कुछ बाक़ी नहीं रखतीं। मैंने तो धीरे से काटा था, लेकिन इन्होंने तो सत्य ही मेरे ख़ून निकाल दिया।"

मनोरमा ने मुस्किराते हुए कहा—"कहिए, अब आपकी दवा किसके पास है ?"

कुसुमलता के मुख का रंग जाता रहा। उसकी सहज श्री लुप्त हो गई। उसने अपना सिर नत कर लिया।

मनोरमा को अब अपनी भूल जान पड़ी। कुसुमलता विधवा थी। उसके स्वामी की मृत्यु उसके बाल्य काल में हो चुकी थी। मनोरमा के शब्दों ने उसके हृदय में तीक्ष्ण शरों की भाँति बिधकर उसकी उमंग को घायल कर दिया। सत्य ही उसके असाध्य रोग की ओषधि किसके पास है ? मनोरमा उसका मलीन मुख देखकर सहम गई। हँसी-हँसी में उसने कुसुमलता के उस मर्म स्थान पर आघात किया, जो उसका सबसे कोमल स्थान है। जो दुखी होता है, यदि उसके संबंध में कोई अनजान में कुछ कह देता है, जिसका संपर्क उसके दुःख से होता है, वह उसे व्यंग्य समझता है। अपनी दशा के वास्तविक रूप का दूसरा नाम व्यंग्य है।

राजेंद्रप्रसाद भी उसकी दशा का हेर-फेर देख चकित रह गए। उन्हें यह न मालूम था कि कुसुमलता बाल-विधवा है। वह साश्चर्य मनोरमा और कुसुमलता की ओर देखने लगे। मनोरमा ने कहा—"कुसुम, कुछ पढ़ोगी नहीं ? कल इम्तिहान है। मुख्य-मुख्य बातें, आओ, देख जायँ।"

कुसुमलता की मुख-श्री अंतर्हित हो गई थी, किंतु उसने अपने हृदय में उठते हुए शोकोच्छ्वास को ज़ब्त कर लिया, और थोड़ी देर में उसकी सहज श्री लौट आई। कुसुमलता फिर प्रफुल्लित हो गई। मनोरमा के निमंत्रण के उत्तर में उसने हँसकर कहा—"जब मिस्टर वर्मा-से धुरंधर पंडित आपके पास हैं, तो मैं क्या बतला सकती हूँ। मैं तो स्वयं कुछ पूछने आई थी।"

मनोरमा ने कहा—"अच्छा, बहुत बनो नहीं। बोलो, कुछ पढ़ाओगी या नहीं ?"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"इसमें बनने की कौन बात ? हाँ, तुम अगर कुछ बताओ, तो मैं सुनने के लिये तैयार हूँ।"

फिर राजेंद्रप्रसाद से कहा—"मिस्टर वर्मा, क्या आप मेरी कठिनाइयाँ दूर कर देने की कृपा करेंगे ?"

राजेंद्रप्रसाद ने प्रसन्न मन से कहा—"क्यों नहीं, जो कुछ मैं जानता हूँ, समझा दूँगा। हाँ, अगर मेरी समझ में न आया, तो दूसरी बात है।"

कुसुमलता ने कहा—"हाँ, लेकिन मैं देखती हूँ कि आप भी बहुत बनना जानते हैं। मेरी सखी से आप किसी प्रकार कम नहीं हैं। क्यों न हो, आख़िर आप मेरी सखी के स्वामी हैं। सखी की प्रकृति का असर भला कब तक न पड़ेगा, और कहाँ तक आप अपने को उनके असर से बचा सकते हैं, जैसा कहा भी है—'तुख़्म तासीर, सोहबत असर।'"

राजेंद्रप्रसाद हँसने लगे।

मनोरमा ने उठते हुए कहा—"अच्छा, मैं ज़रा पान ले आऊँ। पान खाने की तबियत हो रही है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"पान गिलौरीदान में हैं।"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"वे अच्छे नहीं हैं, सूख गए हैं। ताज़े पान लगा लाऊँ।"

कुसुमलता ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"तुम क्यों जाओ, नौकर से कह दो, दे जायगा।"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"नौकर क्या पान लगाएगा ? अभी उस दिन तुम्हारा ही मुँह फट गया था।" फिर धीरे से कहा—"थोड़ी देर तुम भी इनसे आलाप कर लो, इसीलिये मैं जाती हूँ।"

यह कहकर मनोरमा शीघ्रता से हाथ छुड़ाकर कमरे के बाहर चली गई। कुसुमलता मना करती ही रही, लेकिन मनोरमा ने उस पर किंचित् ध्यान न दिया।

मनोरमा के जाने के बाद कमरे में नीरवता छा गई। राजेंद्रप्रसाद और कुसुमलता, दोनो अपने-अपने स्थान पर मौन बैठे रहे। किसी का साहस एक दूसरे से बात करने का न हुआ। कुसुमलता ने मेज़ पर से एक किताब उठा ली, और उसकी आड़ में अपना मुख छिपा लिया। राजेंद्रप्रसाद द्वार की ओर देखने लगे। क्षण-भर के पश्चात् कुसुमलता के हाथ से पुस्तक गिर पड़ी। पुस्तक गिरने के शब्द से कमरे की नीरवता भंग हो गई। राजेंद्रप्रसाद चौंककर कुसुमलता की ओर देखने लगे। कुसुमलता का मुख लाल होने लगा। वह झुककर किताब उठाने लगी।

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"मालूम होता है, आपकी आँखें नींद से झिप गई थीं। गरमी के दिन मनुष्य को बहुत सुस्त कर देते हैं।"

कुसुमलता ने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—"नहीं, मुझे नींद तो नहीं लगी। नहीं कह सकती कि क्यों किताब हाथ से गिर पड़ी।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"आप शायद अन्यमनस्क हैं, कुछ सोच रही थीं। किताब मुँह के सामने रखने का एक बहाना-मात्र है। क्यों?"

कुसुमलता कुछ उत्तर न देकर चुपचाप सलज्ज हँसी हँसने लगी। दोनो फिर चुप हो गए। कुसुमलता ने इस बार अपना मुख फिरा-कर मेज़ की ओर कर लिया, और फिर पढ़ने का प्रयत्न करने लगी।

थोड़ी देर बाद मनोरमा ने लौटकर कहा—"क्यों कुसुम, अब तो पढ़ोगी या नहीं?"

कुसुमलता ने कहा—"मैं तो तैयार हूँ। यह कहो कि तुम पान-घान तो खा आईं। अच्छा, आओ कुछ पढ़ें। व्यर्थ समय नष्ट करना ठीक नहीं।"

मनोरमा ने बैठते हुए कहा—"मैं तो तैयार हूँ, पढ़ो।"

राजेंद्रप्रसाद ने उठते हुए कहा—"आप लोग पढ़ें, मैं जाता हूँ। मेरे यहाँ रहने से आप लोगों का समय नष्ट होगा।"

कुसुमलता ने मनोरमा की ओर देखा, और फिर धीरे-धीरे कहा—"वाह! आपके रहने से क्या समय नष्ट होगा? अगर आप चले जायँगे, तो हम लोगों को अर्थ कौन समझाएगा?"

मनोरमा की आंतरिक इच्छा न थी कि राजेंद्रप्रसाद वहाँ ठहरें। उसे उनके सामने पढ़ते हुए न-मालूम किस प्रकार की लज्जा लग रही थी। कुसुमलता ने उसकी सम्मति जानने के लिये उसकी ओर देखा, मनोरमा ने कुछ उत्तर न दिया।

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"जब कोई कठिनाई आ पड़े, मुझे बुला लीजिएगा, मैं यथाशक्ति समझा दूँगा। लेकिन मेरे यहाँ रहने से आप लोगों का पढ़ना न हो सकेगा।"

कुसुमलता ने फिर आपत्ति करते हुए कहा—"नहीं, आपको यहाँ रहना होगा। आप हम लोगों को छोड़कर नहीं जा सकते! यदि आप मेरे कारण जा रहे हैं, तो मैं जाती हूँ। एक तो मैंने आकर आपका.........।"

कुसुमलता हँसने लगी। राजेंद्रप्रसाद भी हँसने लगे। वह हँसकर उसी सोफ़ा पर बैठ गए।

कुसुमलता और मनोरमा पढ़ने लगीं। कुसुमलता 'ऐज़ यू लाइक इट' उठाकर पढ़ने लगी। कुसुमलता का कंठ-स्वर इतना मधुर था, पढ़ने का ढंग इतना ललित था, उच्चारण इतना ठीक था कि राजेंद्र-प्रसाद चकित रह गए। वह मुग्ध होकर सुनने लगे।

कुसुमलता भी अपनी लज्जा छोड़कर निर्भीक पढ़ रही थी। मनोरमा मंत्र-मुग्ध की भाँति सुन रही थी। कुसुमलता 'जाक्स' के चरित्र की आलोचना करने लगी। मनोरमा ने एक आध प्रश्न किए, कुसुमलता ने इतनी सरलता से उनका उत्तर दिया, मानो शेक्सपियर के सब नाटक, उसने पढ़ लिए हैं—पढ़ ही नहीं, वरन् भली भाँति मनन कर समझ भी लिए हैं।

थोड़ी देर बाद कुसुमलता ने कहा—"अब तुम पढ़ो, मैं सुनूँ। मेरा गला दुखने लगा है।"

मनोरमा ने किसी भाँति पढ़ना स्वीकार नहीं किया। कुसुमलता फिर पढ़ने लगी।

थोड़ी देर बाद कुसुमलता ने राजेंद्रप्रसाद से पूछा—"ब्रैडले साहब का कहना है कि जाक्स हैमलेट का प्रथम रूप है। आपकी सम्मति इस पर क्या है?"

राजेंद्रप्रसाद कुसुमलता का अगाध पांडित्य देखकर विस्मित हो रहे थे, और प्रसन्न भी। उनकी भी योग्यता धीरे-धीरे जाग रही थी। तीन-चार वर्ष पहले का पढ़ा हुआ सब याद आ रहा था। कुसुमलता का प्रश्न सुनकर वह स्थिर न रह सके, और उन्होंने उसके प्रश्न के उत्तर में बहुत कुछ कह डाला। उसी प्रश्न तक बस न था, शेक्सपियर की शैली, काव्य-मर्मज्ञता आदि विषय पर भी वह मुतवातिर एक घंटे तक बोलते रहे। मनोरमा और कुसुमलता मंत्र-मुग्ध की भाँति सुन रही थीं। कुसुमलता उनका पांडित्य देखकर दंग रह गई। उसे स्वप्न में भी विश्वास न था कि शेक्सपियर के विषय में उनका इतना ऊँचा ज्ञान होगा। मनोरमा तो मंत्र-मुग्ध होकर उनका मुख-चंद्र चकोरी की भाँति एकटक देख रही थी।

राजेंद्रप्रसाद जब अपना वक्तव्य समाप्त कर चुके, तो कुसुमलता ने कहा—"मिस्टर वर्मा, मालूम होता है, आपने शेक्सपियर पर

एक किताब भी नहीं छोड़ी। आपने तो एम्० ए० फ़िलॉसिफ़ी में पास किया है ? आप शेक्सपियर के विषय में इतना जानते हैं, जितना हमारी शिक्षिका मिस वर्ड्सवर्थ शायद ही जानती हों। मन्नी, ऐसा पति पाने के लिये मैं तुम्हें बधाई देती हूँ !"

मनोरमा का मुख पति-गौरव से लाल हो उठा। राजेंद्रप्रसाद मुस्किराने लगे। इसी समय नौकर दो तश्तरियों में जल-पान लेकर आया। तीनो सहर्ष जल-पान करने लगे।

---

(५)

उस दिन कुसुमलता रात्रि के आठ बजे के लगभग अपने घर पहुँची। घर जाकर सीधे अपने कमरे में चली गई, और क्लांत मन से अपने पलँग पर लेट गई। उसके हृदय-प्रांगण में इस समय घोर युद्ध हो रहा था। लालसा और विवेक, दोनो अपनी संपूर्ण शक्ति से लड़ रहे थे। मनोरमा का भाग्य देखकर न-जाने क्यों उसका मन ईर्ष्या और हिंसा से आवृत हो रहा था। आज कई वर्षों से वह अपनी लालसा से विकट युद्ध कर रही थी, वह पति-सहवास से वंचित थी, वह सुख उससे सदा के लिये छिन गया था। उसे पुनः प्राप्त करने का अधिकार उसे न था। आज मनोरमा को वही सुख प्राप्त होते देख, ईर्ष्या से, उसका हृदय जल उठा। किंतु उसने वह भाव अपने मन में दबा रक्खा। जब तक वह मनोरमा के यहाँ रही, उस भाव को दबाए रही, किंतु घर आते ही वह सजग होकर उसे जलाने लगा। अपनी दशा की वास्तविक हीनता अनुभव करने का नाम है ईर्ष्या।

कुसुमलता के हृदय में इस समय नाना प्रकार के विचार उठ रहे थे। वह सोचने लगी—मैं बाल-विधवा हूँ। मेरा विवाह सात वर्ष की अवस्था में, एक बालक के साथ, हुआ था। हाँ, मुझे याद आता है, एक बारह-तेरह वर्ष का बहुत ही सुंदर बालक था, जिसके साथ मुझे एक खंभे के चारो ओर घूमना पड़ा था। वह बड़ा ही सुंदर था। उसके मुख से सरलता टपकी पड़ती थी। बहुत आदमी आए थे, चारो ओर हर्ष-ध्वनि हो रही थी, और अम्मा बार-बार मेरा मुँह चूम लेती थीं। उनकी आँखों में आँसू भरे थे।

शायद वे सुख के ही आँसू होंगे। एक घटना मुझे याद पड़ती है। वह बालक और मैं, दोनों अपनी अम्मा के सामने खाने बैठे थे। अभी तक मुझे पीले कपड़ों से ढककर रक्खा गया था। जब मैं अपनी मा के पास पहुँची, तो मैंने अपना मुख खोल लिया, और अघाकर एक साँस ली। दूसरी औरतें मुझे देखकर हँसने लगीं। अम्मा ने हँसकर कहा था—अरी पगली, अपने स्वामी के सामने मुँह तो ढक ले।

मैंने क्या उत्तर दिया था, याद नहीं, लेकिन मैंने उनकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया। अम्मा हँसने लगीं, और मुझे अपनी गोद में लेकर बैठ गईं और कहा—अच्छा, अपने पति को कुछ खिलाओगी नहीं? पति-शब्द का अर्थ मैं कुछ न समझती थी। मैंने पूछा था—अच्छा, अम्मा, यह लड़का मेरे साथ खेलेगा, तुम इसको भेजना नहीं, हम दोनो खेला करेंगे।

मेरी बात सुनकर स्त्रियाँ हँसने लगीं, और वह बालक भी मुस्कि-राया। मैं सबको हँसते देखकर अवाक् रह गई, और लजाकर अम्मा की छाती में मुँह छिपा लिया। अम्मा ने फिर कहा—अच्छा, अपने स्वामी को मिठाई खिलाकर कुछ पानी तो पिलाओ। रात-भर तुम दोनो परेशान रहे हो। तुम दोनो जीवन-भर साथ रहो, इसीलिये तो मैंने तेरा विवाह इनके साथ किया है। मुझे याद है, अम्मा की बात सुनकर मैंने मिठाई लेकर उस बालक को देते हुए कहा—अम्मा, भैया का नाम क्या है? मेरा प्रश्न सुनकर स्त्रियाँ फिर हँस पड़ीं, और वह बालक भी हँसने लगा। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया, और न मिठाई ही खाई। मैंने अम्मा से कहा—देखो, यह तो मिठाई खाते ही नहीं, मैं क्या करूँ। मुझे भूख लगी है, मैं खाती हूँ। मैं खाने जा रही थी कि बीच में अम्मा ने मेरा हाथ पकड़कर कहा—अरे, पहले तू खा लेगी! अपने घर में जो आता है, उसे पहले खिलाया जाता

है। तुम खिलाओ, तो वह खायँगे कैसे नहीं। मैं मिठाई फिर उनके मुँह के पास ले गई। अब की बार वह लजाकर, मिठाई अपने मुँह में लेकर खाने लगे। अम्मा ने उनसे भी मिठाई खिलाने को कहा। लेकिन मुझे अब कहाँ ताब थी, मैं स्वयं खाने लगी। स्त्रियाँ फिर हँस पड़ीं, लेकिन मैंने उनकी ज़रा भी परवा न की, और उन्हें खिलाकर स्वयं खाने लगी। इसके बाद? इसके बाद मुझे कुछ याद नहीं आता। वह बालक, नहीं मेरे पतिदेव चले गए। उस दिन से फिर उनके दर्शन नहीं हुए। मैंने कई बार अम्मा से उन्हें बुला देने की ज़िद की। अम्मा ने सदैव दिलासा दिया, लेकिन वह फिर आए नहीं। विवाह के बाद मैं पढ़ने जाने लगी। गाड़ी पर चढ़कर आती-जाती थी। एक दिन रास्ते में वैसे ही एक सुंदर बालक को देखकर मैंने गाड़ी रुकवा दी, और कोचवान से उसे बुलाने के लिये कहा। कोचवान मेरी बात सुनकर चकित रह गया। मैंने उससे कहा—मोहन, जा, उस लड़के को बुला ला। इसी को बुला देने के लिये मैं अम्मा से रोज़ कहती हूँ, लेकिन बुलाती नहीं। बुला लाओ, तो मैं गाड़ी में उसे भी बिठा लूँ, और दोनो घर चलें।

मेरी बात सुनकर मोहन ने कहा—रानी बेटी, यह लड़का वह नहीं है, जिससे तुम्हारा विवाह हुआ था। यह कोई दूसरा है। किंतु मुझे उसकी बात पर विश्वास न हुआ। मैं बार-बार उस बालक को बुला देने के लिये ज़िद करने लगी। इतने में वह बालक एक घर में घुस गया। कोचवान ने कहा—देखो, वह अपने घर चला गया। उनका घर यहाँ नहीं है, वह तो काशीजी में रहते हैं। मैं चुप हो गई, और सोचने लगी कि शायद वह न हों। इस घटना को लेकर दो-तीन दिन मेरे घर में बड़ा विनोद रहा। इसके बाद फिर मुझे कुछ याद नहीं। लेकिन धीरे-धीरे

मेरी समझ में संसार की बातें आने लगीं, किंतु पति-शब्द के अर्थ अब भी मैं न जानती थी। एक दिन मैं स्कूल से पढ़कर लौटी, तो घर में चारो ओर भीषण निस्तब्धता छाई हुई थी। मुझे देखते ही एक दबा हुआ क्रंदन स्वर घर में गूँज गया। अम्मा दौड़कर मेरे गले से लिपट गई, और रोने लगीं। मैं यह दृश्य देखकर अवाक् रह गई। उस समय मुझे बड़ी ज़ोर से भूख लग रही थी, लेकिन यह सब देखकर मेरी भूख भाग गई, और मैं आश्चर्य से उनका मुख देखने लगी।

इस घटना के पश्चात् मेरे पिता मुझे पढ़ने-लिखने के लिये अधिक उत्तेजित करने लगे। अँगरेज़ी पढ़ाने के लिये एक वृद्ध मास्टर आने लगे। उनका क्या नाम था......मुरलीमनोहर। वह बड़े ही प्यार से मुझे पढ़ाया करते थे। मैं भी उनसे बहुत हिल गई थी। मेरा नाम अँगरेज़ी स्कूल में लिखा दिया गया। अम्मा ने बहुत आपत्ति की, लेकिन पिताजी नहीं माने, और मैं 'कैथरीन कानवेंट' में जाने लगी। मेरा पहनावा अब सब बदल गया था, और जैसे मेरे साथी रहते, उसी तरह मैं भी रहने लगी। चार वर्ष में ही मैंने प्रवेशिका-परीक्षा पास कर ली, और आगे पढ़ने के लिये 'ईसाबेल-कॉलेज' में भरती हुई।

पति-शब्द का अर्थ अब मैं समझती हूँ, किंतु उस समय न जानती थी। न-मालूम कौन पाप मैंने उस जन्म में किया था, जो इस सुख से वंचित हूँ। मेरी सखियों का विवाह हो गया है, जिनका नहीं हुआ, उनके होने की आशा है; किंतु मेरा विवाह हो भी गया, और सब मिट भी गया! और, मैं उस सुख को जान भी न पाई।

मनोरमा कितनी सुखी है। मिस्टर वर्मा उसे कितना प्यार करते हैं, और वह भी उनके लिये पागल रहती है। दोनो हास्य से,

विनोद से, भावी आशा से अपने दिन काटते हैं, और मैं ? मेरे लिये संसार अंधकारमय है। इस भयावह समुद्र में मैं निराधार हूँ। किसका आश्रय ग्रहण करूँ। कौन इस गहन सागर से मेरी जीवन-नौका उस पार खे ले जायगा ?

मैं किस आशा को पकड़कर अपने उतावलेपन को शांति दूँ। हाय, न-मालूम एक कैसी लालसा मेरे मन में रह-रहकर उठती है, किंतु उसके पूर्ण होने का कुछ उपाय नहीं। मेरे भाग्य में वह सुख नहीं। हाय रे भाग्य !

आज मनोरमा कितनी तन्मयता से मिस्टर वर्मा के हृदय पर अपना सिर रक्खे हुए थी। उसकी वह लालसा, जिससे मैं जली जाती हूँ, पूर्ण हो रही है। सिर पर परीक्षा है, किंतु उसे परवा नहीं है। नीरस पुस्तकों को लेकर वह अपने दिन नहीं काटती। जिन घटनाओं का वर्णन पुस्तकों में है, जिन घटनाओं की कल्पना लेखक अपनी पुस्तक में करता है, उनकी वास्तविकता मनोरमा अनुभव करती है। मनोरमा आज अपने सोहाग में विभोर है। वह कितनी सुखी है, वह जीवन का आनंद लेने में व्यस्त है, और मैं कुढ़ने में ही सुखी हूँ।

मिस्टर वर्मा कितने सुंदर हैं। उनका पांडित्य कितना अगाध है। मनोरमा ऐसे पति को पाकर धन्य हो गई है। मेरे स्वामी भी ऐसे ही होते। वह तो मिस्टर वर्मा से भी अधिक सुंदर थे। मिस्टर वर्मा कितनी सरल प्रकृति के हैं, इससे भी अधिक सरल मेरे स्वामी होते। मिस्टर वर्मा कितने विद्वान् हैं, इससे भी अधिक विद्वान् मेरे पतिदेव होते। मिस्टर वर्मा मनोरमा को कितना प्यार करते हैं, इससे भी अधिक मेरे जीवननाथ मुझे प्यार करते। हाय, किंतु भाग्य में वह सुख नहीं था, इसीलिये तो मैं उससे वंचित हो गई !

भाग्य क्या वस्तु है ? अपने पूर्व जन्म में किए हुए कर्मों का फल

ही भाग्य है। किंतु कौन इसे माने ? मैं मानने के लिये तैयार नहीं। मैं नहीं मानती। भाग्य हिंदू-शास्त्र की मूर्खता का प्रमाण है। मनुष्य को कायर बनाने के लिये भाग्य की रचना हिंदू-शास्त्रकारों ने की है। ईश्वर भी कोई चीज़ नहीं। केवल कपोल-कल्पना है, मूर्खों का आश्रय है। ईश्वर और भाग्य कुछ नहीं, केवल एक मनुष्य है। वही ईश्वर है और वही भाग्य। मनुष्य जब काम करता है, तो ईश्वर है। जब वह निरालस और निश्चेष्ट बैठ जाता है, तो भाग्य है। मैं ही ईश्वर हूँ, और मैं ही भाग्य। अपना जीवन सुखमय और दुःखमय बनाना मेरे ही हाथ में है। मैं ही सब कुछ हूँ। मेरे ऊपर मुझसे श्रेष्ठ कोई दूसरी शक्ति नहीं है।

मैं अभी चिल्लाती हूँ कि मेरे भाग्य में पति-सहवास का सुख नहीं है। यह निश्चेष्ट कार्य है, इसीलिये भाग्य है। किंतु अगर मैं अपना दूसरा विवाह कर लूँ, तो वही सुख मेरे भाग्य में हो जायगा। मैं अपने लिये आप ही ईश्वर हो जाऊँगी। प्रतिकूल भाग्य अनुकूल हो जायगा। मेरा जीवन सुख से बीतेगा। मुझे आश्रय मिलेगा, मेरी आशा सफल होगी। जीवन की सब साध पूरी होगी। मेरा स्त्री-जन्म सार्थक होगा।

विधवा-विवाह संसार में होता है, एक इसी अभागे, गुलाम देश में नहीं होता। दूसरे देश इस मूर्ख, अपढ़, निश्चेष्ट देश से कितना आगे हैं। दूसरे देशों में स्त्री के समानाधिकार हैं, किंतु इस देश में वह पराधीन है, तभी पुरुष भी, देश भी, पराधीन है। सब पुरानी लकीर के फ़क़ीर बने हैं। ऐसे ज़िद्दी, दुष्ट, पातकी पुरुष दूसरे देश में नहीं हैं। आज कितने ही धर्म-ध्वजी, समाज के नेता मेरा स्त्रीत्व भंग करने के लिये तैयार हैं, छिपा-छिपाकर पाप करने के लिये तैयार हैं; किंतु अगर मैं आज विवाह कर लूँ, तो हिंदू-समाज नाक-भौं सिकोड़ेगा, मुझे म्लेच्छी कहेगा।

मेरे लिये इस देश में, इस समाज में, स्थान नहीं रहेगा। हाय रे अभागे देश! अभी तुझे कई शताब्दियों तक गुलामी करना है। तेरी उन्नति की आशा नहीं। तू सदैव इसी भाँति दूसरों की सेवा करता रहेगा, उनके ही फेके हुए टुकड़ों से अपनी भूख शांत करेगा।

जी में आता है कि देश के जितने बुड्ढे हैं, जितने मूर्ख हैं, उन सबको यमलोक पहुँचा दूँ। पुरानेपन को इस देश से मिटा दूँ, नवीनता की लहर में सब प्राचीनता बह जाय। यदि उसमें वह समाविष्ट नहीं होती, यदि प्राचीनता नवीनता नहीं अपनाती, तो उसे बल से, शक्ति से नाश कर देना चाहिए। पुराने शास्त्र, जो मनुष्य को निस्तेज बनाते हैं, जला देने चाहिए। उनका अस्तित्व संसार से मिटा देना चाहिए। एक नया युग हो, एक नई लहर हो, जिसमें पुरानेपन की बू न हो। पुरुष और स्त्री के अधिकार समान हों। जिस दिन इस देश से प्राचीनता चली जायगी, उसी दिन यह देश स्वतंत्र हो जायगा, इसकी गणना संसार के राष्ट्रों में होगी। पुरानी सभ्यता का गुज़र इस नवीन युग में नहीं। वे और दिन थे, और समय था, जब विधवाएँ मन-ही-मन घुलकर, अपनी साध और आशा को जलाकर पुरुषों के अत्याचार नीरव सहन करती थीं। इस युग में पुरुष स्त्रियों पर शासन नहीं करेंगे, वरन् स्त्रियाँ पुरुषों पर शासन करेंगी।

अच्छा, स्त्रियाँ किस बात में पुरुषों से हीन हैं? मैं किस पुरुष की अपेक्षा किस बात में न्यून हूँ। मुझमें बुद्धि नहीं है, ज्ञान नहीं है, तेज नहीं है, प्रतिभा नहीं है, शौर्य नहीं है, साहस नहीं है, शासन करने की क्षमता नहीं है, क्या नहीं है। किस बात में इनसे हीन हूँ। कोई भी पुरुष मेरा मुक़ाबिला कर ले। मैं किसी प्रकार उससे कम न पड़ूँगी। हाँ, यह कहा जा सकता है कि मैं युद्ध नहीं कर सकती। नहीं, वह भी कर सकती हूँ, यदि उसकी मुझे शिक्षा

दी जाय। स्त्रियों ने क्या तलवार नहीं पकड़ी है? जब-जब स्त्रियों ने तलवार पकड़ी है, तब-तब देश का उद्धार हुआ है। स्त्रियों ने ही अपने बल, कौशल और साहस से देश की रक्षा की है। पुरुष-जाति इतनी स्वार्थी है कि वह स्त्रियों को उन्नति करते नहीं देख सकती, उनकी उन्नति के लिये उपाय नहीं करती। पिता इसी कारण अपनी कन्या को नहीं पढ़ाता, उसे पुत्र के समान शिक्षित नहीं करता, पति इसी कारण उसे स्वतंत्र नहीं करता, और पुत्र इसी कारण उस पर वार करता है। हाय री अंधी, स्वार्थमय पुरुष-जाति तेरा नाश हो! याद रख, थोड़े दिनों में तेरी वही दशा होगी, जो आज स्त्रियों की है।

मैं स्त्री हूँ, संसार को दिखला दूँगी कि स्त्रियाँ क्या कर सकती हैं। देश की अवस्था में मैं हेर-फेर करूँगी। अपने हाथ से मैं अपना भाग्य निर्माण करूँगी। देश का भाग्य निर्माण करूँगी, अपनी जाति का भाग्य निर्माण करूँगी। देश में वह आग लगाऊँगी, जिससे देश जल उठे, और पुरानापन उसी में जल जाय। एक भीषण विप्लव, एक भयावह क्रांति मैं इस देश में उत्पन्न करूँगी। पश्चिम के नियमों पर, उसकी सभ्यता पर, अपना राष्ट्र बनाऊँगी। वह राष्ट्र स्वाधीन और स्वतंत्र राष्ट्र होगा। जब तक हमारा देश पश्चिमीय सभ्यता ग्रहण नहीं करेगा, तब तक इस देश का कल्याण नहीं, तब तक यह देश स्वतंत्र नहीं हो सकता। संसार के साथ बहने के लिये, उसी के-से आचार-विचार भी होने चाहिए। संसार-धारा के प्रतिकूल रहकर हम अपने देश को संसार का एक राष्ट्र नहीं बना सकते। जो ऐसा सोचते हैं, वे मूर्ख हैं, मूढ़ हैं, अज्ञानी हैं, अपने हाथ से अपना गला काटनेवाले हैं। वे देश और समाज के नहीं, मनुष्य-जाति के घोर शत्रु हैं, उनका मरण ही श्रेष्ठ है।

किंतु मैं विधवा हूँ! क्या हुआ, मैं स्वतंत्र तो हूँ। स्वतंत्र मनुष्य का ही जीवन श्रेष्ठ है। यदि मैं विवाह कर लेती हूँ, तो मेरी स्वतंत्रता में व्याघात हो सकता है। स्वतंत्रता में व्याघात कैसा! मैं विवाह के बाद भी स्वतंत्र रहूँगी, मेरी स्वतंत्रता में जो बाधा डालेगा, वह मेरा शत्रु है।

जिस प्रकार पुरुष स्वच्छंद रहता है, उसी प्रकार स्त्रियाँ क्या स्वतंत्र होकर रहने की अधिकारिणी नहीं हैं? वे मूर्ख और अपढ़ स्त्रियाँ होंगी, जिन पर पुरुष मनमाना अत्याचार करते होंगे। वे पशुओं से भी गई-बीती हैं, उनकी दशा उनसे भी अधिक शोचनीय है। अत्याचार तो वे ही सहन कर सकती हैं। यदि मुझ पर कोई अत्याचार करेगा, मुझ पर शासन करेगा, मेरी स्वाधीनता में बाधा डालेगा, मैं उससे लड़ूँगी। यदि उसके प्रतिकार के लिये अस्त्र भी ग्रहण करना पड़ेगा, जीवन देना पड़ेगा, या जीवन लेना पड़ेगा, तो सहर्ष दे दूँगी और ले लूँगी। पुरुष जान ले, यह युग स्त्रियों की स्वाधीनता का है। यदि इस युग में उन पर अत्याचार किया जायगा, तो स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति अस्त्र धारण करेंगी, और अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर लेंगी।

पिताजी क्या मेरा विवाह करने के लिये तैयार होंगे? मुझे विश्वास है, यदि मैं विवाह करने के लिये अपनी अनुमति दूँगी, तो वह अवश्य मेरा विवाह कर देंगे। मा यदि जीवित होतीं, तो शायद रुकावट डालतीं, किंतु अब तो वह जीवित नहीं हैं। मेरी ससुरालवालों से मेरा कुछ संपर्क है ही नहीं। मैं उन लोगों में से किसी को भी नहीं जानती, और न उन लोगों ने कभी मेरी सुध ही ली है। ससुर और सास, दोनो मर चुके हैं, अब उस वंश में कोई जीवित है या नहीं, मुझे नहीं मालूम।

आजकल विधवा-विवाह होना शुरू तो हो गया है, लेकिन

होते बहुत कम हैं। हिंदू-समाज खुले तौर पर ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं। भाड़ में जाय ऐसा समाज ! जिस सोने से कान फटे, उसके पहनने से लाभ ? हिंदू-समाज के रसातल जाने के दिन आए हैं, कोई नहीं रोक सकता, जब तक वह स्वयं रुकने के लिये तैयार न होगा।

विवाह क्या है ? युग्म हृदय एक हो जाना ही विवाह है। स्त्री और पुरुष, दोनो का एक हो जाना विवाह है। शारीरिक संसर्ग के साथ-साथ मानसिक और आत्मिक संसर्ग का नाम विवाह है। प्रेम के स्थायी रूप का नाम विवाह है। दो भिन्न-भिन्न जीवन-नदियों के संगम का नाम विवाह है। विवाह कितना गूढ़ है, किंतु हिंदू-समाज ने इसे खिलौना बना रक्खा है। एक बालिका और एक बालक को पकड़कर, बलिदान के बकरे की भाँति, एक लकड़ी के खंभे के चारो ओर घुमा देना ही विवाह बना रक्खा है। ऐसे हिंदू-समाज को जड़ से नाश कर देना चाहिए।

मैं विवाह करूँगी। मैं अपना वर स्वयं चुनूँगी। जो मेरी शर्तों के अनुसार मुझसे विवाह करने के लिये तैयार होगा, मैं उसके साथ विवाह करूँगी। यदि कोई मेरी शर्तें स्वीकार न करे, तब ? नहीं, यह संभव नहीं। पुरुष दास-जाति का जीवित रूप है, जो सदा से स्त्रियों की इच्छाओं का ग़ुलाम रहा है, वह कैसे स्वीकार न करेगा। स्त्रियों के एक बंकिम भ्रू-क्षेप से हज़ारों पुरुषों के प्राण हरण कर लिए जाते हैं, राष्ट्र से राष्ट्र लड़ पड़ते हैं, और उनके एक इशारे पर हज़ारों अपने प्राण न्योछावर करने के लिये तैयार हो जाते हैं। ऐसी मूर्ख पुरुष-जाति है। ऐसी जाति पर शासन करना कुछ कठिन बात नहीं।

तब मैं विवाह करूँगी। अपने जीवन को सुखमय बनाऊँगी।

जिसे मनुष्य विधाता कहते हैं, उससे लड़ूँगी। उस पर विजय प्राप्त करूँगी। स्त्री-जाति के इतिहास में मेरा नाम अमर रहेगा। नहीं, संसार की स्त्रियों की मैं सिरमौर बनूँगी, उनकी अभिनेत्री बनूँगी। यही तो मेरी महत्वाकांक्षा है। यही तो मेरे जीवन की साध है। यदि मुझे अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिये मनुष्यत्व से नीचे गिरना पड़े, राक्षसी बनना पड़े, पिशाचिनी बनना पड़े, मुझे स्वीकार है। किंतु मैं अपना लक्ष्य प्राप्त करूँगी। जीवन देकर अमरत्व प्राप्त करूँगी। दूसरी स्त्रियों के लिये मैं मार्ग प्रशस्त कर जाऊँगी।

बस, आज से कुसुमलता के जीवन का यही ध्येय होगा। मैं विधाता से, धर्म से, हिंदू-समाज से और पुरुष-जाति से लड़ूँगी। या तो यही नहीं रहेगी, या मैं ही नहीं रहूँगी। बस, यही निश्चय है। या तो मैं इन पर विजयिनी होऊँगी, या रसातल में प्रविष्ट हो जाऊँगी। देखूँ, विजय किसके गले का हार होती है।

मिस्टर वर्मा कितने सुंदर हैं, उनमें कितना अगाध पांडित्य है, उनमें शिशु की सरलता है, उनके मुख पर शशि की शांति है, उनके हृदय में सागर का प्रेम-गांभीर्य है। यदि ऐसा पुरुष मेरा स्वामी हो, तो वास्तव में मैं सुखी हो सकती हूँ। ऐसे पुरुष पर अत्याचार करने का मन नहीं होता, उसकी पूजा करने की इच्छा होती है। नहीं, मैं उनके बारे में अब न सोचूँगी। सोचूँ क्यों? वह मेरे कौन हैं? वह भी तो उसी जाति के हैं, जिसकी मैं घोर शत्रु हूँ। फिर उनके प्रति मेरा यह अनुराग क्यों? मेरी इच्छा की दौड़ क्यों? यह मेरी दुर्बलता है। मेरा मन बार-बार उस ओर क्यों जाता है? नहीं, अब न सोचूँगी।

मनोरमा सुखी है, अवश्य सुखी है। जिसका ऐसा स्वामी हो, यदि वह सुखी न होगी, तो क्या मैं सुखी होऊँगी? वह कैसे देवोपम हैं। उनकी वाणी में कितना माधुर्य है, कैसा जादू है। वह बड़े

सुंदर हैं। ऐसा सुंदर पुरुष मैंने आज तक नहीं देखा। उन्हें देखकर मेरे हृदय में उल्लास होता है, और एक प्रकार का दुख भी। यह क्यों? वह मेरे नहीं हैं, इसीलिये मुझे दुख होता है। परंतु मैं उन्हें प्राप्त भी तो नहीं कर सकती। मनोरमा का उन पर अधिकार है। वह मन-प्राण से उसी के हैं। अरे, मैं फिर उनके बारे में सोचने लगी। कुसुमलता! तुझे उनके बारे में सोचने का अधिकार नहीं। वह दूसरे के हैं! तू उन्हें नहीं पा सकती। अच्छा, अब न सोचूँगी।

ऐसा पुरुष क्या संसार में दूसरा न होगा? होगा क्यों नहीं। हैं, इससे भी श्रेष्ठ होंगे। मनोरमा के ही भाग्य में सुखी होना नहीं है, मेरे भाग्य में भी है। मैं ऐसे ही पुरुष की खोज करूँगी; जब मैं उसे पा लूँगी, उसी से विवाह करूँगी। नहीं तो ऐसी ही विधवा बनी रहूँगी। वह मेरे जीवन के आदर्श हैं। देखूँ, मैं कृतकार्य होती हूँ या नहीं। भगवान्, मेरी सहायता करना। भगवान्! अरे, भगवान् को तो मैं मानती ही नहीं। फिर मैंने क्यों उनकी सहायता की प्रार्थना की। यह मेरी दुर्बलता है, मन का कुसंस्कार है। इससे भी तो अपना पिंड छुड़ाना है।

इसी समय कमरे की घड़ी ने एक-एक करके नौ बजाए। कुसुमलता की विचार-धारा स्थिर हुई। उसका हृदय उद्विग्न था। उसके हृदय के भीतर घोर युद्ध हो रहा था। वह चौंककर उठ बैठी। इसी समय एक नौकर ने आकर उससे पूछा—"सर साहब पूछते हैं कि आप कहाँ खाना खायँगी?"

कुसुमलता ने अपने विचारों को एकत्र करते हुए कहा—"चलो, मैं आती हूँ।"

कुसुमलता का मुख उतरा हुआ था। आँखों का स्वाभाविक तेज मलिन पड़ गया था। शरीर एक प्रकार की क्लांति और शिथि-

लता से निःशक्त हो रहा था। वह उठकर खड़ी हुई, किंतु उसके पैरों में खड़े होने की शक्ति न थी। वह मेज़ का सहारा लेकर खड़ी हो गई।

कुसुमलता डगमगाते पैरों से कमरे के बाहर हो गई।

हाथ में रैकेट लिए मनोरमा ने अपने कमरे में घुसते हुए राजेंद्र-प्रसाद से हँसते हुए कहा—"चलिए, आज टेनिस खेल आवें।"

राजेंद्रप्रसाद आराम-कुर्सी पर लेटे हुए एक उपन्यास पढ़ रहे थे। मनोरमा का आमंत्रण सुनकर उन्होंने उसकी ओर देखा। मनोरमा आज भुवनमोहन वेष में थी। गुलाबी रंग की रेशमी सारी से शरीर ढका हुआ था, पैरों में टेनिस खेलने के जूते थे, और हाथ में एक बढ़िया रैकेट था। मुख उत्फुल्ल था, और नेत्रों में हर्ष, आशा और सोहाग उमँगा पड़ता था। मनोरमा को इस वेष में देखने का यह पहला अवसर था। राजेंद्रप्रसाद मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। मनोरमा लजा गई। उसने हँसते हुए कहा—"क्या देख रहे हो? मुझे पहचानते नहीं, या कभी देखा नहीं?"

राजेंद्रप्रसाद उठ खड़े हुए, और मनोरमा की ओर बढ़ते हुए बोले—"आज किससे मोर्चा ठाना है? किसे शिकस्त देने का इरादा है?"

राजेंद्रप्रसाद को अपनी ओर बढ़ते देख मनोरमा संकुचित होकर वहीं खड़ी रह गई। आगे बढ़ने के लिये उसके पैर न उठे। राजेंद्रप्रसाद ने उसके पास पहुँचकर, उसके गले में हाथ डाल धीरे-धीरे उसे अपनी ओर घसीटा, और हृदय से लगा लिया। मनोरमा के अंग-प्रत्यंग में एक बेसुध कर देनेवाला तड़ित्प्रवाह दौड़ने लगा। वह अवश होकर उनके वक्षःस्थल से लिपट गई।

राजेंद्रप्रसाद ने उसका मुख चूमते हुए कहा—"सखी, आज तुम बड़ी ही सुंदर देख पड़ती हो?"

मनोरमा का मुँह उत्तर देने के लिये न खुला। उसने केवल एक दृष्टि-भर उनकी ओर देखा। आँखें चार होते ही उसकी दृष्टि आप-से-आप नत हो गई।

राजेंद्रप्रसाद उसकी इस अदा पर हज़ार जान से न्योछावर हो गए। उन्होंने दूसरे कपोल पर प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"मन्नी, तुमने इतने थोड़े दिनों में मुझको संपूर्ण रूप से पराजित कर दिया है। क्या तुम भी मुझे उतना ही प्यार करती हो, जितना मैं?" कहते-कहते राजेंद्रप्रसाद ने प्रेमावेग से तीसरा चुंबन उसके कपोल पर अंकित कर दिया। मनोरमा ने फिर राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा। उसकी आँखों से तिरस्कार झाँक रहा था।

राजेंद्रप्रसाद ने उसे पुनः आलिंगन-पाश में बद्ध करते हुए कहा—"मन्नी, मैं जानता हूँ कि तुम मुझे प्यार करती हो, किंतु फिर भी तुम्हारे मुख से सुनने की इच्छा होती है। मैं कितनी ही बार तुमसे कहला चुका हूँ, लेकिन तुम्हारे हरएक बार कहने में मुझे एक नया आनंद मिलता है, एक नया उत्साह मिलता है, और मन न-मालूम कैसे हर्ष और निश्चिंतता से भर जाता है। मन्नी, बोलो, तुम मुझे प्यार करती हो?"

मनोरमा ने हाथ का रैकेट मेज़ पर रख दिया, और उस हाथ से उनकी कमर पकड़कर उनकी ओर निहारने लगी। उसने आपद्-लोचनों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"कौन हिंदू-रमणी अपने स्वामी को प्यार नहीं करती?"

राजेंद्रप्रसाद ने उसे सोफ़ा की ओर ले जाते हुए कहा—"मैं यह नहीं पूछता, और न मैं वैसा प्रेम ही चाहता हूँ।"

मनोरमा ने प्रश्न-भरी दृष्टि से अपने स्वामी की ओर देखा। राजेंद्रप्रसाद ने सोफ़ा पर बैठते हुए कहा—"मन्नी, जानती हो, क्यों मैं हिंदू-रमणी का पति-प्रेम नहीं चाहता? मैं इसलिये नहीं चाहता,

क्योंकि उसमें दास्य भाव मिला होता है, उसमें निर्भरता और दुर्बलता का हिस्सा ज़्यादा होता है। हिंदू-रमणी अपने पति से बाध्य होकर प्रेम करती है, क्योंकि वह जानती है कि इस संसार में यदि वह जीवित रहना चाहती है, तो उसे एक व्यक्ति-विशेष से प्रेम करना पड़ेगा। उसके इच्छानुसार उसे चलना पड़ेगा, क्योंकि वह हर तरह से उसी व्यक्ति पर आश्रित है। मनी, मैं तुमसे वह प्रेम नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ वह प्रेम, जो अपने आप मेरे प्रति उत्पन्न हो। जिसमें दास्य या आश्रित भाव न हो, बिलकुल स्वतंत्र हो। जिसमें मुरदापन न हो, बल्कि जीवन हो। जिसमें परवशता न हो, निजत्व हो। मैं तुम्हारे हृदय का आंतरिक प्रेम चाहता हूँ। मनी, मेरे प्राणों की मनी, जितना मैं तुम्हें चाहता हूँ, उतना ही क्या तुम मुझे चाहती हो?"

मनोरमा लाज से संकुचित हुई जा रही थी। उसके हृदय में उमंगों का ज्वार बड़ी तेज़ी से चढ़-उतर रहा था। वक्षःस्थल के पास उसकी हिलती हुई साड़ी उसके हृदय-स्पंदन का पता दे रही थी। मनोरमा आवेग से ओत-प्रोत हो रही थी। उसका कंठ अवरुद्ध था, उनके प्रश्न का उत्तर कौन दे। राजेंद्रप्रसाद ने उसकी ओर देखते हुए किंचित् करुण स्वर से कहा—"मालूम हो गया, तुम मुझे नहीं चाहतीं। मैं तुम्हारे लिये उपयुक्त भी तो नहीं हूँ। तुम मुझसे कहीं ऊँची हो, यदि वामन आकाश का चाँद पकड़ना चाहे, तो क्या वह उसे पकड़ सकता है?"

राजेंद्रप्रसाद का आवेग शिथिल हो गया, और उन्होंने अपना हाथ धीरे-धीरे उसकी गरदन से हटा लिया। वह मलीन मन से चुप हो गए।

मनोरमा ने आहत दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए कहा—"क्यों, तुमने अभी तक मुझे नहीं पहचाना है। देखो, मुझसे तुम ऐसी बात न कहा करो, मुझे बड़ा दुःख होता है। तुम्हारी ऐसी

बातें सुनकर न-मालूम क्यों मेरा मन घबराने लगता है। मुझे ऐसा मालूम होने लगता है कि मैं अधिक दिनों तक यह सुख नहीं भोग सकती। अपने ऊपर से मेरा विश्वास उठ जाता है। तुम अगर ज़रा भी मुझे प्यार करते हो, तो ऐसी बात फिर दुबारा न कहना।"

मनोरमा की आँखों से घायल हृदय के श्वेत रक्त की दो बूँदें गिर पड़ीं। राजेंद्रप्रसाद का सब अभिमान उन्हीं दोनो बूँदों के साथ बह गया। उन्होंने आवेग-सहित मनोरमा को आबद्ध करते हुए कहा—"मन्नी, मैंने तुम्हें दुखी कर दिया है। मुझे माफ़ करो। मैं न-मालूम क्यों इतना उच्छृंखल हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती हो, किंतु फिर भी मेरा मन नहीं भरता। बार-बार तुमसे, तुम्हारे मुख से सुनने के लिये आकुल रहता हूँ। मन्नी, यदि तुम्हें ज़रा भी दुःख मेरी बातों से मिला हो, तो मैं माफ़ी चाहता हूँ। मुझे माफ़ करो।"

मनोरमा के मुख पर मधुर हास्य की एक रेखा दिखाई दी। उसने सप्रेम उनके गले में अपनी दोनो भुजाएँ डालकर उनके कपोलों पर क्षमा का प्रत्युत्तर अंकित कर दिया। एक तड़ित्प्रवाह से राजेंद्रप्रसाद का शरीर काँपने लगा। उन्होंने भी आवेश से उसे अपने हृदय से लगा लिया। दोनो के हृदय नीरव भाषा में प्रेमालाप कर रहे थे।

थोड़ी देर बाद चौंककर मनोरमा ने कहा—"कुसुमलता आने को कह गई है, कहीं वह न आ जाय। यदि उसने इस बार देख लिया, तो फिर ख़ैर नहीं। मुझे आड़े हाथों लेगी। उस दिन की घटना लेकर वह मुझे अभी तक बनाती है। इसके अतिरिक्त मैं उसे दुखी भी नहीं करना चाहती।" यह कहकर मनोरमा आलिंगन-पाश से धीरे-धीरे अलग हो गई, और कुछ दूर हटकर बैठ गई। राजेंद्रप्रसाद असहाय दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे।

मनोरमा ने उसके पास खिसकते हुए कहा—"क्यों, नाराज़ हो गए? जानते हो, कुसुमलता विधवा है। मैं जानती हूँ, हम लोगों को इस तरह देखकर उसे बहुत दुःख होता होगा।"

राजेंद्रप्रसाद ने पूछा—"क्यों, कुसुमलता को क्यों दुःख होगा?"

मनोरमा ने उनका हाथ पकड़ते हुए कहा—"दुःख क्यों न होगा। दो व्यक्तियों को प्रेम करते देखकर क्या उसकी इच्छा न होती होगी कि वह भी किसी से प्रेम करे! कुसुम बड़ी भावुक है, बड़ी कल्पनामयी है। उस दिन की घटना लेकर वह मुझे बनाती ज़रूर है, लेकिन उसकी एक-एक बात से दुःख टपका पड़ता है।"

राजेंद्रप्रसाद ने गंभीर होकर पूछा—"क्या तुम विधवा-विवाह के पक्ष में हो? क्या तुम चाहती हो कि विधवाओं का विवाह हो?"

मनोरमा ने साश्चर्य उनकी ओर देखते हुए कहा—"इस विषय में मैं अभी कुछ नहीं कह सकती। यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसमें मेरा मतभेद हो सकता है। आपका क्या मत है?"

राजेंद्रप्रसाद ने मनोरमा के प्रश्न पर कुछ ध्यान न देकर पूछा—"क्यों मन्नो, अगर मैं मर जाऊँ, और तुम विधवा हो जाओ, तो क्या तुम भी......"

मनोरमा के कोमल हाथों ने राजेंद्रप्रसाद का मुख बंद कर दिया। वह कुछ आगे न कह सके। मनोरमा ने सवेग उठते हुए कहा—"बस, आगे न कहना, नहीं तो........."

मनोरमा इतना ही कह सकी। आवेग से उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। आँखों से खारा जल निकलने लगा।

राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"अरे, तुम तो नाराज़ हो गईं। मैं उत्तर पूछता हूँ, और तुम......"

मनोरमा ने फिर उनका मुँह दाब लिया। राजेंद्र हँसने लगे।

मनोरमा ने जाते हुए कहा—"आज से मुझसे बोलना नहीं।"

यह कहती हुई मनोरमा कमरे के बाहर जाने लगी, किंतु राजेश्वरी उसी समय पहुँचकर मनोरमा को रोक लिया।

मनोरमा धुचधुचाए हुए नेत्रों तथा अवरुद्ध कंठ से अपने को मुक्त करने का उद्योग करने लगी। राजेंद्रप्रसाद भीतर संतोष की हँसी हँस रहे थे। राजेश्वरी ने मुस्किराते हुए, राजेंद्रप्रसाद की ओर देखते हुए पूछा—"क्यों नाराज़ हो गई ? क्या कुछ तंग किया है आपने ?"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"मैंने तो कुछ नहीं कहा। आप उन्हीं से पूछ लीजिए, देखिए, वह क्या कहती हैं।"

राजेश्वरी ने मनोरमा से पूछा—"क्यों मन्नी, क्या हुआ, बोलो। हँसी-हँसी में तुम नाराज़ हो जाती हो। अच्छा, उनसे न बोलो, मुझसे—अपनी अम्मा से—भी न बोलोगी ?"

मनोरमा ने कुछ उत्तर न दिया। वह अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी।

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"आज ही तो इम्तिहान ख़त्म हुआ है, और आज ही आपने उसे नाराज़ कर दिया। आपने ज़रूर कुछ कहा है, नहीं तो मन्नी कभी इतनी देर तक नाराज़ नहीं रह सकती। मन्नी, अच्छा, तुम्हीं बताओ, इन्होंने क्या कहा है ?"

मनोरमा ने खीझकर कहा—"अम्मा, मुझे जाने दो। मैं इस कमरे में एक क्षण न रहूँगी।"

राजेश्वरी ने गंभीर होकर कहा—"आख़िर हुआ क्या ? कुछ कहो तो।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"मैं बतलाता हूँ। विधवा-विवाह का प्रसंग चल रहा था, उसी विषय में मैंने एक प्रश्न पूछा था, और कुछ नहीं।"

मनोरमा ने अपनी संपूर्ण शक्ति से हाथ छुड़ाते हुए कहा—

"अम्मा, मुझे छोड़ दो, मैं जा रही हूँ टेनिस खेलने। आज मेरा मैच है। चार बजना चाहता है। देर हो जायगी।"

राजेश्वरी ने उस प्रश्न का अनुमान करके गंभीरता-सहित कहा—"मन्नी का नाराज़ होना सर्वथा उचित है। मैं भी मन्नी का पक्ष लूँगी।"

राजेंद्रप्रसाद हँसने लगे। इसी समय कुसुमलता भी खेलने के वेष से सुसज्जित वहाँ आ गई। आते ही मनोरमा की अवस्था देखकर उसने धीमे स्वर में कहा—"आज मान-लीला है।"

कुसुमलता की बात सुनकर मनोरमा संकुचित हो गई।

कुसुमलता ने कहा—"अम्माजी, आप छोड़ दें। आपके मनाए यह नहीं मानने की। जब कृष्ण स्वयं नत-मस्तक होंगे, तभी राधा का मान छूटेगा।"

यह कहकर कुसुमलता ने मनोरमा को पकड़ लिया, और राजेश्वरी से छोड़ देने के लिये कहा। मनोरमा इस समय शांत थी। राजेश्वरी ने उसे छोड़ दिया, और जाते हुए कहा—"भई, तुम्हीं लोग जानो। मेरा अब यहाँ काम नहीं है, मैं जाती हूँ।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"हाँ, आप जाइए, मैं अभी सब ठीक किए लेती हूँ।"

राजेश्वरी मनोरमा को देखती और मुस्किराती हुई चली गई।

राजेश्वरी के जाने के बाद कुसुमलता ने राजेंद्रप्रसाद की ओर देखते हुए कहा—"मिस्टर वर्मा, नमस्कार। आप क्यों मेरी सखी को इतना ज़्यादा तंग करते हैं। आइए, मेरे सामने माफ़ी माँगिए, नहीं तो......"

राजेंद्रप्रसाद ने आगे बढ़ते हुए कहा—"मैं सहर्ष माफ़ी माँगने को तैयार हूँ। मैं माफ़ी चाहता हूँ। मेरा अपराध क्षमा किया जाय।"

कुसुमलता ने हँसते हुए कहा—"नहीं, इस तरह नहीं। सामने आइए, और हाथ जोड़कर माफ़ी माँगिए। क्या आप नहीं जानते कि इस युग की शक्ति स्त्रियाँ हैं, स्त्रियाँ ही पुरुषों पर शासन करेंगी?"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"मैं स्वीकार करता हूँ। मैं स्त्रियों की सत्ता मानता हूँ। लीजिए, हाथ भी जोड़ता हूँ, और नत-जानु भी होता हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद हाथ जोड़कर झुकने ही वाले थे कि कुसुमलता ने हँसकर कहा—"बस, हो चुका।"

मनोरमा भी हँस पड़ी। उस हँसी में सारा अभिमान और क्रोध बह गया।

मनोरमा ने हँसते हुए कहा—"कुसुम, आओ चलें टेनिस खेलने। देर हो रही है।"

कुसुमलता ने गंभीरता-सहित कहा—"टेनिस खेलूँगी बाद में, अभी मान-लीला का खेल खेलने दो। अच्छा, तुम भी मिस्टर वर्मा का अपराध क्षमा करो। उनसे हाथ मिलाकर कहो कि मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया।"

मनोरमा ने सलज्ज भाव से कहा—"क्या करती हो, देर हो रही है। तुम्हें फ़िक्र नहीं, आज मेरा तथा मिस ट्रैवीलियन का मैच है। क्या भूल गईं? चार बज गया है। लो, चार बजके पचीस मिनट हो गए हैं। अभी पहुँचते-पहुँचते पंद्रह मिनट लग जायँगे।"

कुसुमलता ने कहा—"चाहे जो कुछ हो, मैं तुम्हें छोड़ूँगी नहीं। पहले मिस्टर वर्मा को माफ़ कर दो, फिर मैं दूसरी बात सुनूँगी। हाथ बढ़ाओ।"

यह कहकर कुसुमलता ने मनोरमा का हाथ पकड़कर राजेंद्रप्रसाद की ओर बढ़ाते हुए कहा—"लाइए अपना हाथ, मिलाइए।"

राजेंद्रप्रसाद ने अपना हाथ बढ़ा दिया। कुसुमलता ने उन दोनों

के हाथ मिला दिए। फिर उसने मनोरमा से कहा—"हाँ, ठीक है। अब कहो कि मैंने तुम्हें माफ़ किया। कहो, मैं छोड़ूँगी नहीं।"

मनोरमा ने देखा, अब किसी तरह छुटकारा नहीं है। एक साँस में अरुण गंडस्थली-सहित कहा—"अच्छा, माफ़ किया। बस, अब तो जाने दोगी?"

कुसुमलता ने उन दोनों का हाथ पकड़े हुए, उच्च कंठ से, हँसते हुए कहा—"अम्माजी, आइए। देखिए, मैंने कितनी जल्दी दोनो का मिलाप करा दिया। अम्माजी, जल्दी आइए, नहीं तो फिर यह दृश्य देखने को नहीं मिलेगा।"

मनोरमा के गाल लाल हुए जा रहे थे। उसने शीघ्रता से अपना हाथ छुड़ा लिया, और किंचित् क्रुद्ध स्वर से कहा—"कुसुम, यह क्या? उन्हें क्यों बुलाती हो? उनके सामने मुझे बड़ी शरम मालूम होती है। वह मेरी मा हैं।"

कुसुमलता ने हँसते हुए कहा—"यह कौन नहीं जानता कि वह तुम्हारी, मेरी और मिस्टर वर्मा की, सबकी मा हैं। अगर मा नहीं, तो मा के तुल्य हैं। लेकिन इसमें कौन लज्जा की बात? अभी-अभी उनके सामने ही तो तुम मान किए थीं, अब अगर मान भंग हो गया, तो क्यों शरमाती हो?"

मनोरमा ने कहा—"अच्छा-अच्छा, तुमसे तर्क में कौन जीत सकता है। चलोगी या नहीं? अगर तुम्हारा यहाँ बैठने का मन हो, तो मैं जाती हूँ।"

कुसुमलता ने कहा—"ठहरो, मिस्टर वर्मा को भी ले लूँ।"

मनोरमा ने कहा—"अच्छा, पूछो।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"मैं क्यों पूछूँ? तुम आप पूछो।"

मनोरमा ने अपना मुख फिरा लिया।

कुसुमलता ने राजेंद्रप्रसाद से मुस्किराकर कहा—"कहिए मिस्टर वर्मा, आज टेनिस खेलने चलिएगा ?"

राजेंद्रप्रसाद ने उसकी ओर देखकर कहा—"हाँ, चलूँगा तो ज़रूर, लेकिन मुझे खेलना नहीं आता। चलकर देखूँगा।"

मनोरमा ने सहास्य कहा—"कुसुम, सुना, आपको खेलना नहीं आता। अच्छा पूछो, जो 'कप' यह ले आए हैं, शायद बनवाकर मोल ले आए होंगे। अलमारी-भर कप कहाँ से आ गए ?"

कुसुमलता ने हँसकर कहा—"देखिए, विभीषण ने सब भेद खोल दिया। अच्छा, मान लिया, हम लोग आपके साथ खेलने लायक़ नहीं हैं, लेकिन गुरु की तरह कुछ 'मास्टर स्ट्रोक' या कुछ 'ट्रिक्स' वग़ैरह तो बतला सकते हैं। चलिए।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"इनकी बातों पर आप विश्वास न कीजिए, यह तो मज़ाक़ कर रही हैं। आप तो इन्हें भले प्रकार जानती हैं। सचमुच मैं खेलना नहीं जानता। जब बी० ए० में था, तब खेलना सीखा था, लेकिन इधर कई वर्षों से मुझे खेलने का अवकाश नहीं मिला। हाँ, मैं चलूँगा ज़रूर। आप लोगों का खेल देखूँगा।"

इसी समय राजेश्वरी एक तश्तरी लिए हुए आ पहुँची। पीछे एक नौकर और दो तश्तरियाँ लिए हुए था।

कुसुमलता ने हँसकर कहा—"देखिए अम्माजी, अब मान-भंग के उपलक्ष में मिठाई लाई हैं।"

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"कुसुम, तूने कौन-सा जादू कर दिया, जो सब तमाशा ख़त्म हो गया।"

कुसुमलता ने सहास्य कहा—"अम्माजी, मैंने जादू की लकड़ी घुमा दी। मैं तो आपको बुलाती रही, आप आईं नहीं। अगर आ जातीं, तो देखतीं कि......"

मनोरमा ने भ्रू कुंचित करके कुसुमलता की ओर देखा। कुसुमलता चुप हो गई। आगे कहने का साहस न हुआ।

राजेश्वरी ने तश्तरियाँ मेज़ पर रख दीं, और राजेंद्रप्रसाद से जल-पान करने के लिये कहा। जल-पान का आदेश देकर राजेश्वरी कमरे से बाहर हो गई, तीनों बैठकर जल-पान करने लगे।

---

(७)

माल रोड की दाहनी मोड़ पर मिस ट्रैवीलियन का बँगला है। मिस ट्रैवीलियन की गणना लखनऊ की ऐंग्लो-इंडियन-समाज में प्रमुख व्यक्तियों में थी। उनकी अवस्था लगभग तीस वर्ष के होगी, और अनुपम सुंदरी होने के साथ-साथ धनवान् भी होने के कारण उनका सर्वत्र मान था। वह बातचीत में इतनी कुशल और मिष्ट-भाषिणी थीं कि जो कोई उनसे मिलता, वही उनका भक्त हो जाता। इसके अतिरिक्त वह सामाजिक कार्यों में अधिक भाग लेती थीं। लखनऊ की इंडियन-योरपियन वीमेंस-एसोसिएशन की जन्मदात्री थीं, और घर-घर जाकर वह भारतीय स्त्रियों को सदुपदेश दिया करती थीं। इस काम के लिये उन्होंने कई ऐंग्लो-इंडियन नव-युवतियाँ नियुक्त कर रक्खी थीं, और उनका सब भार वह संस्था वहन करती थी। धीरे-धीरे उनकी समाज में लखनऊ की नवशिक्षित नवयुवतियाँ सदस्या हो गईं, और उनकी ख्याति उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

मिस ट्रैवीलियन ने स्त्रियों का एक क्लब भी स्थापित कर रक्खा था। इस क्लब की सदस्या अँगरेज़ और भारतीय स्त्रियाँ, दोनो थीं। पुरुषों को इस क्लब में जाने का अधिकार तो था, किंतु वे उसके सभासद् न हो सकते थे। इस क्लब की स्थापना कुछ विशेष ध्येय सम्मुख रखकर न हुई थी। यदि कोई ध्येय था, तो वह केवल विनोद था, और दोनो समाज की स्त्रियों को एक स्थान पर एकत्र होकर अपने विचारों का विनिमय। विचार-विनिमय के साथ-साथ भारतीय स्त्रियों का धार्मिक कुसंस्कार मिटाना भी था। हालाँकि क्लब की नियमावली में इसका कहीं उल्लेख न था। इस क्लब में

आधुनिक मनोरंजन के खेल हुआ करते थे। प्रवेश फ़ीस इक्कीस रुपए थी, और मासिक शुल्क दस रुपए देना पड़ता था। केवल धनी और शिक्षित रमणियाँ इसकी सभासद् हो सकती थीं। प्रत्येक शनिवार को सभा होती थी। साप्ताहिक कार्य-विवरण पढ़ा जाता, और तरह-तरह के प्रस्ताव पास होते थे। उन प्रस्तावों की आलोचना स्थानीय पत्रों में कभी-कभी हुआ करती थी, इससे लखनऊ की नई रोशनीवाली समाज को इस क्लब से बहुत आशा बँधती थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि सामाजिक उन्नति में इस क्लब ने बहुत सहायता की थी, और कई ताल्लुक़ेदारों के घर की स्त्रियाँ शिक्षित और नव आचार-विचार की पूरी पंडिता हो गई थीं। प्रत्येक नव-शिक्षित मनुष्य के मुख पर इस क्लब की प्रशंसा थी, और वे लोग अपनी स्त्रियों को किसी-न-किसी तरह उस क्लब में प्रवेश कराने की चेष्टा में रहते थे।

मिस ट्रैवीलियन ने अपने सद्व्यवहार और सेवा से सर्वत्र अपना विश्वास जमा लिया था। आज तक किसी को भी उनके ऊपर किसी प्रकार का संदेह करने का कारण या अवसर न मिला था। सभी उनके भक्त थे, और वह कहीं भी अबाध रूप से आ-जा सकती थीं। वह थियोसोफ़िस्ट धर्म की माननेवाली थीं, इससे सभी जाति के मनुष्यों से उनकी पटती थी। धार्मिक स्वतंत्रता के साथ-साथ उनके विचारों में भी काफ़ी स्वतंत्रता थी। वह अपनी दया और दानशीलता के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध थीं। रास्ते चलती देहात की मूर्ख, गंदी स्त्रियों की सहायता करने में कभी पीछे पैर न हटाती थीं। वह सदैव कुछ-न-कुछ भिखारिणियों को दान दिया करती थीं। कभी-कभी तो लोगों ने उन्हें अन्न और वस्त्र दुकान से ख़रीदकर देते हुए देखा था। इन्हीं छोटी-छोटी बातों से उनकी कीर्ति-पताका उत्तरोत्तर ऊपर उठती जाती थी।

भारत-ऐसे ग़रीब देश में ऐसी छोटी-छोटी बातों से नाम कमा लेना कोई कठिन बात नहीं है। लखनऊ में वह अपनी सज्जनता के लिये विख्यात थीं।

मिस ट्रैवीलियन का पूर्व-इतिहास कोई न जानता था। वह कौन और कहाँ की रहनेवाली थीं, यह किसी को न मालूम था, और न किसी ने यह जानने का प्रयत्न किया। वह भी अपने अतीत के विषय में चुप थीं। यदि कोई प्रसंग-वश पूछ भी लेता, तो वह टाल-मटोल कर देतीं। वह किस तरह लखनऊ की समाज में प्रविष्ट हुईं, कोई नहीं कह सकता था। न-मालूम कहाँ से आकर उन्होंने लखनऊ में, माल रोड पर, राजा सुमेरपुर का बँगला मोल लिया, और उस समय से लोग उन्हें जानने लगे। आते ही सामाजिक कार्यों में भाग लेने लगीं, और जब उन्होंने 'इंडो-योरपियन वीमेंस-एसोसिएशन' की स्थापना की, तब से उनका नाम चारों ओर ज़ाहिर हो गया, और उनकी गणना समाज-सेविकाओं में प्रथम होने लगी। उन्होंने अपने जादू से जनता को मुग्ध कर रक्खा था। समाज-सेवा का ध्येय ख्याति प्राप्त करना होता है, और वह मिस ट्रैवीलियन को सहज में मिल गई। परदे को नष्ट करना और पुरुषों के साथ अबाध तथा निःसंकोच भाव से मिलना इस समाज का मूल-सिद्धांत था। उस क्लब की सदस्या स्त्रियों के सामने परदे की समस्या न थी। लगभग वे ही स्त्रियाँ सभासद् थीं, जो परदे को तिलांजलि दे चुकी थीं, पुरुषों से अपने अधिकार लेने के लिये तैयार थीं, और पुरुष-जाति-कृत अत्याचारों के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठानेवाली तथा उनके प्रतिकार के लिये सदैव सन्नद्ध रहती थीं। इस क्लब में जो पुरुष आते, उनकी इतनी हँसी उड़ाई जाती कि वे दुबारा आने का साहस न करते थे। जो कोई उनके वाग्बाणों को सह गया, तथा उनका प्रत्युत्तर भी दे गया, उसकी गणना सभ्य पुरुषों में की जाती थी,

और उसे कभी-कभी आने का अधिकार मिल जाता था। युवक-मंडली विशेषकर उस क्लब की ओर आकृष्ट होती थी, किंतु सबको वहाँ जाने का अधिकार न था। जो मिस ट्रैवीलियन अथवा किसी सभासद् को प्रसन्न कर लेता, वह उस क्लब में जाने का अधिकारी होता था।

चार बजकर पचास मिनट हो चुके थे, जब मनोरमा की मोटर क्लब के भीतर प्रविष्ट हुई। शोफ़र ने गाड़ी खड़ी कर, बाहर निकलने का द्वार खोल दिया। द्वार खुलते ही मिस्टर वर्मा-सहित मनोरमा और कुसुमलता क्लब के कमरे की ओर चलीं।

नियमानुसार मिस्टर वर्मा का परिचय मिस ट्रैवीलियन से कर-वाना पहला काम था। क्लब के कमरे में पहुँचते ही मिस्टर वर्मा की आँखें चौंधिया गईं। वह विस्मय-विस्फारित नेत्रों से चारो ओर देखने लगे। उन्हें ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानो वह एक संसार छोड़कर दूसरे संसार में आ गए हैं। चारो ओर सुंदरी स्त्रियों का जमाव था। प्रत्येक स्त्री नई वेष-भूषा से सुसज्जित थी। स्वर्ग की कल्पना धरातल में की जा सकती थी। भिन्न-भिन्न प्रकार की सुरभि से कमरा नंदन-कानन हो रहा था। राजेंद्रप्रसाद चकित दृष्टि से उन सुंदरियों की ओर देखने लगे।

राजेंद्रप्रसाद को देखते ही एक स्फुट गुंजन से कमरा गूँज उठा। सभी नवयुवतियों की दृष्टि उन पर थी। राजेंद्रप्रसाद ने उनकी दृष्टि अपने ऊपर देखकर अपनी आँखें नीचे कर लीं।

मनोरमा का मुख प्रदीप्त था, और कुसुमलता के मुख पर उनकी असहाय दृष्टि देखकर हलकी मुस्कान थी।

राजेंद्रप्रसाद को देखते ही मिस ट्रैवीलियन अग्रसर हुईं। उन्हें अपनी ओर आते देखकर कुसुमलता ने सहास्य कहा—"मिस ट्रैवी-लियन, आज मैं इन भद्र पुरुष का परिचय कराने के लिये आपके यहाँ लाई हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा। मिस्टर वर्मा ने उनकी अभ्यर्थना कर नमस्कार किया।

उन्होंने उसका प्रत्युत्तर देकर कुसुमलता से कहा—"मैं इनका परिचय प्राप्त करके सुखी हूँगी, और अपने को धन्य मानूँगी।"

मनोरमा इसी समय अपनी सहेलियों के पास चली गई। कुसुमलता ने मुस्किराते हुए कहा—"मिस्टर आर० पी० वर्मा एम्० ए०, रिसर्च स्कॉलर डॉक्टर की उपाधि लेने के लिये इँगलैंड जानेवाले हैं, और श्रीमती मनोरमादेवी के पति तथा लखनऊ के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर राधारमण के दामाद हैं।"

फिर राजेंद्रप्रसाद की ओर देखते हुए कहा—"मिस ट्रैवीलिन बी० ए० इस क्लब तथा इंडो-योरपियन वीमेंस-एसोसिएशन की जन्मदात्री और हमारे देश तथा भारतीय स्त्रियों की सहायक और मित्र हैं। इन्होंने अपने साहस तथा कौशल से भारतीय स्त्रियों में जागृति, प्रेम और सद्भाव उत्पन्न किए हैं। इनकी कृपा का आभारी लखनऊ की स्त्री-समाज सदैव रहेगी।"

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराते हुए कहा—"बस, बस, बहुत तारीफ़ न करो। मैंने क्या किया है, सब तुम लोगों ने किया है।"

मिस्टर वर्मा और मिस ट्रैवीलियन ने हाथ मिलाया।

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"मिस्टर वर्मा, आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, और मैं मिसेज़ वर्मा को, आप-जैसे सत्पुरुष को पति-रूप से प्राप्त करने के लिये, बधाई देती हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराते हुए कहा—"आप-जैसी निःस्वार्थ रमणी से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपकी कीर्ति-कहानी मैं इलाहाबाद में सुन चुका हूँ। आपसे मिलने की इच्छा बहुत दिनों से थी, किंतु वह सौभाग्य अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था। आज वह अवसर अनायास मिल गया।"

मिस ट्रैवीलियन आत्मसम्मान से गद्गद होकर हँसने लगीं।

जब कुसुमलता मिस्टर वर्मा का परिचय दे रही थी, कई स्त्रियाँ आकर उनके चारों ओर खड़ी हो गई थीं। मिस्टर वर्मा का परिचय प्राप्त करके वे मनोरमा को बधाई देने के लिये खोजने लगीं। मनोरमा अपनी दो सहपाठियों के साथ एक कोने में खड़ी हुई बातें कर रही थी। बात-की-बात में वे स्त्रियाँ वहाँ पहुँच गईं, और मनोरमा को चारों ओर से घेर लिया। चारों ओर से बधाइयों की बौछार शुरू हो गई। मनोरमा को उत्तर देने का अवकाश न मिलता था। वह चुप हो गई। उसके नेत्रों से पति-गौरव बाहर निकलकर उन्हें प्लावित कर रहा था। कपोलों का रंग बार-बार लाल हो रहा था। हृदय का स्पंदन बड़े वेग से हो रहा था। इसी अवसर पर मिस ट्रैवीलियन भी पहुँच गईं। मनोरमा को साँस लेने का अवकाश मिला।

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराते हुए कहा—"मिसेज़ वर्मा, मैं आपको ऐसे पुरुष-रत्न को पति-रूप में पाने के लिये बधाई देती हूँ।"

मनोरमा ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा—"धन्यवाद मिस ट्रैवीलियन! आपने जिस सम्मान से उनका स्वागत किया है, उसके लिये मैं सदैव आभारी रहूँगी।"

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराते हुए कहा—"वाह! यह तो हम लोगों का कर्तव्य है। हमारी समाज पुरुषों से घृणा नहीं करती, केवल उनके अत्याचारों को रोकने के लिये ही उसका जन्म हुआ है। मिस्टर वर्मा मुझे पुरुषों में रत्न मालूम होते हैं। ऐसे पुरुषों का सम्मान करने के लिये हमारी समाज सदा तैयार है। तुम्हारे सौभाग्य से मैं भी गौरवान्वित हूँ। मिसेज़ वर्मा, मैं आपको एक बार फिर बधाई देती हूँ।"

मनोरमा ने अरुण कपोलों-सहित कहा—"मिस ट्रैवीलियन,

धन्यवाद। पाँच बज गया है। आज आपका और मेरा टेनिस-मैच था, शायद आप भूल गई हैं।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए कहा—"अरे हाँ, मैं तो बिलकुल भूल गई थी। सचमुच आज ही तो बुधवार है। कोई हरज नहीं, साढ़े पाँच से सही। लेकिन अब डबल पेयर से खेलेंगे। तुम और मैं एक तरफ़, और मिस्टर वर्मा और कुसुमलता दूसरी तरफ़ हो जायँगे। क्यों, इसमें तुम्हें कुछ आपत्ति तो नहीं है?"

मनोरमा ने मुस्कान-सहित कहा—"मुझे क्यों आपत्ति होगी। लेकिन वह खेलेंगे नहीं। वह केवल हम लोगों का खेल देखने के लिये आए हैं।"

मनोरमा की बात सुनकर मिस ट्रैवीलियन आकाश से गिर पड़ीं। उन्होंने विस्मित स्वर में पूछा—"मिस्टर वर्मा क्यों नहीं खेलेंगे? नहीं, उन्हें आज खेलना पड़ेगा।"

इसी समय एक सुंदरी ने सहास्य कहा—"शायद वह खेलना नहीं जानते।"

दूसरी ने तुरंत कहा—"जानते भी होंगे, तो थोड़ा। झेंपते हैं, और डरते हैं कि शायद कहीं हार न जायँ।"

कुसुमलता ने कहा—"नहीं, मुझे अच्छी तरह मालूम है कि वह खेलना जानते हैं, और बहुत अच्छा खेलते हैं।"

एक स्त्री ने, जिसका नाम अरुणा था, कहा—"उन्होंने कई एक टूर्नामेंट जीते हैं। एक बार उनका चित्र 'टाइम्स' में निकला था। गत वर्ष 'चैंपियनशिप' का पुरस्कार उन्हें मिला था। किंतु यहाँ न खेलने का एक दूसरा कारण है।"

पहली सुंदरी ने पूछा—"वह क्या, ज़रा हम भी सुनें। अरुणा, तुम्हें तो दुनिया-भर की ख़बर रहती है। 'चलता-फिरता गज़ट' नाम तुम्हारा ठीक ही है।"

अरुणा ने मनोरमा की ओर देखकर मुस्किराते हुए कहा—"बात यह है कि वह झेंपते हैं। यदि कहीं मनोरमा जीत गई, तो फिर वह मुँह दिखाने लायक़ न रहेंगे।"

अरुणा की बात सुनकर सब ज़ोर से हँस पड़ीं।

मिस ट्रैवीलियन ने हँसी रोकते हुए कहा—"अच्छा, मनोरमा और वह साथ-साथ रहेंगे। बस, अब तो ठीक है। मैं जाकर उनसे खेलने का अनुरोध करती हूँ। मुझे आशा है कि वह कभी मेरी बात न टालेंगे।"

यह कहकर मिस ट्रैवीलियन मिस्टर वर्मा की खोज में चली गईं। मिस ट्रैवीलियन ने उनके पास पहुँचकर खेलने का अनुरोध किया। मिस्टर वर्मा ने बहुत टालने की कोशिश की, किंतु उन्हें किसी प्रकार छुटकारा न मिला। अंत में उन्हें अपनी सम्मति देनी पड़ी। कुसुम-लता मुस्किराने लगी।

---

(८)

टेनिस खेलने के बाद मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"आइए मिस्टर वर्मा, अब हम लोग कुछ जल-पान करें। मुझे आशा है, आपको कुछ आपत्ति न होगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने सहास्य कहा—"क्षमा करिए मिस ट्रैवीलियन, मेरी ज़रा भी इच्छा नहीं है। आने के पहले हम लोग जल-पान करके चले हैं।"

मिस ट्रैवीलियन ने साश्चर्य कहा—"यह क्या ? शायद आपको हमारे साथ खाने में आपत्ति है ?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"नहीं, विश्वास कीजिए, मुझे ज़रा भी आपत्ति नहीं है। मैं नई रोशनी का हूँ। पुरानी बातों पर विश्वास नहीं करता। सबके साथ खाता-पीता हूँ। इसके अतिरिक्त इँगलैंड जा रहा हूँ, वहाँ मैं अपना यह कुसंस्कार कैसे रख सकता हूँ ? मेरी इस समय इच्छा नहीं है। आप लोग शौक़ से जल-पान करें।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक मोहिनी मुस्कान से कहा—"मिस्टर वर्मा, मुझे बड़ा दुःख है कि आप मेरे निमंत्रण की अवहेलना कर रहे हैं।"

राजेंद्रप्रसाद ने तुरंत ही उत्तर दिया—"अगर आप ऐसा सोचती हैं, तो चलिए। मैं आप-जैसी रमणी को रुष्ट करके सुखी नहीं हो सकता।"

मिस ट्रैवीलियन ने मोहिनी कटाक्ष से राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा।

कुसुमलता और मनोरमा ने खेल खेलने में भाग नहीं लिया था। कुछ देर तक मिस ट्रैवीलियन और राजेंद्रप्रसाद का खेल देखकर वे लौट आई थीं, और कमरे में बैठी अपने मित्रों से बातें कर रही थीं। राजेंद्रप्रसाद उन दोनों की खोज में चले। अभी मिस ट्रैवीलियन का साथ छोड़ा ही था कि एक दूसरी मोटर बँगले के भीतर आकर 'पोर्टिको' में खड़ी हुई। मोटर से एक सुंदर नवयुवक उतरा। उस नवयुवक को देखते ही मिस ट्रैवीलियन सब काम छोड़कर उसकी ओर लपकीं। मिस ट्रैवीलियन को देखते ही उस नवयुवक ने अपनी टोपी उतार ली, और अभिवादन किया। मिस ट्रैवीलियन ने सहास्य वदन से उसका उत्तर तो दिया, किंतु न-मालूम क्यों बार-बार उनके मुख का रंग बदल रहा था। कभी चूने-जैसा सफ़ेद हो जाता, और कभी ईंगुर-जैसा लाल। राजेंद्र-प्रसाद उस युवक को देखकर ठहर गए, और युवक भी उन्हें देख-कर कुछ अप्रतिभ-सा हो गया।

मिस ट्रैवीलियन ने बड़ी ज़ब्ती से काम लिया, और राजेंद्रप्रसाद की ओर देखते हुए कहा—"मिस्टर वर्मा, आइए, पहले मैं आपका परिचय इनसे करा दूँ। आपका नाम है राजा प्रकाशेंद्रसिंह एम्० ए० और आप रूपगढ़ के ताल्लुक़ेदार हैं। आप रुपए से हमारी क्लब और एसोसिएशन की सदैव सहायता करते हैं, और आपकी रानी साहबा तो हमारी सभा की प्रेसीडेंट हैं।"

इसके उपरांत राजा साहब से राजेंद्रप्रसाद का परिचय कराया। दोनो व्यक्तियों ने हाथ मिलाकर एक दूसरे से मिलने की प्रसन्नता प्रकाशित की।

परिचय करने के बाद मिस ट्रैवीलियन ने एक भेद-भरी दृष्टि से राजा साहब की ओर देखा, और धीरे से उनका पैर अपने जूते से दबा दिया।

राजा साहब ने भी उसका उत्तर दे दिया। इसी समय हठात् राजेंद्रप्रसाद की दृष्टि उनकी ओर घूम गई, और उन्होंने उन दोनों का दृष्टि-विनिमय देख लिया।

मिस ट्रैवीलियन तुरंत दोनों को उसी स्थान पर छोड़कर एक ओर चली गई।

राजा प्रकाशेंद्रसिंह ने मिस ट्रैवीलियन के चले जाने के बाद राजेंद्रप्रसाद से कहा—"मिस्टर वर्मा, आपसे परिचय प्राप्त करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे नहीं मालूम था कि आप तशरीफ़ लाए हैं, नहीं तो मैं आपसे मिलने आया होता। मिस्टर राधारमण तो हमारे यहाँ के वकील हैं। जब मिसेज़ वर्मा का विवाह हो रहा था, तब मुझे भी निमंत्रण मिला था। किंतु मैं उन दिनों बीमार था, नहीं तो विवाह में अवश्य आता। इन दिनों मिसेज़ वर्मा के दर्शन नहीं हुए। हम सब लोग चिंतित थे कि क्या कारण है। लेकिन अब मालूम हुआ।" यह कहकर राजा प्रकाशेंद्र हँसने लगे। राजेंद्रप्रसाद को भी योग देना पड़ा।

राजा साहब फिर कहने लगे—"मिस्टर वर्मा, आपने एम्० ए० किस विषय में पास किया है?"

राजेंद्रप्रसाद ने नम्र भाव से कहा—"फ़िलॉसफ़ी में।"

राजा साहब ने प्रसन्नता से कहा—"फ़िलॉसफ़ी में तो मैंने भी एम्० ए० पास किया है। वाह, बड़ी प्रसन्नता की बात है। इसके अलावा आप हमारे गुरु-भाई भी हैं।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"बेशक, इस बात से मुझे और प्रसन्नता है।"

राजा साहब ने थोड़ी देर तक चुप रहकर फिर कहा—"मिस ट्रैवीलियन एक विदेशी रमणी हैं, फिर भी हम लोगों का, हमारी जाति का, कितना उपकार कर रही हैं। क्या हमारे

देश में ऐसी स्त्रियाँ नहीं हो सकतीं ? हो सकती हैं। किंतु हम लोग तो उन्हें अपने घर की दीवारों में बंद किए हुए हैं, उनके विचारों को विशद होने का अवसर नहीं देते, फिर वे कैसे ऐसे सामाजिक कार्यों में योग दे सकती हैं। स्वतंत्रता होने से सब कुछ हो सकता है। स्वतंत्रता मिलने से मनुष्य की रग-रग में स्फूर्ति का नया रक्त घूमने लगता है, जो उसकी सब कमज़ोरियों को दूर कर देता है। क्यों मिस्टर वर्मा, आपका क्या विचार है ?"

राजेंद्रप्रसाद का मन न-मालूम क्यों विरक्त हो रहा था। उनकी श्रद्धा राजा साहब के प्रति जागती न थी। राजा साहब का आना, मिस ट्रैवीलियन का अधीर होना, पश्चात् दोनो का भेद-भरी दृष्टि से देखना, यह सब एक-एक करके उनके मन में उठ रहे थे। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि राजा प्रकाशेंद्र अपनी इन बातों से किसी भारी भेद को छिपाने का यत्न कर रहे हैं। अपने हृदय पर आवरण खींचकर उसकी कलुषता छिपा रहे हैं।

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"हाँ, ऐसा ही है।"

राजा प्रकाशेंद्रसिंह ने उनकी विरक्ति अनुभव करके कहा—"मुझे मालूम होता है कि आप अन्यमनस्क हैं। आपकी इस चिंता का क्या कारण है ?"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"नहीं, मैं आपकी बातें सुन रहा हूँ। हाँ, वास्तव में मिस ट्रैवीलियन का कार्य सराहनीय है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"अच्छा, मिस्टर वर्मा, आप इँगलैंड कब जा रहे हैं ?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"दो-तीन महीने में जाऊँगा।"

राजा प्रकाशेंद्र ने घास पर पड़ी हुई एक बेंच पर बैठते हुए कहा—"मिसेज़ वर्मा को तो आप शायद अपने साथ ले जाइएगा। उन्हें भी इँगलैंड दिखा दीजिए। उनसे मुझे बड़ी आशा है। वह बड़ी

ही बुद्धिमान्, चतुर और कुशल हैं। इँगलैंड हो आने से उनके विचार बहुत विशद हो जायँगे, और उनसे हमारी समाज का बहुत कल्याण होगा।"

राजेंद्रप्रसाद ने न-जाने क्यों राजा साहब की ओर देखा, और कहा—"इरादा तो मेरा ऐसा ही है, किंतु........."

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसते हुए बात काटकर कहा—"किंतु क्या, मिस्टर वर्मा।"

राजेंद्रप्रसाद ने गंभीरता-सहित कहा—"मेरी मा को कुछ आपत्ति है।"

राजा प्रकाशेंद्रसिंह ने सहास्य कहा—"यही तो बड़ी बुरी बात है। भारतीय माताएँ अपनी संतान को आँखों से ओझल करना नहीं चाहतीं। हमारे देश के पतन का एक यह भी बड़ा भारी कारण है।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"हो सकता है। किंतु राजा साहब, प्राचीन भारत का यदि आप कुछ भी अवशेष-चिह्न देखना चाहते हैं, तो वह आपको यहाँ की माताओं में ही देखने को मिलेगा।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"ऐसे मातृत्व को लेकर क्या किया जाय, जिससे हमारा पतन होता है, हमारा ह्रास होता है, जो हमारे विनाश का कारण है।"

राजेंद्रप्रसाद ने विरक्ति-पूर्ण हँसी-सहित कहा—"राजा साहब, भारतीय माताएँ कभी अपनी संतान की गरदन पर छुरी नहीं चलातीं। आप स्वयं उन्नति नहीं करते, और दोष का भार किसी दूसरे पर रखकर मुक्त होना चाहते हैं। मानव-जाति सदैव से भीरु-हृदय है। वह स्वयं कभी दोषी नहीं होना चाहती। जब कोई दोष देने को नहीं मिलता, तब विधाता को दोषी ठहराती है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तर दिया—"ऐसा भी हो सकता है, किंतु

आप किसी प्रकार यहाँ की स्त्रियों की संकीर्ण बुद्धि के दोष से उन्हें मुक्त नहीं कर सकते।"

राजेंद्रप्रसाद कुछ कहने जा ही रहे थे कि मिस ट्रैवीलियन ने सहास्य वदन से आकर कहा—"मिस्टर वर्मा, चलिए, हम लोग जल-पान करें। राजा साहब, आप तो कभी इनकार नहीं करेंगे ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तर दिया—"वाह, मैं ऐसा अवसर कब छोड़ सकता हूँ। मनुष्य के जीवन में अवसर, विशेष बड़े भाग्यों से मिलता है। यदि उस समय उससे लाभ नहीं उठाया जाता, तो फिर वह कभी वापस नहीं आता, और मनुष्य अंत में पछताता है। मैं सहर्ष आपका निमंत्रण स्वीकार करता हूँ। चलिए।"

मि० वर्मा की इच्छा जल-पान करने की नहीं थी, किंतु इनकार करने की कोई सूरत न थी। मजबूर होकर उन्हें जाना पड़ा।

मिस ट्रैवीलियन के बँगले के उत्तरी भाग में चाय-पानी का इंतिज़ाम किया गया था। घास पर एक बड़ी मेज़ पड़ी थी, और उसके चारों ओर पाँच कुर्सियाँ पड़ी थीं। कुसुमलता और मनोरमा वहाँ पहले ही से इन लोगों की प्रतीक्षा कर रही थीं। नियमानुसार मि० वर्मा मिस ट्रैवीलियन की बग़ल में बैठे, और राजा साहब मनोरमा की बग़ल में, तदुपरांत कुसुमलता बैठी।

राजा साहब के मुख से प्रसन्नता टपक रही थी। वह बार-बार अपनी कनखियों से मनोरमा की रूप-माधुरी पान करने का उद्योग कर रहे थे। राजा साहब इतना सतर्क थे, तब भी मि० वर्मा की तेज़ निगाहों से उनका यह कार्य छिपा न रह सका। मन-ही-मन वह किसी भाव को दबाने की चेष्टा करने लगे। राजा साहब ने मिस ट्रैवीलियन की ओर देखते हुए कहा—"आज इस युगल दंपति की बधाई में हमें लाल शरबत पीना उचित था। आपने इसका कुछ इंतिज़ाम नहीं किया ?"

मिस ट्रैवीलियन ने अपनी दाहनी आँख दबाते हुए कहा—"राजा साहब, क्या आप हमारे यहाँ के नियमों को भूल गए? हमारी समाज में किसी भी मादक वस्तु का उपयोग निषेध है। आप होटल में नहीं, वीमेंस-क्लब में हैं।"

राजा साहब ने चौंककर कहा—"ओहो! मैं बिलकुल भूल गया था, क्षमा कीजिएगा। मिस्टर वर्मा, आप इस क्लब का मेंबर होना क्या स्वीकार करेंगे?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"मेरे मेंबर होने से लाभ! मैं यहाँ का रहनेवाला नहीं, न यहाँ रहता ही हूँ, फिर मैं कैसे इस क्लब का उपकार कर सकता हूँ।"

राजा साहब ने हँसकर उत्तर देते हुए कहा—"किंतु आप-जैसे बड़े आदमी को मेंबर बनाने में हमारे क्लब का मान है, गौरव है।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"धन्यवाद। मैं सेवा के लिये सब तरह तैयार हूँ। किंतु......"

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराते हुए कहा—"किंतु-इंतु कुछ नहीं। मिस्टर वर्मा, अभी आपको मैं इस क्लब और एसोसिएशन की कार्रवाही दिखलाऊँगी, तब आपको मालूम होगा कि हम लोगों ने कितना काम किया है। इस समय एसोसिएशन को रुपए की बड़ी आवश्यकता है। रुपया न होने से दो-तीन 'स्कीमें' रुकी पड़ी हैं। आप लोग यदि थोड़ी-थोड़ी भी सहायता दें, तो हमारा काम भली भाँति चल सकता है। राजा साहब ने पाँच हज़ार रुपए देना स्वीकार किया है। दूसरे ताल्लुक़ेदारों से भी हमें अच्छी रक़म मिली है। इस समय हमारे पास बीस हज़ार रुपए हैं। अभी अस्सी हज़ार की और ज़रूरत है। मेरा इरादा है कि इस शहर में एक स्कूल स्थापित करूँ, जिसमें मैं अपने इच्छानुसार शिक्षा दे

सकूँ । राजा साहब ने एक लाख रुपए स्कूल-बिल्डिंग के लिये देना स्वीकार किया है, और इसी तरह के और भी वादे हैं । किंतु रुपया अभी तक मिला नहीं । कहिए, आप कितना देंगे ? आप ही-जैसे सज्जनों का हमें सहारा है ।"

राजेंद्रप्रसाद बड़ी द्विधा में पड़े । उन्होंने भय-विह्वल दृष्टि से मनोरमा की ओर देखा । मनोरमा कुसुमलता से बातें कर रही थी । उनका ध्यान इस ओर न था ।

उन्होंने हँसने का उद्योग करते हुए कहा—"मिस ट्रैवीलियन, मुझे शोक है कि मैं आपकी सहायता इस समय नहीं कर सकता । मुझे आपके कार्य से पूरी सहानुभूति है । मेरी इच्छा भी होती है कि आपकी सहायता करूँ, किंतु क्या करूँ, मजबूर हूँ । मेरी आर्थिक दशा ऐसी नहीं, जो......"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए कहा—"ओह-हो, यदि आप ही लोग ऐसी बातें करेंगे, तो फिर हमारा हाथ कौन बटाएगा ? मेरा मतलब यह नहीं है कि आप दस-बीस हज़ार दें, जो कुछ भी आप दे सकते हों, दीजिए ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"माफ़ कीजिएगा मिस ट्रैवीलियन, इस समय ऐसी बातें कीजिए, जिसमें और व्यक्ति भी सहयोग कर सकें । चंदा वग़ैरा पीछे माँगिएगा । देखिए, मिसेज़ वर्मा और कुसुमलता कुछ भी योग नहीं लेतीं ।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"नहीं, आप हम लोगों के लिये चिंतित न हों राजा साहब ।"

मिस ट्रैवीलियन ने शरमाए हुए कंठ से कहा—"बेशक, आपका कहना ठीक है । मुझे आजकल इसका नशा आठो पहर रहा करता है । मेरे मन में अहर्निश यही इच्छा जाग्रति रहती है कि मैं किस तरह इस संस्था को हिमालय के शिखर पर पहुँचा दूँ ।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"आपकी सद्भावना अवश्य पूर्ण होगी। और, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमारी हिंदू-समाज आपकी सदैव कृतज्ञ रहेगी।"

मिस ट्रैवीलियन ने गद्गद होकर कहा—"अभी तो सेवा करते हुए मुझे कुछ ही वर्ष हुए हैं, लेकिन इस दरम्यान में मुझे काफ़ी सफलता मिली है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तर दिया—"बेशक बेशक, इस समय लखनऊ की स्त्री-समाज में जो कुछ जागृति देख पड़ती है, वह सब आपके ही परिश्रम से है।"

मिस ट्रैवीलियन ने प्रसन्नता से अपना सिर नत कर लिया।

मिस ट्रैवीलियन ने कुछ फल परोसते हुए कहा—"लीजिए, यह दसहरी खाइए, बड़ी नफ़ीस है।"

राजेंद्रप्रसाद ने सविनय कहा—"क्षमा कीजिए।"

मिस ट्रैवीलियन ने उठते हुए कहा—"तो फिर चलिए, आपको मैं अपना दफ़्तर दिखलाऊँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने उठते हुए कहा—"बेशक, मैं बड़ी प्रसन्नता से देखूँगा, लेकिन यदि यह काम किसी अन्य दिन के लिये स्थगित कर दें, तो ठीक होगा। आज हम लोगों का प्रोग्राम 'प्रिंस ऑफ़् वेल्स' जाने का है। शेक्सपियर का मशहूर ड्रामा 'हैमलेट' दिखलाया जायगा। आइए, आप भी तशरीफ़ ले चलें।"

राजा प्रकाशेंद्र ने प्रसन्न कंठ से कहा—"ओहो, मैं तो बिलकुल भूल ही गया था। ज़रूर मैं आपके साथ चलूँगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक भुवन-मोहन मुस्कान से राजेंद्रप्रसाद की ओर देखते हुए कहा—"मि० वर्मा, मैंने इस संस्था के लिये सब कुछ छोड़ दिया है। मैंने प्रतिज्ञा की है कि जब तक हिंदू-स्त्रियों

की उन्नति पूर्ण रूप से न हो जायगी, जब तक उन्हें वे अधिकार न मिल जायँगे, जो एक स्वतंत्र पुरुष को प्राप्त हैं, तब तक मैं भी किसी आमोद-प्रमोद में भाग नहीं लूँगी।

राजा प्रकाशेंद्र ने विस्फारित नेत्रों से मिस ट्रैवीलियन की ओर देखते हुए कहा—"यह भेद तो आज ही मालूम हुआ। तभी आपने किसी दूसरे क्लब और होटल में जाना बंद कर दिया है।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"आपके निःस्वार्थ त्याग की जितनी बड़ाई की जाय, वह सदैव अपूर्ण ही रहेगी। भारत में ऐसी रमणी चिराग़ लेकर ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगी।"

मिस ट्रैवीलियन के नेत्र आत्मगौरव से उज्ज्वल होते जा रहे थे।

उन्होंने राजा प्रकाशेंद्र से कहा—"राजा साहब, आप 'पिक्चर्स' देखने जा रहे हैं, लेकिन आप शायद भूल गए कि आज रानी रतनपुर के यहाँ जाने का वादा था।" यह कहकर उन्होंने एक विचित्र भाव-भंगी से राजा साहब की ओर देखा।

राजा प्रकाशेंद्र ने सचेत होकर कहा—"अरे, मैं बिलकुल भूल गया था। अगर मैं न भी जाऊँ, तो कुछ हरज नहीं है। आप रानी साहबा के साथ वहाँ तशरीफ़ ले जायँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"रानी साहबा को थोड़ी-थोड़ी बात के लिये तकलीफ़ देना ठीक नहीं है। वह यों ही इस संस्था की उन्नति के लिये रात-दिन अनवरत परिश्रम करती रहती हैं। उन्हें कुछ विश्राम देना उचित है।"

फिर राजेंद्रप्रसाद की ओर देखते हुए कहा—"रानी साहबा, रूपगढ़ के विषय में जो कुछ कहा जाय, वह थोड़ा है। ऐसा परिश्रम तो मैं भी नहीं करती।"

राजा प्रकाशेंद्र ने मुस्किराते हुए कहा—"उन्हें तो केवल यही

चिंता रहती है कि किस प्रकार इस संस्था की उन्नति हो। इसी से उनके स्वास्थ्य में बहुत अंतर आ गया है। ख़ैर, उन्हें विश्राम देना अवश्य ही उचित है। अच्छा, मैं चलूँगा। अभी ज़रा बँगले जाकर कपड़े बदलकर वापस आता हूँ।"

फिर राजेंद्रप्रसाद से हाथ मिलाते हुए कहा—"अच्छा मिस्टर वर्मा, अब आपके कब दर्शन होंगे? किसी दिन रूपगढ़-हाउस आने की तकलीफ़ करें। रानी साहबा आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्न होंगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"अवश्य। किसी दिन सेवा में ज़रूर हाज़िर होऊँगा।"

राजा प्रकाशेंद्र कुसुमलता वग़ैरह को अभिवादन कर चले गए।

मिस ट्रैवीलियन ने राजा प्रकाशेंद्र के जाने के बाद कहा—"राजा साहबा बड़े ही सज्जन, मिलनसार और निरभिमानी हैं। और, रानी साहब तो साक्षात् देवी हैं। ऐसा जोड़ संसार में ढूँढ़ने पर भी न मिलेगा। स्त्री-पुरुष दोनो इस संस्था के लिये अपना सर्वस्व देने को तैयार हैं। हमारा काम केवल इन दोनो के उद्योग और परिश्रम से चलता है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"बेशक, राजा साहब बड़े ही निरभिमानी और सत्पुरुष हैं। आज बड़ा शुभ दिवस है, जो आप-जैसे सज्जनों से साक्षात् हुआ। अच्छा, अब हमें भी बिदा कीजिए, देर हो जायगी।"

मिस ट्रैवीलियन ने अनिच्छा-पूर्वक कहा—"जैसी आपकी मरज़ी। आपकी सज्जनता ने मेरे हृदय में घर कर लिया है।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"आपकी तारीफ़ में मैं क्या कहूँ? आपकी प्रशंसा तो एक दिन संसार मुक्त कंठ से

करेगा।" कहते हुए मिस ट्रैवीलियन से हाथ मिलाकर बिदा ली।

मनोरमा और कुसुमलता ने भी प्रसन्न मन से बिदा ली।

द्वितीय खंड

(१)

राजेंद्रप्रसाद ने नीरज-सरीखे नयन-युगल को अपने हाथों से ढक लिया। मनोरमा चौंक पड़ी, और दूसरे ही क्षण उठकर खड़ी हो गई। राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए आँखें छोड़ दीं। वह चकित-नयन हँसकर अँगड़ाई लेने लगी, और तुरंत ही उनके कपोलों को गुदगुदाकर उनके हृदय से लिपट गई। हृदय प्रेम-स्वर से झंकरित दूसरे हृदय का कंपन अनुभव करने लगा।

मनोरमा ने अपना मुख उनके वक्ष में छिपाते हुए कहा—"तुम इँगलैंड मत जाओ।"

राजेंद्रप्रसाद ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"क्यों?"

मनोरमा ने सिर उठाकर देखा। उसकी आँखों से मोती के दो गोल दाने ख़ज़ाने के बाहर निकल पड़े। राजेंद्रप्रसाद का हृदय शंकित हो उठा।

उन्होंने प्रेम से उस अश्रु-पूर्ण मुख को चूमकर कहा—"पगली, रोती क्यों है। अच्छा, मैं न जाऊँगा।"

मनोरमा ने अपना मुख फिर उनके कपड़ों में छिपा लिया। आश्वासन हृदय का सहारा है, और विश्वास प्रेम का रूप तथा हृदय प्रेम की साध।

राजेंद्रप्रसाद ने आश्वासन-पूर्ण कंठ से कहा—"मन्नी, अगर तुम्हें दुःख है, तो मैं न जाऊँगा।"

मनोरमा ने दोनो हाथ उनके गले में डाल दिए, और उनकी ओर देखने लगी। आँखों से असीम प्रेम अपनी धवल धारा से राजेंद्रप्रसाद को नहलाने लगा।

राजेंद्रप्रसाद ने उसके कपोलों पर सप्रेम उँगलियाँ फेरते हुए कहा—"मन्नी, तुम क्यों न चलो ?"

मनोरमा की आँखों में कौतूहल थिरकने लगा। वह एक नवीन विचार में डूब गई।

उसने मृदु मुस्कान से कहा—"हाँ, यह ठीक है। यह तुमने पहले क्यों न कहा था। जाओ, तुम बड़े......हो।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"क्या, रैसकेल, स्काउंड्रेल, बोलो, क्या ?"

मनोरमा ने लजाकर कहा—"मेरे हृदय के चोर।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"तो चोर !" यह कहकर आवेग से उन्होंने उसे अपने हृदय से लगा लिया। मनोरमा का सुहाग लहरा उठा, और अगाध प्रेम के नेत्र लाल होकर मदोन्मत्त हो उठे।

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"तुम्हारे हृदय का चोर होने से क्या मैं चोरी के अपराध से बरी हूँ ?"

मनोरमा की आँखों से शैतानी हँस पड़ी। उसने धीमे स्वर में कहा—"हाँ, यह एक विशेष अधिकार है।"

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"धन्यवाद ! यह मेरा गौरव है।"

मनोरमा ने तुरंत कहा—"और मेरा अभिमान।"

दोनो हँस पड़े। प्रेम की धारा वेग से बहने लगी। आनंद उमड़ पड़ा। राजेंद्रप्रसाद ने पलँग पर बैठते हुए कहा—"क्यों मन्नी, तुम मुझे कितना प्यार करती हो ?"

सृष्टि के आदि से प्रेमियों का यह प्रथम प्रश्न रहा है। परंतु इसका उत्तर सदैव नवीन रहा है।

मनोरमा ने उत्तर दिया—"जितनी तुम कल्पना कर सको।" सरलता आँखों से फूट पड़ी, और बिखर गई। गुदगुदी किलक पड़ी।

राजेंद्रप्रसाद ने लज्जित होकर कहा—"यह नहीं।"

मनोरमा ने उलटकर पूछा—"और अच्छा, तुम मुझे कितना प्यार करते हो?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर में कहा—"जितना तुम्हारा हृदय कहे।"

दोनो हँसने लगे। प्रेम-मदिरा की सुरभि उन्हें बेहोश करने लगी।

मनोरमा ने हँसकर कहा—"दोनो प्रश्न एक हैं, और दोनो उत्तर एक हैं।"

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"हाँ, दोनो हृदय भी एक हैं।" सत्य हँसने लगा, और विश्वास नाचने।

मनोरमा ने कहा—"क्या यह सत्य है?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर में कहा—"साक्षी हमारी आत्मा है, और विचारक हमारा प्रेम।"

किसी ने उसी समय एक मधुर हँसी हँसकर कहा—"और दर्शक कुसुमलता।"

दंपति चौंक पड़े। मनोरमा तड़िद्वेग से राजेंद्रप्रसाद की गोद से उठ खड़ी हुई। कुसुमलता की हँसी प्रतिध्वनित होने लगी।

कुसुमलता ने गंभीरता से कहा—"मैं हमेशा ऐसी घड़ी आती हूँ, जब........।" कुसुमलता को फिर हँसी आ गई।

राजेंद्रप्रसाद ने कुछ शरमाए हुए स्वर में कहा—"आपका आना सदा शुभ है। आप आज न्यायाधीश होकर अपना फ़ैसला देंगी। आपके पिता जस्टिस हैं। पिता के न्याय-गुण का विकास कैसा हुआ है, यह देखना है। उनकी न्यायप्रियता तो आपमें कोमलता की विभूति से पूजित होनी चाहिए।"

कुसुमलता ने सम्मान से अपना मस्तक नवाकर कहा—"धन्यवाद! और मेरी सखी का प्रेम सागर-सा गंभीर, ब्रह्मांड-सा अनंत, भगवान्-

सा सुंदर है, जिसकी सुधा-मयूखों ने आपको चकाचौंध कर विस्मित कर रक्खा है, और आप विस्फारित नेत्रों से, मुँह खोले देख और कह रहे हैं कि संसार में स्त्री का प्रेम भगवान् का सबसे मनोहर आशीर्वाद है।"

मनोरमा मुस्किराने लगी। आत्मतुष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्रकाश आँखों से निकलने लगा।

राजेंद्रप्रसाद ने प्रशंसा-पूर्ण शब्दों में कहा—"सत्य है, नितांत सत्य है। कमाल किया। बिलकुल यही दशा समुद्र में घबराए हुए नाविक की होती है। रमणी का प्रेम भगवान् का मोहन-मंत्र है।"

कुसुमलता ने मधुर मुस्कान और किंचित् कटाक्ष से कहा—"और आत्मा एवं परमात्मा के बीच का रहस्य।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"किंतु गंभीर है, उलझा हुआ है।"

कुसुमलता ने तुरंत उत्तर दिया—"हाँ, मोहक है, और तृप्ति-दायक है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"विस्मित है, और प्यासा है।"

कुसुमलता ने उत्तर में कहा—"सरल है, और शांत है।"

मनोरमा ने बीच में कहा—"दो शरीर, किंतु एक प्राण हैं।"

राजेंद्र ने हँसकर कहा—"देखिए, हमारे विवाद पर यह आख़िरी फ़ैसला है।"

कुसुमलता ने कहा—"यह अपनी जाति का पक्ष है—मेरा अनुमोदन है, और मेरे मनोभाव हैं। सत्य ही मिस्टर वर्मा, रमणी का प्रेम संसार की सबसे उलझी हुई प्रहेलिका है। सृष्टि के आदि से अंत तक यही अप्सरा नाचती रहेगी—केवल आवरण दूसरा होगा। हरएक रमणी अपने से अधिक अपने पति को चाहती है। डेसडीमोना का प्रेम देखो, कितना गंभीर, सरल और विश्वास-मय है, और आथेलो का कितना उद्धत, ज्वलंत और क्रोधमय है।"

राजेंद्रप्रसाद ने गंभीरता से कहा—"उद्धत है, किंतु आथेलो कितना प्रेमी है। महज़ शक कि डेसडीमोना अपवित्र है, उसे पागल कर देता है, और वह इतना बदहोश हो जाता है कि उसी पराग को, जिससे वह जीवित है, मसल डालता है, और दूसरे क्षण वह इससे बुरी दशा में मरता है। पहले में वह वधिक है, और दूसरे में आत्मघातक! प्रेम का तांडव क्रूर है, और शेक्सपियर की तांडव कल्पना है। अग्नि और पुष्प के प्रज्वलित सौंदर्य की झाँकी है।"

कुसुमलता ने मुग्ध नेत्रों से कहा—"What an advocate for an' imposter!"

राजेंद्रप्रसाद ने उसी क्षण कहा—"लेकिन पोर्शिया से अधिक नहीं।"

मनोरमा ने कहा—"हाँ, एंटोनियो-से जादूगर ज़रूर हैं।"

तीनों की हँसी का मृदु गुंजन शून्य में विलीन होने लगा।

इसी समय राजेश्वरी ने आकर कहा—"आप लोग कुछ जल-पान तो कर लें समय हो गया है।"

माता को देखकर मनोरमा जाने लगी। राजेश्वरी ने उससे कहा—"मन्नी, हरसुख से कहो कि यहीं ले आवे। यहीं जल-पान कर लो।"

मनोरमा कमरे के बाहर हो गई।

कुसुमलता ने कहा—"माजी, आप भी तशरीफ़ रखिए।"

राजेंद्रप्रसाद ने एक कुरसी खींचते हुए कहा—"अम्मा, आप तो हम लोगों के पास बैठतीं ही नहीं।"

राजेश्वरी ने बैठते हुए कहा—"आजकल मन्नी का इम्तिहान है, इसलिये ज़्यादा नहीं आती।"

कुसुमलता ने उत्तर में कहा—"आप हमारे इम्तिहान की परवा न करें। क़िस्मत है, और हम हैं।"

यह कहकर वह राजेंद्रप्रसाद की ओर एक वंकिम कटाक्ष कर मुस्किराई, और फिर अपनी गर्दन घुमाकर सुदूर एक चित्र की ओर देखने लगी। राजेश्वरी की वह अवस्था थी, जो शराबियों के बीच में आ जाने से किसी न पीनेवाले की होती है। कशमकश की अजब हालत थी।

राजेंद्रप्रसाद ने गंभीर मुद्रा में कहा—"हाँ, परीक्षा तो ज़रूर है, लेकिन ये लोग कुछ पढ़तीं नहीं। देखें, फल क्या होता है!"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"हम लोग इम्तिहान के दिनों में नहीं पढ़तीं। पढ़ाई तो कब की ख़त्म कर दी। अब शांत मन से परचे लिख आने हैं। मनोरमा तो कॉलेज में फ़र्स्ट आवेगी।"

राजेश्वरी ने मा के गर्व से उन्नत होकर कहा—"अब तक तो ऐसा ही हुआ है।"

कुसुमलता ने किंचित् शुष्कता से कहा—"तो अब की भी वैसा ही होगा। सूर्य सदैव पूर्व से ही निकलता है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"मुझे तो वैसे लक्षण नहीं मालूम होते।"

कुसुमलता ने एक भुवनमोहन मुस्कान-सहित कहा—"चिराग़ दूसरों को उजाला देता है, किंतु अपने नीचे अँधेरा रखता है।"

राजेश्वरी ने बातों का सिलसिला बदलते हुए कहा—"कुसुम, तुम आजकल दुबली बहुत हो गई हो।" उसके स्वर में मा की-सी मिठास और बात बदलने का संकेत था।

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"इम्तिहान की फ़िक्र है।"

कुसुमलता ने एक आह से कहा—"अपने जीवन की फ़िक्र है।" कहते-कहते एक मोती-जैसा आँसू आँख-रूपी प्याले में भरकर छलकते-छलकते रह गया।

राजेंद्रप्रसाद ने देखा, और राजेश्वरी ने फिरकर देखा—वेदना का स्रोत दो दिशाओं से उमड़कर कुसुमलता के कठोर सत्य के रूप को डुबाने का यत्न करने लगा।

राजेश्वरी की करुणा रोने लगी। उसने कहा—"वैधव्य—हिंदू-विधवा की तपस्या, कठोर व्रत और आदर्श स्त्री-धर्म—भगवान् का तप-रूप है।"

राजेंद्रप्रसाद के हृदय में सहानुभूति, ईश्वर का दुखी रूप समाज के विरोध में अपना बल लगाने लगा। उन्होंने एक आह से कहा—"हिंदू-धर्म संसार का सबसे निकृष्ट धर्म है।" फिर एक व्यंग्य से कहा—"देवी, आप हिंदू-घर में पैदा हुई, उसका अभिशाप तो आपको ही भोगना पड़ेगा।"

कुसुमलता ने एक व्यथा-भरी चितवन से राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा। विद्रोही मन को उत्तेजना मिली, और वह एक ओर देखकर फिर द्वार पर आई हुई मनोरमा की ओर देखने लगी।

मनोरमा ने सबको चकित करते हुए कहा—"हिंदू-धर्म को निकृष्ट कहना भूल है। हिंदू-धर्म ईश्वर का ज्ञान-रूप है, और हिंदू-विधवा ईश्वर का तप-रूप। ऐहिक सुख अनंत सुख नहीं। सोना तपकर ही कुंदन होता है। विधवा की तपस्या निर्गुण उपासना है, पति आँखों से ओझल है, परंतु फिर भी चारो ओर है। स्वप्न को सत्य करने के लिये अपना स्थूल शरीर तो जलाना ही पड़ेगा—यह वैधव्य इसी का मार्ग है। विधवा का पति स्थूल शरीर का चोग़ा पहने पार्थिव नहीं है, बल्कि सत्यं, शिवं, सुंदरं है। वह मरकर पार्थिव पति से जुदा नहीं होती, बल्कि असीम पति के गले का हार होती है। निवृत्ति, मोक्ष और लीन! कैसा अनोखा मार्ग है।"

राजेश्वरी ने मातृगर्व से मनोरमा को देखते हुए कहा—"सत्य है। हिंदू-विधवा हिंदू-धर्म का विराट् तप है।"

कुसुमलता ने चकित होकर देखा—हृदय की हूक बाहर निकलती थी। उसका गला घुट गया।

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"लेकिन कितनी बर्बरता है। सुगंधित पुष्प अपनी सुरभि लेकर मर जाय।"

मनोरमा ने एक खंभे की आड़ में होकर कहा—"सुरभि तो अमर है, सच्ची सुगंध तो गुलाब की पँखड़ियों के सूखने पर ही मिलती है। स्वयं सुरभित होकर संसार को सुरभित करना कितना मोहन रूप है! फिर भी बर्बरता है?"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"इच्छाएँ किसी की ग़ुलाम नहीं। तपस्या कोई रुचिकर पदार्थ नहीं। पापों का भार बढ़ाने के अतिरिक्त और क्या समाज का कल्याण हमारी विधवाएँ करती हैं?"

मनोरमा ने मुँह को छिपाते हुए कहा—"जो पाप करे, वह हिंदू-विधवा नहीं। उसे विवाह करना आवश्यक है। सरकार मानती है, रूढ़ि मानती है, और समाज मानता है।"

राजेश्वरी ने प्रसन्न होकर कहा—"शाबाश सखी!"

कुसुमलता अत्यंत सकुचा गई, और तीव्र गति से निःशब्द बाहर हो गई।

---

(२)

कुसुमलता ने उसी रात चंद्रमा की ओर देखते हुए कहा—"जीवन की फ़िक्र ! अंधकारमय जीवन ! जिसका भविष्य अनजान गह्वर में प्रविष्ट है, जो किसी के काम न आ सके, वह एकमुश्त ग़ुबार हूँ। सत्य है, कितना भयंकर सत्य है। लेकिन लालसा, इच्छा, वासना नहीं दबती। हृदय रोता है। शकर के साथ कोई चीज़ खाने के लिये चाहिए, अकेले शकर नहीं खाई जाती।

"देखो, मनोरमा कितनी सुखी है ! सुहाग में विभोर, उसको मेरी पीड़ा, मेरे हृदय की वेदना क्या मालूम। हिंदू-धर्म को वह आशीर्वाद कहती है, और मैं उसको अभिशाप। सचमुच उसके लिये तो वह आशीर्वाद के ही रूप में है। राजेंद्र बाबू के अनंत प्रेम की सोलह आना मालकिन है, फिर आशीर्वाद क्यों न हो। मैं⋯मेरा कौन है। मैं किसके सुहाग से विभोर होऊँ। बाहर अंधकार है, और भीतर अंधकार है। मेरी साध, मेरी कामना, मेरी लालसा और मेरा प्रेम केवल अग्नि में जलने के लिये हैं। मेरी शिक्षा, मेरा रूप, मेरा सौंदर्य केवल मेरे ही भोग की वस्तु है, इसको भोगनेवाला कोई नहीं। मैं हिंदू-विधवा हूँ। साध की समाधि ही मेरा अनंत विश्राम है।

"राजेंद्र ! कितना सुंदर नाम है ! उनमें भुवनमोहन रूप है, सर्वविजयी सौजन्य है, और दिल को हिलानेवाली सहानुभूति। उनके हृदय में मेरे प्रति दुख है, दया है, और समवेदना है। हिंदू-विधवा के वह शत्रु नहीं, मित्र हैं। उनको डुबानेवाले नहीं, बल्कि उद्धारक हैं। योग का पाठ पढ़ानेवाले नहीं, बल्कि संयोग

का उपदेश देनेवाले हैं। मैंने देखा था ; मेरे आँसू देखकर उनका दिल पानी-पानी हो गया था। आह! कितना आनंद, कितना धीरज मुझको मिला! मेरे नैश निभृत रुदन की प्रतिध्वनि उनके हृदय में झंकरित होने लगी। वह तड़प उठे! आह! वही तड़प तो मेरी विजय थी। तब क्या वह मुझ अभागिनी को......। नहीं, यह भ्रांति है। ऐसा उच्च, ऐसा महान् व्यक्ति विश्वासघात नहीं करेगा। मेरी भूल है।

"अरे मतवाले मन, तुझको तो मैंने मना कर दिया था कि उसका नाम मत लेना, और तू फिर उसी ओर जाने लगा। जिसने कुसुमलता के जीवन में अग्नि लगा दी है, उसके नाम से क्या तुझको नफ़रत नहीं होती। जिसने तेरे जीवन में विष-कीटाणु प्रविष्ट कर दिए, तू उसी की गुणावली बखान करता है। तेरा कितना उलटा रूप है। मनोरमा और राजेंद्र, ये ही दोनो मेरे शत्रु हैं। और, मनोरमा तो मेरे मार्ग की काँटा है। हर बात में मेरी प्रति-द्वंद्वी है। पढ़ने में, परीक्षा में, रूप में, सौंदर्य में, किसमें वह मेरी प्रति-द्वंद्विता नहीं करती। वह प्रेम-सागर में डूबती-उतराती मेरी ओर विद्रूप कटाक्ष करती हुई कहती है—तू और बातों में मेरी बराबरी चाहे भले ही कर ले, लेकिन पति-प्रेम में तू क्या करेगी? ठीक है, तभी वह आज हिंदू-विधवा का आदर्श रूप लेकर आई थी। पीतल को चमका-चमकाकर सोना बनाने का प्रयत्न कर रही थी।

"परंतु वह भूल करती है। मैं इन समाज के बंधनों में बँधकर नहीं रहूँगी। इनसे लड़ूँगी, भाग्य से लड़ूँगी, और लड़ूँगी अपने वैधव्य से। कहते हैं, भगवान् है। होगा। कहते हैं, भाग्य है। होगा। कहते हैं, समाज है। होगा। मेरे लिये कोई नहीं। मैं स्वयं अपना भगवान् हूँ, अपना भाग्य हूँ, और अपना समाज हूँ। मैं वायु की तरह स्वतंत्र हूँ, मन की भाँति गतिशील हूँ, और विचार की भाँति

अनंत हूँ। जो आग मेरे हृदय में जल रही है, वह संसार में लगा दूँगी—मैं जलूँगी, और दूसरों को जलाऊँगी; मैं रोऊँगी, और दूसरों को रुलाऊँगी। आह! इसमें भी तो मज़ा है। दूसरों को रुलाने में भी तो मन को शांति मिलती है।

"राजेंद्र! कितना शांतिदायक नाम है! मेरे रोम-रोम में अंकित है, मांस-पेशी-पेशी में जड़ित है, और रक्त की बूँद-बूँद में व्याप्त है। कैसा उन्नत ललाट है, कैसे विशाल नेत्र हैं, कैसे सुश्री कपोल हैं, कैसा मोहन रूप है! सौंदर्य ने पुरुष-वेष में अवतार लिया है। वह मेरे कौन हैं? वास्तव में कोई नहीं, किंतु कल्पना में मेरे मन के राज्य में वह सम्राट् हैं, मैं उनकी दासी हूँ।

"दासी! नहीं, मैं फिर बहक गई। शत्रु—अपने विकट शत्रु की दासी! कोई सुने, तो क्या कहे। शत्रु की दासी!"

कुसुमलता हँसने लगी। हँसी—शुष्क हँसी—की खनखनाहट भयंकर रूप से निकलकर असीम में विलीन होने लगी। कुसुमलता अपनी आवाज़ से आप शंकित हो गई। सदैव का मृदु गुंजन खनखनाहट में कैसे परिणत हो गया। किंतु कुसुमलता की वह शंकित अवस्था बहुत देर तक नहीं रही।

एक नौकर ने आकर चाँदी की तश्तरी में एक कार्ड लाकर सामने किया। कुसुमलता ने उसे उठाकर चंद्रमा के धुँधले प्रकाश में पढ़ा। लिखा था—'मिस ट्रैवीलियन।'

मिस ट्रैवीलियन ने प्रतीक्षा नहीं की। कार्ड के साथ ही वह भी आ गईं। कुसुमलता ने उन्हें देखते ही कहा—"आप आज असमय कैसे आईं?"

मिस ट्रैवीलियन ने एक मृदु मुस्कान-सहित कहा—"क्या यह समय आने का नहीं? अभी तो शाम ही हुई है, और आप तो अकेली हैं। हाँ, अगर मिसेज़ मनोरमादेवी कहतीं, तो अवश्य

ही उनके समय पर, उनके अधिकार पर, अनधिकार चेष्टा कहलाती।" कहते हुए मिस ट्रैवीलियन ने एक अतभेदी दृष्टि से कुसुमलता की ओर देखा। पके हुए बलतोड़ पर हाथ लगने से मनुष्य उतना नहीं चिहुँकता, जितना कुसुमलता व्यथित होकर उनकी ओर देखने लगी।

मिस ट्रैवीलियन ने बनावटी मर्माहत की दृष्टि से कुसुमलता की ओर देखकर कहा—"मेरी प्यारी, मुझे क्षमा करो। मैंने अनजान में अपराध किया है।"

कुसुमलता ने पीड़ा-भरी दृष्टि डालकर उत्तर दिया—"नहीं, यही कठोर सत्य है। सत्य आवरण से ढककर छिपाया नहीं जा सकता। आपका कहना सत्य है, मेरे समय का कोई मूल्य नहीं। मेरा समय अपना निज का है।" फिर एक शुष्क हँसी से कहा—"मैं किसी की अपेक्षा नहीं करती, और कोई मेरी अपेक्षा नहीं करता। आप भी तो मेरी ही-जैसी स्वतंत्र हैं।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक मृदु हँसी हँसकर कहा—"तभी तो मैं अपनी ही-जैसी के पास आई हूँ।"

दोनो हँसने लगीं। उस हँसी में दोनो की ग्लानि बह गई।

कुसुमलता ने एक सोफ़ा पर मिस ट्रैवीलियन को बिठाते हुए कहा—"बैठिए। अच्छा, आज आपसे एक बात पूछती हूँ। क्या आप उसका ठीक-ठीक उत्तर देंगी?"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए कहा—"मैं तुम्हारा प्रश्न जानती हूँ।"

कुसुमलता ने आश्चर्य से उनकी ओर देखते हुए कहा—"वह क्या है?"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्तर दिया—"यही कि मैं विवाहित न होकर कुमारी क्यों हूँ?"

कुसुमलता ने हँसकर कहा—"हाँ, यही प्रश्न था। आज आप निष्कपट हृदय से इसका उत्तर दें।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए कहा—"अरे, इसका उत्तर तो बहुत सहज है। When enough milk can be had in Bazar, where is the necessity to keep a cow (जब दूध बाज़ार में काफ़ी मिल सकता है, तो गाय बाँधने की क्या ज़रूरत)?"

दोनो हँस पड़ीं। हँसी की मधुर ध्वनि अंतरिक्ष में लीन हो गई।

कुसुमलता कुछ गंभीर होकर सोचने लगी।

मिस ट्रैवीलियन ने कहना शुरू किया—"मित्र, तुम ऐसे समाज में पैदा हुई हो, जहाँ स्त्रियाँ ग़ुलामी में बाँधकर जकड़ दी गई हैं। पुरुषों ने तुम्हें पैर की जूती बना रक्खा है। संसार की जो विभूति है—सृष्टि की सबसे कोमल रचना—जिसमें पुष्प का जीवन है, चंद्रिका की ज्योति है, और केशर की सुगंध है, निर्दय पुरुष-जाति ने उसे मसलकर फेक दिया है। जानती हो, पश्चिम में नवयुवतियाँ तितलियों की भाँति पुष्प-पुष्प घूमकर मधु-पान करती हैं, अपनी रूप-राशि को कंजूस की तरह ज़मीन में छिपा नहीं रखतीं। वह तो एक आकर्षण की वस्तु है, उसका पूरा उपयोग करती हैं। इस सत्य जीवन के अतिरिक्त किसी काल्पनिक जीवन का विचार नहीं करतीं। तभी तो पुरुष-जाति की वे दासी नहीं, बल्कि वे उनके दास हैं। पुरुष दास की भाँति दिन-भर परिश्रम करता है, नहीं, जीवन-भर परिश्रम करता है, और उसका उपयोग सम्राज्ञी की भाँति योरप की रमणियाँ करती हैं।"

कुसुमलता ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप अपने विचारों में लीन रही।

मिस ट्रैवीलियन फिर कहने लगीं—"विवाह, यह ग़ुलामी की मुहर है, स्वतंत्रता की तिलांजलि है, और स्वाधीनता की हत्या। योरप

और अमेरिका में विवाह का नाम कुछ दिनों बाद केवल कोष में मिलेगा। नारी-जीवन की महत्ता विवाह में नहीं, बल्कि उसके विरोध में है। विवाह करके किसी एक पुरुष की दासता में बँध जाना है। योरप कहता है कि मैंने ग़ुलामी का अंत किया है, लेकिन वहाँ की रमणियाँ कहती हैं कि जब तक विवाह रहेगा, ग़ुलामी बंद नहीं कही जा सकती। इसलिये उन्होंने इस घृणित ग़ुलामी की प्रथा को बंद करने का—नहीं, समूल नष्ट करने का—बीड़ा उठाया है। इन विचारों में रूस हमारा पथ-प्रदर्शक है। हमारी जाति की सच्ची स्वतंत्रता का दिग्दर्शन तो रूस में ही मिलता है, जहाँ विवाह का रोग कुछ दिनों बाद, अति निकट भविष्य में, नष्ट कर दिया जायगा। बीसवीं शताब्दी स्त्रियों की क्रांति का युग है।"

कुसुमलता फिर भी चुप रही।

मिस ट्रैवीलियन कहने लगीं—"हाँ, तुम सोचो, और मैं तुम्हें चेतावनी देती हूँ, सँभल जाओ। पुरुष-जाति से लड़ने के लिये तैयार हो जाओ। हिंदुस्थान में जितना सुधार करना पड़ेगा, उसका शतांश भी योरप में करने की ज़रूरत नहीं। योरप की रमणियाँ स्वयं उस मार्ग की ओर जाने लगी हैं।"

कुसुमलता ने मृदु मुस्कान-सहित कहा—"लेकिन यहाँ इतनी स्वतंत्रता मिलना मुश्किल ही नहीं, बल्कि असंभव है। भारत की स्त्रियों में केवल हज़ार पीछे एक या उससे भी कम शिक्षित हैं, फिर आप इस प्रकार के सुधार की कैसे आशा करती हैं?"

मिस ट्रैवीलियन ने बड़े ही शांत स्वर में कहा—"संसार के इतिहास में विद्रोहाग्नि सदैव मुट्ठी-भर आदमियों से सुलगी है। विद्रोह की चिनगारी जलाने के लिये एक समूचे राष्ट्र की आवश्यकता नहीं पड़ती।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"लेकिन देश उस आग को पकड़ने

के लिये तैयार होता है, इसलिये विद्रोहाग्नि जल्दी सुलग जाती है, और जहाँ देश तैयार नहीं होता, वहाँ देश का अंधकार उसी क्षण प्रकाश को अपने उदर में छिपा लेता है।"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्तर दिया—"यही तो हमारा प्रयत्न है, और हमारा ध्येय है। हम देश में वह अशांति पैदा करें, वैसी परिस्थिति पैदा कर दें, जिसमें विद्रोह की चिनगारी अपनी क्षीण ज्योति से शांत न हो जाय, बल्कि एक ज्वलंत तेज से पेट्रोल की भाँति जल उठे।"

कुसुमलता ने गंभीर होकर कहा—"यह आशा इस देश में दुराशा है।"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्तर दिया—"दुराशा मानने के लिये मैं तयार नहीं हूँ। हमें इतना हतोत्साह नहीं होना चाहिए। हाँ, यह कहा जा सकता है, और शायद ठीक है कि इस देश की शिक्षित स्त्रियों में नैतिक बल नहीं। वे अपनी परिस्थितियों से लड़ना नहीं जानतीं, और न उनमें इतना साहस है कि वे अपनी शत्रु-जाति से बराबर लोहा लें। सचमुच भारतीय नारियों में विद्रोह की अग्नि कभी सुलगती ही नहीं। उन्हें ग़ुलामी से इतना प्रेम है कि वे उसे त्यागना नहीं चाहतीं। जब तक वे अपनी पुरानी आदतें न छोड़ेंगी, तब तक सचमुच इस देश का कल्याण नहीं। मेरी प्यारी, तुम मुझे क्षमा करना, मिसाल के लिये मैं तुम्हें ही लेती हूँ। तुममें इतना साहस नहीं कि तुम अपनी परिस्थितियों से लड़ सको, हालाँकि तुम शिक्षित हो, संपन्न हो, शक्तिशालिनी हो। तुम्हारे पिता लखनऊ-चीफ़कोर्ट के जस्टिस हैं। सर का ख़िताब धारण करनेवाले हैं। दो बार योरप घूम आए हैं, अब तीसरी बार जाने का इरादा करते हैं। तुम लखनऊ-विश्वविद्यालय की सबसे उत्कृष्ट छात्रा हो, तुम्हें पश्चिम के सबसे उज्ज्वल रत्नों से साक्षात् ही नहीं,

उनका अंतरंग सम्मिलन प्राप्त है, योरपियन सभ्यता के 'टच' में इतनी हो कि तुम्हें अपने अधिकार मालूम हैं, किंतु क्या तुम उन अधिकारों के लिये लड़ना चाहती हो ? मैं तो यही कहूँगी कि तुममें साहस नहीं। स्वतंत्र वायु-मंडल में रहकर भी अपनी परिस्थितियों की इतनी ग़ुलाम हो गई हो कि तुम उठ नहीं सकतीं—उठते-उठते गिर पड़ती हो। तुम्हें समाज के विरुद्ध उठना चाहिए—इस दासता के बंधन को काटना चाहिए।"

"नहीं, ऐसा करना जीवन का हिमालियन ब्लंडर होगा।" कहते हुए मनोरमा ने राजेंद्रप्रसाद के साथ कमरे में प्रवेश किया।

कुसुमलता चकित होकर विस्फारित नेत्रों से देखने लगी। जिस प्रकार वेग से जाता हुआ रेल का कोई एंजिन पुल पर से गिर पड़ता है, और उसकी मशीनरी क्षण-मात्र चलकर शांत हो जाती है, उसी प्रकार मिस ट्रैवीलियन बोलती-बोलती रुक गईं। वह शंकित नेत्रों से मनोरमा को देखने लगीं, और फिर राजेंद्रप्रसाद को।

राजेंद्रप्रसाद ने अपना हैट उतारकर मिस ट्रैवीलियन को अभिवादन किया, और फिर कुसुमलता को। कुसुमलता इस प्रकार स्थिर दृष्टि से उनकी ओर देख रही थी, जैसे किसी अजगर को वह हरिणी शंकित, किंतु विमुग्ध नेत्रों से देखती है, जो किसी माया-जाल के वशीभूत हो अपनी चेतना खो देती है। नमस्कार का उत्तर एक छिपी आह और वेदना की मधुर, निःशब्द झंकार से मिला।

जो दशा पुत्र के अंतरंग-केलि-गृह में वृद्ध पिता के आने से उस पुत्र की होती है, वही राजेंद्र और मनोरमा के आने से कुसुमलता की हुई। और, जैसी चाटुकार तथा नीच मित्र की होती है, वैसी मिस ट्रैवीलियन की हुई।

राजेंद्र ने हँसते हुए कहा—"क्षमा कीजिएगा, हम लोग छिपकर

सुननेवाले नहीं हैं । मिस ट्रैवीलियन का स्वर आवेग में, कुछ ऊँचा हो गया था, इसलिये हमें उनके अंतिम शब्द सुनाई पड़े ।"

कुसुमलता कटकर लाल हो गई । मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"हाँ, मैं अपनी स्थिति बिलकुल भूल गई थी । आप तो शिक्षित युवक हैं । आप अपनी स्त्री-जाति की दशा सुधारने के लिये उत्सुक होंगे ही । मैं यह कह रही थी कि हिंदू-जाति में नारियाँ ग़ुलामी की ज़ंजीरों से इतनी बँधी हुई हैं, और इतनी विमुग्ध हैं कि उनके हाथ खुले हुए हैं । लेकिन वे उनको खोलना कौन कहे, हटाना नहीं चाहतीं, यहाँ तक कि छूना नहीं चाहतीं ।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"मैं आपसे पूर्ण सहमत हूँ । हमारी नारी-जाति में आत्मसम्मान नहीं । हिंदू-जाति संसार की कोढ़-रूप है । उसने संसार की रूप-रेखा को दुर्गंधित कर रक्खा है ।"

मिस ट्रैवीलियन ने उछलकर कहा—"सत्य है, नितांत सत्य है ।"

मनोरमा हटकर एक श्रृंगारदान की ओट में चली गई । सिर नत कर एक ड्राअर खोलते हुए कहा—"संभव है, परंतु यह पूर्ण सत्य नहीं है—आंशिक सत्य अवश्य है । परंतु उसका प्रतिकार हम जिन उपायों से चाहते हैं, वह 'शूगर कोटेड' (शंकर-लिपटी) विष की गोलियाँ हैं, जो खाने में तो मीठी हैं, लेकिन जिनका असर मृत्यु है । भारतीय सभ्यता मानव-जाति की, ज्ञात ब्रह्मांड की सबसे अद्भुत ज्योति-रूप है, जिससे एक नहीं, असंख्य कोढ़ साफ़ हो जाते हैं । ईश्वर के आशीर्वाद का अद्भुत भांडार है ।"

मिस ट्रैवीलियन हिंदू-समाज के उद्धार का बीड़ा उठा चुकी थीं । उन्होंने एक व्यंग्य-स्वर में कहा—"यह ग़ुलामी की प्रतिध्वनि है ।"

"ग़ुलामी की प्रतिध्वनि या ईश्वर का संदेश ।" मनोरमा ने शांत स्वर में उत्तर दिया—"ऐसे भी मनुष्य मिलेंगे, जो अमृत को विष भी कह देंगे, किंतु अमृत अमृत ही रहता है । हमें हमारे

उद्धार के लिये पश्चिमीय सभ्यता के उदाहरण न चाहिए। हमें चाहिए शुद्ध वैदिक सभ्यता, जिसका सबसे मनोरम रूप सीता में प्रकट हुआ है, सती में चमका है। समाज समय के अधीन है। समय बदलता है। समाज का संस्कार कर दो। यह नहीं कि हम उमंग में समुद्र में गिरकर पानी की क़ब्र बनाएँ, बल्कि प्राचीन ज्योति में जो अंतर आ गया है, उसको अपने त्याग का तेल देकर तेजोन्मय कर दें। हममें रिनाएसांस (Renaissance) अथवा जागृति की भावना प्रकट हो, परंतु वह यह कहे—Back to the Hindu culture (हिंदू-सभ्यता की ओर अतीत में जाओ)-"

मिस ट्रेवीलियन ने किंचित् तेज़ी से कहा—"तभी तो हिंदू-जाति रसातल को जा रही है।" कंठ-स्वर व्यंग्य-पूर्ण होने लगा।

मनोरमा ने शांत स्वर में कहा—"हाँ, उनके लिये, जो उसका नाश चाहते हैं! सृष्टि का आदि धर्म हिंदू-धर्म था, और अंत धर्म हिंदू-धर्म होगा। यह इतना विशद है कि संसार के सब धर्म इसकी शाखा-मात्र हैं। कोई भी सभ्यता इसकी सभ्यता का एक अपूर्ण रूप है। और, सभ्यता की चरम सीमा के विकास का नाम है धर्म। ईसाई, बौद्ध, इस्लाम, जैन, पारसी, सब धर्म हिंदू-धर्म के अद्भुत कलेवर हैं, किंतु उनकी आत्मा—उनका प्रकाश हिंदू-धर्म में निहित उसके सत्य निष्कर्ष हैं।"

मिस ट्रेवीलियन ने एक व्यंग्य की हँसी से सबको चौंकाते हुए कहा—"जो देश अपने मुर्दों का गुण-गान करता है, वह पतितावस्था में होता है। 'घर में टोटा जानिए, जब करे पाछिली बात।'"

मनोरमा ने उसी तरह शांत स्वर में कहा—"परंतु जिस जाति को मिटाना चाहते हो, उसका इतिहास नष्ट कर दो, वह स्वयं नष्ट हो जायगी। हमारी गौरांग जाति ने क्या किया है? हमारा इतिहास नष्ट कर दिया। हमें आदिम जंगली कहकर हमारा उपहास करते हैं।

रामायण और महाभारत को केवल कपोल-कल्पना, कवि की उड़ान कहकर जीवित दफ़ना देना चाहते हैं। हमारे पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र, दर्शन, वेदांत, रीति-रिवाज, दंड-संग्रह, नीति-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, शासन-शास्त्र, सब सभ्यता के जीवित उदाहरण हैं। उन्हें शराबी की बहक कहकर जड़-मूल से उड़ा दिया है। हमारी भाषा को संसार की मृत भाषाओं की श्रेणी में रक्खा है, और हमारे बालकों के हृदय में यह भाव पैदा करते हैं कि तुम उस वक्त तक सभ्य नहीं हो सकते, जब तक इँगलैंड की भाषा, चलन, रीति-रिवाज, सभ्यता की नक़ल हूबहू न कर लोगे। यह क्या है? क्या यह मीठी छुरी हमारी जातीयता का गला नहीं काटती? कुछ ऐसे ही लोग सभ्य बनाने का चोग़ा पहनकर हमारे जातीय जीवन को नष्ट कर अपना-जैसा कलुषित बनाना चाहते हैं।"

कुसुमलता ने भय-विह्वल दृष्टि से मनोरमा की ओर देखा। मिस ट्रवीलियन उत्तेजित हो गईं। उन्होंने कहा—"श्रीमतीजी, आप भूल करती हैं। हिंदू-जाति के कुछ अंग गलित कुष्ठ-से घिनावने हो उठे हैं, उन्हें काटकर फेंक देने से ही उसका कल्याण है। मुझे आश्चर्य है कि आइसाबेल-कॉलेज की सबसे उत्कृष्ट छात्रा होकर भी आप इतने दक़ियानूसी ख़याल की हैं।"

मनोरमा ने अपने सहज-मधुर स्वर से कहा—"मिस साहबा, आपका विस्मित होना अवश्य ही सत्य है! क्योंकि यद्यपि मैंने पश्चिमीय आदर्शों पर शिक्षा पाई है, किंतु दूसरों की तरह अपनी जातीयता नहीं खो दी है। मुझमें अपनी जाति का अभिमान है, और यह अभिमान है कि हमारी समाज, हमारा धर्म ईश्वर का ज्ञान-रूप है। मैं सभ्यता पहचानती हूँ। मुझे उसमें जन्म लेने का गौरव है, गर्व है, और अभिमान है। हमें अपने उठने के लिये अपना ही बल चाहिए, किसी अन्य विदेशी बल की आवश्यकता नहीं।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"तो हम लोग किसी के गले पड़कर उपहासास्पद भी होना नहीं चाहतीं।"

मनोरमा ने सिर झुकाकर कहा—"धन्यवाद।"

कुसुमलता ने उठकर मनोरमा के पास जाकर कुछ आहत स्वर में कहा—"मन्नी, बैठ तो जाओ। खड़े-खड़े कब तक व्यर्थ का वाद-विवाद करोगी। कहो, आज का फ़िल्म कैसा था? तुमने जाने के पहले मुझे नहीं बतलाया। आजकल तुममें कितना स्वार्थ आ गया है! पहले तो तुम ऐसी नहीं थीं।"

मनोरमा ने कुछ लज्जित होकर कहा—"सखी, मुझे क्षमा करो। आज हम लोगों के जाने का बिलकुल ही इरादा न था। मैं शाम को अम्मा के साथ हज़रतगंज मानिकशाह की दुकान गई थी, क्योंकि तुम्हारे-जैसा ब्रूच का ऑर्डर अम्मा ने दिया है। उधर से बाबूजी घूमते हुए उनके साथ आ गए। और, बाबूजी के कहने पर हम सब लोग 'प्रिंस ऑफ़् वेल्स' चले गए। बाबूजी और अम्मा तो घर चले गए, और हम लोग तुमसे क्षमा माँगने आ गए। आते वक्त अकस्मात् मिस साहबा के उपदेश के कुछ शब्द सुनने में आए, जिनसे इतना विवाद उत्पन्न हुआ। मेरी प्यारी सखी, तुम मेरा अपराध क्षमा करना। बहुत मुमकिन है तुम्हारे मन को कष्ट पहुँचा हो।"

कुसुमलता ने उसी तरह धीमे स्वर में, कंपित कंठ से कहा—"विधवा का जीवन कष्ट सहने के लिये ही है।" फिर मुस्कान के साथ कहा—"हाँ, कष्ट इससे ज़रूर हुआ कि तुमने भी अब भेद रखना आरंभ कर दिया है।"

दोनो सखियाँ हँसने लगीं।

उधर मिस ट्रैवीलियन ने राजेंद्रप्रसाद से कहा—"मिस्टर वर्मा, आपका विचार तो हमारे प्रति सहानुभूतिमय है। मिसेज़ वर्मा के विचार भ्रांतिमय हैं।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"हाँ, हो सकता है। यह हमारी कमज़ोरी है।"

मिस ट्रैवीलियन ने उठते हुए कहा—"अब तो आज्ञा दीजिए।"

मिस ट्रैवीलियन उठकर खड़ी हो गईं। राजेंद्रप्रसाद ने उठकर कहा—"अगर आपको कुछ कष्ट पहुँचा हो, तो उसे क्षमा कीजिएगा।"

मिस ट्रैवीलियन के उत्तर देने के पहले ही मनोरमा ने भी अग्रसर होते हुए कहा—"हाँ, मिस साहबा, मेरी शोख़ी, गुस्ताख़ी माफ़ फ़रमाएँगी। वाद-विवाद में कभी-कभी अप्रिय सत्य कह दिए जाते हैं, क्योंकि वह मनुष्य का उत्तेजित रूप है, और उत्तेजना मस्तिष्क में एक बवंडर पैदा करती है, जिसमें फ़ारमैलिटी अथवा सदाचार पतले रबर के गेंद की तरह मारा-मारा फिरता है। इसलिये आप मेरे अपराध क्षमा करेंगी।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक शुष्क मुस्कान से कहा—"हाँ, सत्य है। Psychology (मनोविज्ञान) के नियमों से आप उसी भाँति परिचित हैं, जैसे अपने धर्म से। आपको बधाई है!"

यह कहकर हँसती हुई मिस ट्रैवीलियन कमरे से बाहर हो गईं। एक शांति क्षण-भर के लिये उस कमरे में छा गई।

---

(३)

प्रातःकाल की स्वर्ण-मयूखें संसार को सुनहला परिधान पहना रही और मिस ट्रैवीलियन के चिंतित मुख को किंचित् मलीन बना रही थीं। मनोरमा का आत्माभिमान और जातीय गौरव उनके हृदय को उत्पीड़ित कर रहा था। उसके शब्द अभी तक कान में गुंजरित हो रहे थे कि "हम विदेशियों की सहायता नहीं चाहते।" यह मिस ट्रैवीलियन के प्रति अविश्वास प्रकट करने का संकेत था—नहीं, खुला प्रहार था। जिस प्रकार कोई सैनिक अपने प्रतिद्वंद्वी से हारकर बाद में उत्तेजित होता है, उसी तरह मिस ट्रैवीलियन उत्तेजित थीं। खानसामिन नसीबन ने आकर पूछा—"मिस साहब, चाय लाऊँ ?"

मिस ट्रैवीलियन ने कोई उत्तर नहीं दिया। नसीबन ने समझा कि शायद सुना नहीं, इसलिये फिर पूछा—"मिस साहब, क्या चाय लाऊँ ?"

मिस ट्रैवीलियन अपने शृंगारदान के सामने बैठी थीं। दर्पण पर नसीबन की छाया पड़ रही थी, लेकिन उसे नसीबन देख नहीं सकती थी। नसीबन ने अपने अभ्यस्त तरीक़े पर मुँह बनाया, जैसा अक्सर नौकर स्वामी के पीठ-पीछे बनाया करते हैं। यह मुँह बनाना उनके हृदय का भाव व्यक्त करता है, जो उनके स्वामी के प्रति होता है।

नसीबन ने भी मुँह बनाया। उसका प्रतिबिंब दर्पण पर पड़ा। मिस ट्रैवीलियन ने देखा। जलती हुई अग्नि में पेट्रोल पड़ गया। तड़ित्वेग से वह पीछे घूमीं, और बाल साफ़ करने का ब्रुश नसीबन

के कपाल पर मारा। नसीबन हाय कर उसी क्षण पृथ्वी पर बैठ गई। मिस ट्रैवीलियन को अपना क्रोध निकालने का मौक़ा मिला। मानसिक तड़पन बहुत ही दुःखदायी होती है। जिस प्रकार पिंजरे में आबद्ध शेरनी तड़पड़ाया करती है, और अगर पिंजरा टूट जाय, तो उस मनुष्य का खून चूस लेती है, जो उसके मार्ग में पहलेपहल पड़ता है, चाहे भले ही वह उसे क़ैद करनेवाला न रहा हो, ठीक उसी प्रकार मिस ट्रैवीलियन का हाल था। नसीबन का अपराध यद्यपि बहुत कम था, और शायद अन्य अवसर पर यह बिलकुल क्षम्य था, परंतु आज वह उस देश की प्रतिनिधि थी, जिस देश की स्त्री मनोरमा ने उसे अपमानित और लांछित किया था। उन्होंने नसीबन की 'हाय' का ख़याल नहीं किया, और दूसरे ही क्षण उठकर भूखी शेरनी की तरह उस पर टूट पड़ीं। नसीबन चिल्लाने लगी, और मिस ट्रैवीलियन अपने हाथ-पैर बेतहाशा चलाने लगीं। देखते-देखते बँगले के सब नौकर इकट्ठे हो गए। लेकिन किसी में इतना साहस न था कि आकर हस्तक्षेप करे।

इसी समय उस भीड़ को हटाते हुए राजा प्रकाशेंद्रसिंह ने मिस ट्रैवीलियन को पकड़ते हुए कहा—"यह क्या, आज इतना गुस्सा क्यों? ठहरिए, शांत होइए। अभागी नसीबन मर जायगी, फिर आपको ऐसा नौकर नहीं मिलेगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने हाँफते हुए कहा—"आप मेरे सामने से कृपा करके हट जाइए। मैं इसे मुँह चिढ़ाने का मज़ा चखा दूँगी। स्वाइन, बगर, हिंदुस्तानी कुतिया, मुँह बनाकर मेरा विद्रूप करती है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने दूसरे नौकरों से कहा—"नसीबन को यहाँ से ले जाओ।" वे उस अभागिनी को उठाकर ले गए।

मिस ट्रैवीलियन ने सोफ़ा पर बैठते हुए कहा—"तुम्हें मेरे

शृंगार के कमरे में किसने आने की इजाज़त दी?" मिस ट्रीवीलियन के स्वर में उत्तेजना थी।

राजा प्रकाशेंद्र ने मुस्किराते हुए, प्रेम के साथ उसके कपोलों को छूते हुए, कहा—"इसने! पुष्प किसी को निमंत्रण नहीं देता, भौंरा ढूँढ़ता हुआ स्वयं आ जाता है। सौंदर्य ईश्वर का मनोरम आशीर्वाद है—वह एक आकर्षण है, जो स्वयं सबको अपनी ओर खींच लेता है। अगर संसार में कोई अपराधी है, तो वास्तव में वह, जो सुंदर है। अतएव अगर मैंने यहाँ आपके शृंगार-कक्ष में आने का अपराध किया है, तो इसका दंड आप अपने को दीजिए।"

यह कहकर राजा प्रकाशेंद्र हँसने लगे। मिस ट्रीवीलियन का क्रोध दूर हो गया, और उनकी सहज मधुरिमा वापस आ गई। पानी और तूफ़ान के बाद ही जैसे वायुमंडल नीरव-निस्तब्ध हो जाता है, उसी प्रकार मिस ट्रीवीलियन की भी स्थिरता सहज भाव से प्रस्फुटित होकर विकसित हो गई।

राजा प्रकाशेंद्र ने एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"सच कहना, तुम आज इतनी गुस्सा क्यों थीं?" राजा प्रकाशेंद्र के स्वर में कंपन था, और घनिष्ठता का आभास।

मिस ट्रीवीलियन ने अपना मुख फिराकर एक मोहन कटाक्ष करके कहा—"अगर न बतलाऊँ, तो......"

राजा प्रकाशेंद्र ने अधीर होकर कहा—"नहीं, तुम्हें बतलाना होगा।"

यह कहते हुए वह द्वार के पास चले गए, और रेशमी परदा घसीटते हुए कहा—"तुम अपने रौद्र रूप में भी विश्व की सबसे अनुपम सुंदरी देख पड़ती हो।"

मिस ट्रीवीलियन ने एक भुवन-मोहन कटाक्ष से राजा प्रकाशेंद्र की ओर देखा। यौवन के तीर उन्हें बिद्ध करने लगे।

राजा प्रकाशेंद्र ने छटपटाकर कहा—"वायलेट, तुम मेरे जीवन की सम्राज्ञी हो।"

मिस ट्रैवीलियन का पूरा नाम वायलेट एलिनर ट्रैवीलियन था।

वायलेट ने उठकर शृंगारदान के शीशे के सामने खड़े होकर कहा—"तुम्हें ख़ुशामद करना बहुत आता है। बस, ज़बानी प्रेम के गीत गाना जानते हो।"

राजा प्रकाशेंद्र ने अधीर होकर कहा—"तुम्हारा यह आक्षेप ठीक नहीं, बिलकुल निराधार है।"

मिस ट्रैवीलियन ने अँगड़ाई लेते हुए कहा—"तुमने अपनी प्रतिज्ञा कहाँ पूर्ण की? तुमने पिछले सोमवार को कहा था कि मैं......"

इसी समय बाहर से परिचारिका ने कहा—"मिस साहबा, चाय तैयार है। हुक्म हो, तो लाऊँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने भ्रूकुंचित करके कहा—'अच्छा, ले आ।"

कहते ही रेशम का परदा हटा, और ख़ानसामा ने मेज़ पर चाय की ट्रे लाकर रख दी। मिस ट्रैवीलियन ने एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"बैठिए राजा साहब, चाय पीजिए।"

राजा प्रकाशेंद्र ने बैठते हुए कहा—"मैं तो चाय पीकर आया हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने भ्रूकुंचित कर कहा—"तो क्या एक कप में कुछ नशा ज़्यादा हो जायगा?"

राजा प्रकाशेंद्र ने सहास्य उत्तर दिया—"नशा अभी कौन कम है। अच्छा, अगर आपकी इच्छा है, तो एक कप पी लूँगा।"

ख़ानसामा ने दो कप में चाय उँडेल दी, और कमरे से बाहर हो गया।

राजा प्रकाशेंद्र ने डबल रोटी के टुकड़े पर मक्खन लगाते हुए कहा—"यह मक्खन तुमसे अधिक मुलायम नहीं है।"

मिस ट्रै वीलियन ने तुरंत उत्तर दिया—"लेकिन तुम चाय से अधिक गरम हो।"

राजा प्रकाशेंद्र ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया—"तुम्हारा रूप देखकर यह गरमी दूर हो जाती है।"

मिस ट्रै वीलियन ने एक वंकिम कटाक्ष-सहित कहा—"ठीक उस तरह कि जब लोग वादा करके भूल जाते हैं।"

राजा प्रकाशेंद्र उठकर मिस ट्रै वीलियन के पीछे, कुरसी के पास, खड़े हो गए। मिस ट्रै वीलियन ने मुड़कर, उनकी ओर देखकर कहा—"क्यों, पीछे कैसे खड़े हो गए! चाय पिओ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"मुझे रूप - माधुरी - पान करने दो।"

मिस ट्रै वीलियन चाय पीने लगीं। इधर राजा प्रकाशेंद्र ने एक हीरों का हार अपनी शेरवानी की जेब से निकाला, और मिस ट्रै वी-लियन के गले में पहना दिया। मिस ट्रै वीलियन चौंक पड़ीं, और टोस्ट ज़मीन पर गिर पड़ा। वह उठ खड़ी हुईं, और पीछे से राजा प्रकाशेंद्र ने उनके मुख पर एक प्रेम-चिह्न अंकित कर दिया।

सूर्य की किरणें हीरों के टुकड़ों पर पड़कर अपना प्रतिबिंब मिस ट्रै वीलियन के उज्ज्वल मुख पर डालने लगीं। एक मनोहर मुस्कान से हँसकर उनकी दंत-पंक्ति उन पत्थर के टुकड़ों से होड़ करने लगी।

मिस ट्रै वीलियन ने उस चुंबन का उत्तर अपने चुंबन से देकर कहा—"Oh, you naughty boy! तुमने अभी तक क्यों नहीं बतलाया? तुम्हें तंग करना बहुत आता है।"

उनका चेहरा आनंद से प्रफुल्लित हो गया। आभूषण रमणी का प्राण-प्रिय साथी है, और प्रेमियों का मोहन-मंत्र।

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसते हुए कहा—"तुम्हें तंग करने में ही मज़ा आता है।"

मिस ट्रॅवीलियन ने अपने दोनों हाथों से राजा प्रकाशेंद्र को पकड़कर, सप्रेम एक सोफ़ा पर बिठाते हुए कहा—"तभी तो मैं कहती हूँ कि तुम जादू-भरे हो। मैंने भी अगर किसी को प्यार किया है, तो तुम्हीं को। तुम्हारे लिये मैं बदनाम भी हुई, लेकिन ।"

इसी समय बाहर से ख़ानसामा ने पुकारा—"मिस साहबा, क्या ट्रे वापस ले जाऊँ ?"

मिस ट्रॅवीलियन ने प्रकाशेंद्र की ओर देखकर कहा—"न तुमने चाय पी, और न पीने दी।"

फिर ख़ानसामा से कहा—"ले जाओ।"

ख़ानसामा निःशब्द कमरे के अंदर आया, और चाय की ट्रे वापस ले गया।

राजा प्रकाशेंद्र ने मिस ट्रॅवीलियन का हाथ पकड़, उसे दबाते हुए कहा—"क्यों, यह तो कहो, तुम इतनी आज ग़ुस्सा क्यों थीं ? इसका कोई अवश्य गुप्त कारण है। तुम सहज में इस प्रकार रुष्ट होनेवाली नहीं हो।"

मिस ट्रॅवीलियन ने एक मोहन कटाक्ष से राजा प्रकाशेंद्र की ओर देखा—"जाओ, मैं नहीं बताती।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उसे अपनी ओर सप्रेम घसीटते हुए कहा—"क्यों न बतलाओगी। क्या वह इतना गुप्त है ?"

मिस ट्रॅवीलियन ने अपना शरीर ढीला करते हुए, एक शैतानी-भरी मुस्कान से कहा—"हाँ, वह इतना गुप्त है !"

राजा प्रकाशेंद्र ने उसे अपने वक्ष पर लिटाते हुए कहा—"लेकिन तुम्हारी कोई भी बात मुझसे गुप्त नहीं।"

मिस ट्रॅवीलियन ने उनके वक्ष पर लेटे हुए, उनकी ओर आँखें

उठाकर देखते हुए कहा—"यह जानते हो, रमणी का हृदय समुद्र से भी अधिक गंभीर है। उसकी थाह लेना पुरुष के बस की बात नहीं।"

राजा प्रकाशेंद्र ने सप्रेम उसके सिर को सूँघते हुए कहा—"यह सत्य है, परंतु सरल भी इतना है कि उसके हृदय में बात पच भी नहीं सकती।"

दोनो हँस पड़े, और आलिंगन में आबद्ध हो गए।

मिस ट्रूवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"मैं कह चुकी, तुम जादू-भरे हो। मैं सत्य ही उसे गुप्त नहीं रख सकती, लेकिन कोई विशेष बात नहीं। कल शाम को मैं जस्टिस रामप्रसाद के बँगले चली गई। कुसुमलता को तुम जानते ही हो, वह बाल-विधवा है। मैं उसे अपने गुप्त दल में मिलाना चाहती हूँ, क्योंकि उसके द्वारा गहरी रक़म हाथ लग सकती है। तुम्हारे-जैसे ताल्लुक़ेदार उस पुष्प का मधु-पान करने के लिये हज़ारों रुपए दे सकते हैं।" यह कहकर मिस ट्रूवीलियन हँसने लगीं। राजा प्रकाशेंद्र ने भी योग दिया।

मिस ट्रूवीलियन कहने लगीं—"मैं उसे लोभ दे रही थी, और विधवा-जीवन तथा हिंदू-समाज की आलोचना कर रही थी। उसी समय सहसा वह दूसरी छोकरी—मि० राधारमण की लड़की मनोरमा, जिसे इसी वर्ष सौंदर्य-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिला है—अपने बंदर के साथ आ गई।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर पूछा—"बंदर कौन ?"

मिस ट्रूवीलियन ने मुस्किराते हुए कहा—"उसका बंदर तुमने नहीं देखा ? अभी उस दिन तो तुम्हारा परिचय करवाया था। क्या नाम है, राजेंद्रप्रसाद या बंदरप्रसाद।"

राजा प्रकाशेंद्र हँस पड़े, और मिस ट्रूवीलियन भी हँस पड़ीं।

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसते हुए कहा—"बहुत ठीक नाम है, सचमुच वह बंदर ही-जैसा है, और मनोरमा के सामने तो वह पाला हुआ बनमानुष मालूम पड़ता है।"

मिस ट्रू वीलियन और राजा प्रकाशेंद्र की हँसी से कमरा प्रतिध्वनित हो गया।

राजा प्रकाशेंद्र ने मुश्किल से अपनी हँसी बंद कर कहा—"जी में आता है कि तुम्हारी इस डिस्कवरी (अन्वेषण) पर तुम्हें रुपयों से तौल दूँ।"

मिस ट्रू वीलियन ने हँसी बंद कर कहा—"धन्यवाद! तो मुझे तुम कब तौलोगे?"

राजा प्रकाशेंद्र ने उसके कपोल पर एक गरम प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"जब कहो, दो-तीन हज़ार रुपए क्या, कहो, तो तुम्हारे लिये अपना सारा राज न्योछावर कर दूँ।"

मिस ट्रू वीलियन ने मुस्किराकर कहा—"जाओ, फ़िज़ूल बातें न बनाओ। यह हीरे का हार तो आज-कल, आज-कल करते छ महीने में लाकर दिया है। भला जागीर क्या दोगे।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"हार मायावती का है, उससे लेना बहुत मुश्किल था। आज तो यह अनायास मेरे हाथ लग गया, इसलिये लाकर तुम्हें दे दिया है। अब इसे तुड़वाकर दूसरे फ़ैशन में बनवा लेना, जिसमें माया इसे पहचान न सके।"

राजा प्रकाशेंद्र की रानी का नाम मायावती था।

मिस ट्रू वीलियन ने भ्रू-कुंचित करके कहा—"तो तुम यह हार चोरी करके लाए हो! क्या मुझे पकड़ाना चाहते हो? और क्या रानी मायावती के सामने तुमने मुझे आपद्ग्रस्त करना विचारा है?"

यह कहते हुए मिस ट्रू विलियन ने अपने गले से हार निकालने का

उद्योग किया, किंतु राजा प्रकाशेंद्र ने उसका हाथ रोकते हुए कहा—"नहीं, तुम मत घबराओ, रानी के पास दूसरा हार है। यह मेरी मा का है, लेकिन उस सेफ़ की चाभी, जहाँ यह रक्खा था, रानी के पास थी, और रानी उसे अपने पास से अलाहिदा नहीं करतीं। इसलिये ज़रा देर में हाथ लगा।"

मिस ट्रूवीलियन ने किंचित् तीव्र स्वर से कहा—"लेकिन है तो चोरी की वस्तु। मैं पकड़ी जा सकती हूँ, और मेरी इज़्ज़त बरबाद हो सकती है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तर दिया—"नहीं। लो, मैं दाम वसूल पाने की रसीद लिख देता हूँ, फिर तो भय नहीं है।"

मिस ट्रूवीलियन ने कुछ नम्र होकर कहा—"हाँ, तब तो ठीक है। रसीद कर दोगे, तो ले लूँगी।"

राजा प्रकाशेंद्र ने एक उपालंभ-भरी दृष्टि से कहा—"तुम मुझे इतना नीच समझती हो।"

मिस ट्रूवीलियन ने हँसते हुए कहा—"बस, इतने में ही हार गए। अभी तो तुम कहते थे कि रमणी का हृदय बड़ा सरल है, फिर सरलता के चक्कर में कैसे पड़ गए!"

यह कहकर मिस ट्रूवीलियन हँस पड़ीं। राजा प्रकाशेंद्र के हृदय का मैल बह गया।

उन्होंने कहा—"अच्छा, वह किस्सा तो बयान करो। हम लोग बंदर के फेर में न-मालूम कहाँ बह गए!"

मिस ट्रूवीलियन कहने लगीं—"हाँ, वह बंदर आ गया, और साथ में वह छोकरी भी थी। छोकरी ने तो आते ही मुझे गालियाँ—शरीफ़ों की गालियाँ सुनानी शुरू कर दीं, और लगी अपनी कृदा समाज की डींग हाँकने। आख़िर में खुलासा, मेरे ऊपर हमला किया। मैं उस वक्त, ख़ून का घूँट पीकर रह गई। जी में तो यही आया कि दो-चार

तमाचे मारकर मुँह सीधा कर दूँ, लेकिन कुछ सोचकर रह गई।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कुछ सोचते हुए कहा—"हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"हाँ, बड़ी अस्मत की पुतली बनती है। मैंने भी प्रतिज्ञा की है कि इसका अभिमान ख़ाक में मिलाकर छोड़ूँगी, चाहे जो कुछ हो।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह मौन कुछ सोचने लगे।

इसी समय एक मोटर मिस ट्रैवीलियन के 'पोर्टिको' में आकर खड़ी हो गई। वह राजा प्रकाशेंद्र की थी, जो उन्हें लेने आई थी। मोटर की आवाज़ सुनकर राजा प्रकाशेंद्र ने उठते हुए कहा—"अच्छा, तो मैं अब चलता हूँ। ज़रा डॉक्टर आनंदीप्रसाद के यहाँ जाऊँगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए कहा—"कौन, वह पागल फ़िलॉसफ़र?"

राजा प्रकाशेंद्र ने अपनी टोपी पहनते हुए कहा—"हाँ, वही।"

यह कहकर वह कमरे के बाहर हो गए, और मिस ट्रैवीलियन दर्पण के सामने जाकर निरखने लगीं—अपना सौंदर्य या हीरों का हार?"

रूपगढ़-हाउस गोमती-नदी के किनारे एक उच्च अट्टालिका है, जिसका प्रतिबिंब गोमती के इस पार से उस पार तक पड़ता है। जब सूर्यदेव पश्चिम दिशा में अपना मुख छिपाते हैं, उस समय रूपगढ़-हाउस की मधुरिमा देखने योग्य होती है। अट्टालिका के सामने एक बड़ा-सा पुष्पों का उद्यान लगा हुआ है, जिसमें संसार के दुर्लभ-से-दुर्लभ पुष्प मौजूद हैं, और राजा प्रकाशेंद्र को 'लखनऊ-फ्लावर-शो' में कई पुरस्कार और प्रशंसा-पत्र मिल चुके हैं। राजा प्रकाशेंद्र से अधिक रानी मायावती को इन पुष्पों से अनुराग था, और अपना बग़ीचा सजाने में वह सदैव दत्तचित्त रहतीं। उनके उद्यान का प्रबंध एक बहुत ही चतुर माली के अधिकार में था, जिसने अपने बाल पुष्पों को नवीन प्रकार से पैदा करने में ही सफ़ेद किए थे, हालाँकि वह बिलकुल निरक्षर भट्टाचार्य था, और किसी हिंदी-पाठशाला का मुख नहीं देखा था। रानी मायावती का वह बहुत प्रिय पात्र था, और जितनी ख़ातिर वह उसकी करती थीं, उतनी शायद ही किसी की होती हो।

रानी मायावती का विवाह आज से दस साल पहले हुआ था, जिस समय वह बाल्यकाल को समाप्त कर यौवन की सीमा में पग रख रही थीं। रानी मायावती के पिता बंगाल के नामी ज़मींदार राजा भूपेंद्रकिशोरबहादुर थे, जो वर्ष में ग्यारह महीने इँगलैंड में रहते थे। पिता के घर में रानी मायावती को पश्चिमीय आचार की शिक्षा भली भाँति मिल चुकी थी, परंतु स्वतंत्रता उतनी प्राप्त नहीं थी, क्योंकि उनकी माता रानी किशोरकेसरी हिंदू-धर्म का

जीवित रूप थीं। यद्यपि राजा भूपेंद्रकिशोर बहादुर ने कुमारी मायावती को पश्चिम के आदर्शों पर शिक्षित करना चाहा, और इस संबंध में बहुत कुछ किया भी, परंतु रानी किशोरकेसरी सदैव रोक-टोक करतीं, और हिंदू-धर्म का पवित्र रूप जीवित रखने के लिये ही उन्होंने कुमारी मायावती की तेरहवीं वर्ष-गाँठ समाप्त होते ही कुँअर प्रकाशेंद्र के साथ विवाह कर दिया। उस समय राजा भूपेंद्रकिशोर बहादुर विलायत में थे, और उन्हें यह समाचार उस वक़्त मालूम हुआ, जब विवाह समाप्त हो गया था, और कुमारी मायावती रूपगढ़ बिदा भी हो गई थी। इस विषय को लेकर पति-पत्नी में बहुत विवाद रहा, यहाँ तक कि राजा भूपेंद्रकिशोर बहादुर ने विलायत में ही रहना निश्चित किया, और ज़मींदारी का सारा इंतिज़ाम रानी किशोरकेसरी ने अपने हाथों में ले लिया। उस समय उनका पुत्र एवं एकमात्र उत्तराधिकारी नरेंद्रकिशोर केवल पाँच वर्ष का था, और उसे शिक्षित करने का भार रानी ने स्वयं लिया था।

राजा प्रकाशेंद्र के साथ मायावती का विवाह अनायास ही, ईश्वर की प्रेरणा से, हो गया था। राजा भूपेंद्रकिशोर विलायत-भ्रमण को निकले थे, और रानी किशोरकेसरी तीर्थाटन को। प्रयाग आकर वह महाराजा काशी की हवेली में उतरीं। एक दिन वह त्रिवेणी-स्नान को गई थीं। वहाँ छात्रों का एक दल भी आया हुआ था, जो उस मेले का प्रबंध कर रहा था। अचानक रानी किशोर-केसरी संगम की तेज़ धारा में पड़कर बहने लगीं। उसी समय कुँअर प्रकाशेंद्र ने उनकी रक्षा की। कुँअर प्रकाशेंद्र इस प्रकार काशी की हवेली में उनका स्वास्थ्य-समाचार पूछने के लिये आने-जाने लगे। बातों-ही-बातों में रानी किशोरकेसरी ने उनका वंश-परिचय पूछा। जब उन्हें विदित हुआ कि वह रूपगढ़ के उत्तराधिकारी हैं,

तो उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। कुँअर प्रकाशेंद्र उस समय यौवन की सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे, और उनके रूप की आभा चारो ओर बिखरी पड़ती थी। रानी किशोरकेसरी ने अपनी माया के लिये उन्हें सब प्रकार उपयुक्त समझा, यहाँ तक कि अपने दीवान को रूपगढ़ भेजकर, संबंध स्थिर करके, राजा भूपेंद्रकिशोर के लौट आने के पहले ही विवाह भी कर दिया। राजा रुद्रनारायणसिंह ने यह संबंध हाथ से जाने देना उचित न समझा, और अपनी सम्मति दे दी।

कुँअररानी मायावती अपने साथ यौतुक में लाखों रुपए का माल और साथ ही भुवन-मोहन सौंदर्य भी लाई थीं, जिसे देखकर कुँअर प्रकाशेंद्र का सारा परिवार मोहित हो गया। उनकी सास रानी किशोरकेसरी की भाँति पुरानी हिंदू-चाल की थीं, इस-लिये स्वतंत्र उद्यान का पुष्प महल की चहारदीवारी के अंदर बंद हो गया। कुँअर प्रकाशेंद्र विश्वविद्यालय में पढ़ते रहे।

मायावती को वह क़ैदी-जीवन बहुत दिनों तक नहीं व्यतीत करना पड़ा। जिस वर्ष कुँअर प्रकाशेंद्र ने एम्० ए० पास किया, उसी वर्ष उनके पिता राजा रुद्रनारायणसिंह का परलोकवास हुआ, और कुँअर प्रकाशेंद्र रूपगढ़ की गद्दी पर शोभित हुए। उनकी माता भी पति-वियोग सहन कर सकने में असमर्थ हुईं, और दूसरे ही वर्ष वह भी पति-मिलन के लिये देवलोक प्रस्थान कर गईं। राजा प्रकाशेंद्र का उच्छृंखल मन बहुत दिनों तक दुखी नहीं रहा। थोड़े ही दिनों में संसार के ऐश्वर्य ने माता-पिता के वियोग को सुख में परिणत कर दिया। रानी मायावती भी सास के नियंत्रण से मुक्त हुईं, और वास्तविक मुक्ति तो उस दिन उन्हें प्राप्त हुई, जिस दिन राजा प्रकाशेंद्र ने अपनी परंपरा की परदा-प्रथा को तोड़वाकर उन्हें सभ्य संसार के सामने खड़ा किया। बाल्यकाल

का अंकुरित बीज यथासमय जल-खाद पाकर उत्तरोत्तर बढ़ने लगा।

लखनऊ की उन्नति और उत्कर्ष ने राजा प्रकाशेंद्र को अपनी ओर आकर्षित किया, और उन्होंने रानी मायावती के अनुमोदन से उसे अपना स्थायी निवास-स्थान बनाना निश्चित किया। शाह-नजफ़ के आगे, गोमती के तट पर, दस एकड़ ज़मीन ली, और वहाँ एक उच्च कोटि की अट्टालिका बनवाई, जिसके समकक्ष लखनऊ में कोई दूसरा भवन न था। उसकी सजावट में ही लाखों रुपए ख़र्च हुए थे, और यह पहले ही कह चुके हैं कि उसका बग़ीचा एक अद्‌भुत पुष्प-भांडार था। जिस दिन गृह-प्रवेश हुआ था, रानी किशोरकेसरी भी निमंत्रित होकर आई थीं, और वह भवन देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई थीं।

राजा प्रकाशेंद्र अपने पूर्वजों का संचित कोष इस अट्टालिका के निर्माण में लगभग ख़ाली कर चुके थे, परंतु फिर भी उनका मन उसे सजाने से भरता न था। मिस ट्रैवीलियन का 'ड्रीमलैंड' यद्यपि एक अवलोकनीय भवन था, किंतु रूपगढ़-हाउस उससे कहीं उत्कृष्ट था।

रानी किशोरकेसरी ने लखनऊ आकर अपने पति राजा भूपेंद्र-किशोर बहादुर को उस अट्टालिका का सविस्तर हाल लिखा था, और यह विनय की थी कि अपनी माया का सौभाग्य आकर देख जायँ। राजा भूपेंद्रकिशोर ने पहले तो कोई उत्तर ही नहीं दिया, फिर माया और प्रकाश के अनुनय-विनय ने उनके अभिमान का नाश किया, तथा दूसरी बोट (जहाज़) से वह स्वदेश की ओर रवाना हो गए। माया और प्रकाशेंद्र उन्हें लेने के लिये बंबई गए। बंबई में ससुर-दामाद का परिचय हुआ। राजा भूपेंद्रकिशोर बहादुर की धारणा दूर हुई, और उनका क्षोभ, जिसे आज पाँच

वर्ष से संचित कर रहे थे, लड़की और दामाद का योरपियन वेष देखकर अंतर्हित हो गया। रानी किशोरकेसरी का अपराध उन्होंने क्षमा कर दिया। वास्तव में राजा प्रकाशेंद्र से बढ़कर जामातृ उन्हें नहीं मिल सकता था। वह प्रसन्न-मन दामाद के साथ लखनऊ आए, और जब उन्होंने रूपगढ़-हाउस का निरीक्षण किया, तो रानी किशोरकेसरी के प्रति जो कुछ क्रोध बचा था, वह भी दूर हो गया। रूपगढ़-हाउस वास्तव में एक दर्शनीय भवन था। उन्होंने अपने अनुभव से कुछ दोष निकाले, जिन्हें राजा प्रकाशेंद्र ने दुरुस्त करवा दिया। उस दिन उन्होंने मायावती के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

राजा प्रकाशेंद्र के उद्योग से पति-पत्नी का मनोमालिन्य दूर हो गया, और वह फिर प्रसन्न-चित्त बंगाल लौट गए। मायावती को अतिशय आनंद प्राप्त हुआ। वह भी अपने माता-पिता के साथ चली गईं। थोड़े दिनों पश्चात् रानी मायावती बहुत-सा धन लेकर वापस आईं, और दंपति सुख से अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

इन्हीं दिनों मिस ट्रैवीलियन 'इंडो-योरपियन वीमेंस-एसोसिएशन' स्थापित करने के उद्योग में थीं। एक भोज में मिस ट्रैवीलियन का परिचय राजा प्रकाशेंद्र और रानी मायावती से हुआ। मिस ट्रैवी-लियन के हृदय पर राजा प्रकाशेंद्र ने विशेष प्रकार से अपना प्रभाव डाला, और उनके ऐश्वर्य ने उन्हें संपूर्ण रूप से आकर्षित किया। शिष्टाचार के नाते राजा प्रकाशेंद्र ने उन्हें निमंत्रित किया, और मिस ट्रैवीलियन ने पूरी तरह उस निमंत्रण से फ़ायदा उठाया। मिस ट्रैवीलियन की घनिष्ठता दिन-पर-दिन बढ़ने लगी। अंत में वह उन्हें धीरे-धीरे खींचकर उस गड्ढे की ओर ले जाने लगीं, जिसे जन-साधारण 'प्रणय-लीला' के नाम से पुकारते हैं।

रानी मायावती ने उस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। वह अपने

कल्पना-संसार में ही भ्रमण कर रही थीं। दोनो प्रणयी इतने सतर्क थे कि रानी मायावती को कभी किसी प्रकार की शंका उत्पन्न नहीं हुई। वह मिस ट्रैवीलियन को अपने परिवार का सबसे अधिक हितेच्छुक ही जानती रहीं। जब कभी मिस ट्रैवीलियन उनसे मिलतीं, वह उनकी प्रशंसा के पुल बाँधतीं, और हिंदू-घर की भोली रमणी उनके शब्द-जाल में फँसकर आनंद मनाती।

रानी मायावती के हृदय की धारणा उस दिन और दृढ़ हो गई, जिस दिन मिस ट्रैवीलियन ने उन्हें 'इंडो-योरपियन वीमेंस-एसो-सिएशन' की सभानेत्री बनाया। रानी मायावती के हृदय में भी अपने स्त्री-समाज को जाग्रत करने की प्रवृत्ति जाग उठी, और उन्होंने सहर्ष वह आसन ग्रहण किया, बल्कि एक प्रकार का गौरव अनुभव किया। बड़े-बड़े घरों की स्त्रियों के साथ उन्हें परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला, और मिस ट्रैवीलियन के साथ उन्होंने अपने मेंबरों की संख्या बढ़ाना प्रारंभ किया।

राजा प्रकाशेंद्र ने कोई आपत्ति नहीं की। वह तो चाहते ही थे कि रानी मायावती का ध्यान किसी दूसरी ओर लगा रहे, जिससे उन्हें उनकी प्रणय-लीला निरखने का अवसर न मिले। वह भी मधुर शब्दों से उन्हें उत्साहित करते रहते। वह स्वयं ज़रूरत से ज़्यादा उत्साह लेते, और उस संस्था के संचालन का व्यय अधिक अंशों में वहन करते, इसीलिये वह उसके संरक्षक हुए थे।

संध्या की लालिमा धीरे-धीरे श्यामल छाया में परिवर्तित हो रही थी। रानी मायावती अपने बग़ीचे में अपना प्यारा कुत्ता 'गोल्डेन रोज़' लिए घूम रही थीं। 'गोल्डेन रोज़' अपनी स्वामिनी के पीछे-पीछे जा रहा था। इसी समय एक मोटर उनके पोर्टिको में आकर ठहरी। रानी मायावती का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ,

और उनका मुख उस समय प्रसन्नता से दीप्त हो गया, जब उन्होंने अपनी ओर मिस ट्रैवीलियन को आते देखा।

उन्होंने उनकी ओर बढ़ते हुए कहा—"वाह, आज आप ख़ूब आईं। मैं इस वक़्त आपके ही बारे में सोच रही थी।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक मधुर मुस्कान-सहित कहा—"वाह, तब तो मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ!"

रानी मायावती ने सप्रेम उनका हाथ पकड़कर कहा—"या मैं? क्योंकि आपको जहाँ याद किया, देवी की तरह आपने तुरंत दर्शन दिए।"

दोनो की हँसी की मधुर ध्वनि ने 'गोल्डेन रोज़' को चकित कर दिया।

मिस ट्रैवीलियन ने संगमरमर की एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"गरमी के दिनों में इन पत्थर की कुरसियों पर बैठना कैसा सुखद है—ये बर्फ़ की तरह ठंडी हैं। हाँ, यह तो फ़रमाइए, मुझ नाचीज़ को रानी साहबा क्यों याद फ़रमा रही थीं?"

रानी मायावती ने दूसरी कुरसी पर बैठते हुए कहा—"वाह, आप तो आज कमाल कर रही हैं। लखनवी ज़बान की सफ़ाई के साथ-साथ आपने तकल्लुफ़ में भी कमाल हासिल किया है।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए कहा—"क्यों? 'ऐ दाग़, तकल्लुफ़ है शराफ़त की निशानी।'"

रानी मायावती ने समर्थक दृष्टि से देखते हुए कहा—"बेशक, लेकिन अपने घर में नहीं।"

मिस ट्रैवीलियन ने तुरंत उत्तर दिया—"But charity begins at home (परंतु दान घर से ही शुरू होता है)."

रानी मायावती ने मुस्किराकर कहा—"भई, तुमसे जीतना सहज नहीं।"

मिस ट्रैवीलियन ने 'गोल्डेन रोज़' को प्यार करते हुए कहा—"हाँ, यह तो बतलाइए, आप मुझे क्यों याद फ़रमा रही थीं ?"

रानी मायावती ने उत्तर दिया—"मैं यह सोच रही थी कि आप विदेशिनी हैं। हमारी भलाई-बुराई से आपका कोई सरोकार नहीं, लेकिन फिर भी आपने अपने सब आराम—ज़िंदगी के अरमान—हमारी जाति की सेवा के लिये भस्म कर दिए हैं। जब मैं यह विचार करती हूँ, तो मेरा मन आपके प्रति भक्ति से ओत-प्रोत हो जाता है।"

मिस ट्रैवीलियन ने सलज्ज कंठ से कहा—"यह तो आपकी सहृदयता है, जो ऐसा फ़रमाती हैं, वरना मैं इस क़ाबिल तो नहीं हूँ। हाँ, अगर मैं आपके संबंध में यही शब्द इस्तेमाल करूँ, तो अलबत्ता सही है। रानी साहबा, त्याग वह करता है, जिसके पास होता है, लेकिन जिसके पास कुछ है ही नहीं, वह क्या त्याग करेगा ? त्याग तो आपका है कि आप अपना बेशक़ीमत वक़्त हमारे काम में सर्फ़ करती हैं। यह संस्था क़ायम होकर एक दिन भी चल न सकती, अगर आप इतनी सरगरमी से इसमें काम न करतीं। मुझे तो यह आपका ही सारा परिश्रम मालूम होता है।"

रानी मायावती ने एक मंद मुस्कान-सहित कहा—"ठीक है, भरा बर्तन छलकता नहीं।"

फिर थोड़ी देर बाद कहा—"मैंने एक नई स्कीम सोची है !"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"वह क्या ? ज़रा मैं भी सुनूँ।"

रानी मायावती ने कहा—"मेरा इरादा है, मैं भारत के प्रत्येक प्रांत के बड़े-बड़े शहरों में अपनी संस्था की शाखाएँ खोलूँ, और इसकी कई शाखाएँ अगर योरप के शहरों में स्थापित हो सकें, तो कैसा हो ?"

मिस ट्रैवीलियन ने उछलकर कहा—"वाह, तब तो क्या कहना

है। हमारी संस्था जगद्व्यापी हो जाय, और तब हमें आंदोलन करने में बड़ी सहायता मिल सकती है।"

रानी मायावती ने अपने प्रस्ताव के अनुमोदन से प्रसन्न होकर कहा—"इसलिये मैं चाहती हूँ कि संसार और भारत की जितनी प्रभावशालिनी नारियाँ हैं, उन्हें आमंत्रित करूँ, और इस विषय में उनका मंतव्य ग्रहण करूँ। फ़िलहाल भारत की ही शिक्षित महिलाएँ निमंत्रित की जायँ। यह सत्य है कि हमें इसके लिये धन की आवश्यकता पड़ेगी, और मैं इसके लिये अपने ज़ाती ख़र्च से दस हज़ार रुपया देने को तैयार हूँ। अगले शनिवार को मैं अंतरंग सभा में यह प्रस्ताव रखना चाहती हूँ। इसमें आपकी क्या राय है?"

मिस ट्रैवीलियन ने सहर्ष कहा—"ज़रूर-ज़रूर! कहती तो हूँ कि आप-जैसी सभानेत्री पाकर हमारी संस्था धन्य हो गई है। इतना त्याग आजकल के ज़माने में कौन करेगा!"

रानी मायावती ने बिना कुछ ध्यान दिए कहा—"जहाँ तक मेरा ख़याल है, हमारी सदस्याएँ भी इसमें हमें बहुत मदद देंगी। रानी रतनकुँअरि से भी हमें गहरी रक़म मिलेगी।"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्साह-पूर्ण स्वर में कहा—"बेशक, जब आप अपने ज़ाती ख़र्च से इतनी मदद दे रही हैं, तब हमें राजा साहब से भी बहुत कुछ आशा करनी चाहिए।"

मिस ट्रैवीलियन का 'राजा साहब' से तात्पर्य था राजा प्रकाशेंद्र से।

रानी मायावती ने बात टालते हुए कहा—"मैं इस संबंध में कुछ नहीं कह सकती। मेरा हमेशा से यह ध्येय है कि हमें अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। स्वावलंबन ही हमारा मूल-मंत्र है।"

मिस ट्रैवीलियन ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा—"बेशक। किंतु

मेरा यही मतलब था कि वह हमारी संस्था के संरक्षक हैं, इस नाते हमें उनसे सहायता के लिये निवेदन करना चाहिए।"

इसी समय एक दूसरी मोटर पोर्टिको में आकर खड़ी हुई। मोटर की आवाज़ सुनकर उत्सुकता से रानी मायावती ने कहा—"देखें, कौन आया?"

फिर मिस ट्रैवीलियन से कहा—"अब काफ़ी अँधेरा हो गया है। आइए, हम लोग भी अंदर चलें।"

मिस ट्रैवीलियन और रानी मायावती, दोनो बाग़ से निकलकर कोठी की ओर चलीं। रास्ते में रानी मायावती ने कहा—"मुझे तो यह श्यामनगर-हाउस की मोटर मालूम होती है। शायद रानी रतनकुँअरि साहबा आई हैं। यह बड़ा अच्छा हुआ। हम लोगों की स्कीम पूरी हो जायगी।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए मोटर के पास जाकर कहा—"रानी साहबा, मेहरबानी करके बाहर तो निकलिए। आपने तो अपने को मोटर में ही बंद कर लिया है।"

न्यू मॉडेल ब्यूक का सैलून खुला, और बाहर निकलते हुए एक नवयुवक ने कहा—"क्षमा कीजिएगा, मेरा नाम राजेंद्रप्रसाद है। मैं राजा साहब से मिलने आया था। शोफ़र दरयाफ़्त करने गया है।"

मिस ट्रैवीलियन ने राजेंद्र को पहचानकर, कुछ झेंपे हुए स्वर में कहा—"ओह, मिस्टर वर्मा। भूल हुई, क्षमा कीजिएगा। मैं समझी थी, श्यामनगर की रानी साहबा हैं।"

यह कहकर वह हँस पड़ीं। रानी मायावती भी मुस्किराने लगीं।

मिस ट्रैवीलियन ने हँस लेने के बाद कहा—"राजा साहब टेनिस खेलने क्लब गए हैं, लेकिन रानी साहबा हैं, जो आपकी ख़ातिरदारी में कोई कसर नहीं उठा रक्खेंगी।"

यह कहकर उन्होंने अर्थ-पूर्ण दृष्टि से रानी मायावती की ओर देखा । इसी समय शोफ़र वापस आया, और अपने स्वामी को खड़ा देखकर अदब से एक ओर खड़ा हो गया ।

मिस ट्रैवीलियन ने कुछ आगे बढ़ते हुए कहा—"आइए, आपका परिचय करवा दूँ । मिस्टर वर्मा, राजेंद्रप्रसाद वर्मा, मिस्टर राधामोहन के दामाद और हमारी परिचित श्रीमती मनोरमादेवी के स्वामी ।" फिर रानी मायावती की तरफ़ देखकर कहा—"रानी साहबा रूपगढ़ ।"

राजेंद्रकुमार ने नत-मस्तक होकर अभिवादन किया, और रानी मायावती ने सरल मुस्कान से प्रत्युत्तर दिया ।

राजेंद्रकुमार संकोच से संकुचित हुए जा रहे थे । स्त्रियों से संलाप करने का उन्हें अभ्यास नहीं था ।

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए कहा—"मिस्टर वर्मा, क्या आप यहाँ खड़े रहकर हम लोगों को खड़ा रखना चाहते हैं । आइए, अंदर तशरीफ़ रखिए, राजा साहब अभी आते ही होंगे ।"

राजेंद्रप्रसाद ने संकुचित स्वर में कहा—"क्षमा कीजिएगा, मैं अब वापस जाऊँगा, मुझे एक आवश्यक कार्य है । वास्तव में मैं राजा साहब से माफ़ी माँगने आया था, क्योंकि कल मैंने उन्हें वचन दिया था कि मैं प्रातःकाल मिलूँगा, लेकिन कार्य-वश नहीं आ सका । आपके सामने यदि राजा साहब आ जायँ, तो मेरी क्षमा-प्रार्थना निवेदन कर दीजिएगा ।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक विचित्र माया-भरी दृष्टि से राजेंद्रप्रसाद की ओर देखते हुए कहा —"आप क्या दो मिनट भी न बैठेंगे ?"

राजेंद्रप्रसाद ने सलज्ज होकर कहा—"मैं अवश्य बैठता, और आपको दुखी न करता, लेकिन काम ज़रूरी है, क्षमा कीजिए ।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक आह-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखते

हुए, धीमे स्वर में कहा—'तो फिर जाइए, मैं आपका बेशक़ीमत वक़्त ख़राब नहीं करना चाहती।"

रानी मायावती ने मंद स्वर में कहा—"काम अगर ज़रूरी है, तो फिर मजबूरी है। मैं राजा साहब से आपका संदेश कह दूँगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने नमस्कार किया, और मोटर के अंदर बैठ गए। दूसरे क्षण मोटर पोर्टिको से बाहर होकर चली गई।

रानी मायावती ने कहा—"मनोरमा का पति तो बहुत सुंदर है, और शिष्ट भी। मनोरमा का भाग्य सराहनीय है।"

मिस ट्रैवीलियन ने मन का भाव छिपाकर कहा—"हाँ, किंतु थोड़ा-सा बेवक़ूफ़ है। सभ्य सोसाइटी में फिरा हुआ नहीं है।"

रानी मायावती ने कोठी की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए कहा—"मुझे तो ऐसा मालूम नहीं होता। हाँ, यह मुमकिन है कि स्त्रियों के साथ मिलने-जुलने का अवसर उसे कम प्राप्त हुआ हो।"

मिस ट्रैवीलियन ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपने ही विचार में विभोर थीं।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने सिगार का धुआँ निकालते हुए कहा—“हाँ, यह समस्या मुश्किल है !”

राजा प्रकाशेंद्र ने जोश के साथ कहा—“अवश्य ! हिंदू-समाज के आगे सिर्फ़ दो ही प्रश्न हैं—जीवन या मरण। यदि हिंदू-समाज जीवित रहना चाहता है, तो उसे नया आवरण पहनना पड़ेगा—समय के साथ परिवर्तित होना पड़ेगा।”

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कुछ सोचते हुए कहा—“हूँ।”

राजा प्रकाशेंद्र ने अपने कथन की पुष्टि में कहा—“विधवाएँ हिंदू-समाज की कलंक-कालिमा हैं।”

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—“या हिंदू-समाज का वैराग्य-रूप !”

राजा प्रकाशेंद्र को बाधा मिलने की आशा न थी। उन्होंने क्षुब्ध कंठ से कहा—“आपका यह ख़याल भ्रम-मूलक है।”

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अपना सिगार पीते हुए कहा—“हो सकता है, परंतु मैं मानता हूँ—‘Change is the salt of life.’ (परिवर्तन जीवन की आत्मा है, उसका सार-तत्त्व है।)”

राजा प्रकाशेंद्र ने संतोषमय स्वर में कहा—“बेशक, टेनीसन-जैसे महान् कवि की उक्ति है, और कितनी सत्य—‘Old order changeth yielding place to new, lest one good custom should corrupt the world.’ (प्राचीन रूढ़ि परिवर्तित होकर नवीन पद्धति का स्थान निर्दिष्ट करती है, इसलिये कि कहीं एक अच्छी रूढ़ि या प्रथा संसार को कलुषित न कर दे।)”

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अनुमोदन करते हुए कहा—"हाँ, 'struggle is existence.' (संघर्ष ही जीवन है ।)"

राजा प्रकाशेंद्र ने विजय की मुस्कान से प्लावित नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"फिर आप कैसे हिंदू-समाज की वकालत में कहते हैं कि विधवाएँ हिंदू-समाज की वैराग्य-रूप हैं !"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने राजा प्रकाशेंद्र की ओर देखते हुए कहा—"क्योंकि यह वास्तव में उसी तरह सत्य है, जैसे सूर्य गरम है, और चंद्रमा शीतल ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने विस्फारित नेत्रों से कहा—"फिर वही गीत । मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं कि वे वैराग्य-रूप हैं । मुझे यही कहना पड़ेगा कि आप वास्तविकता से बहुत दूर हैं, और केवल कल्पना-सागर में ही ग़ोते लगाया करते हैं । फ़िलॉसफ़र तत्त्व-निरीक्षक होते हैं, न कि महत्कात्पनिक ।"

डॉक्टर ने आत्मसंतुष्टि से कहा—"कल्पना भगवान् का मन-रूप है । राजा साहब, फ़िलॉसफ़र तो कल्पना का केंद्र है । आप न मानें, मैं ज़ोर भी नहीं देता, लेकिन सत्य हमेशा सत्य है । हिंदू-समाज विश्व का पथ-प्रदर्शक है, उसके नियम ईश्वरत्व में प्राप्त होने के मार्ग हैं ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने गरम होते हुए कहा—"मेरा तो यह ख़याल है, और सत्य ख़याल है कि हिंदुस्थान का उद्धार उस वक़्त तक न होगा, जब तक हिंदू-जाति जीवित रहेगी । यह संभव है कि हिंदू-धर्म अधिक दिन तक जीवित रह सके ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने शांत स्वर में कहा—"संसार का आदि धर्म हिंदू-धर्म था, और अंतिम धर्म हिंदू-धर्म होगा । जिसने इसलाम-धर्म के इतने प्रहार सहन किए, बौद्ध धर्म की कठिन अग्नि का मुक़ाबिला किया, जैन, इसलाम और ईसाई-धर्म से जो

अभी तक लड़ रहा है, उसका पतन इतनी जल्दी हो जायगा, असंभव है। हाँ, परिवर्तन होना चाहिए, हमारी दुर्बलताएँ दूर होनी चाहिए, कुसंस्कार का नाश होना चाहिए, और नव-संस्कार अवश्यंभावी है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"यह क्या, कभी आप कुछ कहते हैं, और कभी कुछ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"नहीं, मैं सत्य ही कह रहा हूँ। परिवर्तन के यह मानी नहीं हैं—जातीयता का नाश, निजत्व का नाश, सनातन नियम का नाश, और अपना नाश! हम हिंदू हैं, हिंदू रहेंगे। समय के प्रभाव से जो ह्रास हो गया, उसकी पूर्ति होनी चाहिए, और समय के साथ ह्रास होता ही है, यह प्रकृति का सत्य नियम है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने एक मंद मुस्कान से कहा—"परिवर्तन आवश्यक है, और समाज को संस्कृत करना चाहिए, यहाँ तक तो आपका भी मत है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"हाँ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"आगे हमारा विरोध है। मैं चाहता हूँ पूर्ण परिवर्तन, और आप 'आधा तीतर, आधा बटेर।' फ़र्क़ इतना ही है।"

यह कहकर वह हँस पड़े। मीठी ध्वनि कमरे में गूँजकर लखनऊ-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर डॉक्टर आनंदीप्रसाद का परिहास करने लगी।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अधिक गंभीर होकर कहा—"क्षमा कीजिएगा, आपका प्रस्तावित परिवर्तन ही आपकी कही हुई उपाधि से विभूषित होने योग्य है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने गंभीर होकर कहा—"यह आप कैसे कहते हैं?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उसी गंभीरता से कहा—"आप हिंदू होकर ईसाई या मुसलमान होना चाहते हैं। जन्म से आप तीतर हैं, और ईसाई या मुसलमान होकर बटेर होना चाहते हैं। यह हास्यास्पद प्रयत्न है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उछलकर कहा—"यही जन्म-अधिकार तो हिंदू-जाति की फाँसी का फंदा है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने व्यंग्य की हँसी हँसते हुए कहा—"ठीक उसी तरह, जैसे आजकल भारतीय अपने शासकों से कहते हैं—स्वराज्य हमारा जन्म-अधिकार है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तेजना के साथ कहा—"आपकी यह ग़लत एनालॉजी (सादृश्य) है। दोनो में कोई सादृश्य नहीं। जब तक हिंदू-जाति 'जाति-पाँति' के झगड़ों को सदा के लिये गंगा में बहा न देगी, तब तक भारत स्वतंत्र न होगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने शांत स्वर में कहा—"यह दृष्टिकोण दूसरा है। अगर आप अपनी जाति-पाँति से असंतुष्ट हैं, तो उसका संस्कार करें। किंतु संस्कार के यह अर्थ नहीं कि उसका समूल नाश करें। दरअसल देखा जाय, तो यह जाति-पाँति का झगड़ा ही हिंदू-जाति को अब तक जीवित किए हुए है, नहीं तो न-जाने कब हिंदू-जाति मुसलमान हो गई होती। मुस्लिम इतिहास उठाकर देखिए, इसलाम जहाँ गया, वह देश-का-देश मुसलमान हो गया। मिसाल के लिये अरब, फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान वग़ैरह सभी प्रदेश आज इसलाम को अपनाए हुए हैं, लेकिन अगर मुसलमानों की दाल कहीं ७०० वर्ष के शासन के बाद भी, अगणित अमानुषिक अत्याचार के बाद भी, नहीं गलती, तो वह यह भारत-देश है। आज भी २२ करोड़ हिंदू जीवित हैं। यह किसका प्रभाव है? हमारी जाति-पाँति की दृढ़ शहर-पनाह का। हमने हँसते-हँसते अपने को दीवार में चुनवा

दिया, हमारे परिवार-के-परिवार तोपों से उड़ा दिए गए, बाप के सामने बेटे का सिर काटा गया, लेकिन हमने अपनी जाति नहीं बदली। यह कौन-सी शक्ति थी, जो हमें ऐसे त्याग के लिये बाध्य करती थी? उत्तर यही मिलेगा कि हमारी जाति-प्रियता।"

राजा प्रकाशेंद्र ने असंतोष की हँसी हँसते हुए कहा—"डॉक्टर साहब, उस ज़माने में संभव है, हमारी जाति की कट्टरता काम आई हो, परंतु वर्तमान काल में तो रंग दूसरा है। सभ्य संसार में अगर रहना है, तो हमें अपना निजत्व खोना पड़ेगा। जो जाति अपने मुर्दों के गीत गाती है, वह मरणासन्न होती है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"जो मनुष्य निजत्व खो देगा, वह ऊँचे कैसे उठेगा। अपना समाज, अपना धर्म हमें जीवित रखना पड़ेगा, अगर हम अपनी उन्नति करना चाहते हैं। अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता को जीवित रखने में ही हमारा कल्याण है। आज योरप सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित है, लेकिन क्या मैं पूछ सकता हूँ कि वहाँ के किस देश ने अपनी सभ्यता छोड़ दी है। जर्मन-सभ्यता, फ्रेंच-सभ्यता, सर्वथा विभिन्न होते हुए भी, उच्च हैं, उसी प्रकार अँगरेज़ों की सभ्यता इन दोनो से पूर्णतया भिन्न है। जर्मन अंत तक जर्मन रहेगा, और वैसे ही अँगरेज़ अंत तक अँगरेज़।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद को बीच में रोककर राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"माफ़ कीजिएगा डॉक्टर साहब, आप जातीयता को धर्म में शामिल करते हैं। हम तो इंडियन ही रहना चाहते हैं। इंडियन रहने के लिये ही तो हमारा यह धर्म-परिवर्तन है। हम अपने देश को ज़िंदा रखना चाहते हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"उसी तरह, जैसे विष तो खिलाना, परंतु जीवन की आशा करना। इस देश का नाम

भारत या हिंदुस्थान है। इस देश का धर्म हिंदू-धर्म है। इसकी सभ्यता सनातन हिंदू-सभ्यता है। इसका ज्ञान वेदांत की ज्योति है। इसका सिद्धांत त्याग है। इसका ध्येय मोक्ष है। इसका साहित्य ईश्वर के पहचानने की, उस तक पहुँचने की सीढ़ी है। इसका बंधन प्रेम है, सौहार्द है, वात्सल्य है। माता के रूप में त्याग, ममत्व और वात्सल्य प्रकट हुआ है। सेवा और दांपत्य की पवित्रता स्त्री-रूप में प्रकट हुई है। तपस्या, त्याग, वैराग्य और स्त्रीत्व विधवा-रूप में प्रकट हुआ है। हमारी सभ्यता आदिम सभ्यता है। हमारा जीवन हमारी सभ्यता है। हमारा धर्म वैज्ञानिक धर्म है। हमारे आचार डॉक्टरी सिद्धांतों पर अवलंबित हैं। बस, आवश्यकता इस बात की है कि हम नवीनता के रूप में अपनी प्राचीन, पुरातन वैदिक सभ्यता को अपनाएँ। वही मनुष्य उन्नति करता है, जिसमें निजत्व का ज्ञान होता है। विधवाएँ, सच्ची विधवाएँ हमारी—राष्ट्र की सबसे मूल्यवान् निधि हैं, जिनके तेज से हमारे धर्म का सिर ऊँचा है। परंतु जो विधवाएँ विवाहित जीवन भोगने की इच्छा करती हैं, उनके लिये हमारे धर्म में, हमारी सभ्यता में उतना ही गौरवमय स्थान है, जितना अन्य विवाहिता स्त्री का। हमारा समाज उसे आज्ञा देता है। किंतु जो त्याग का कठोर व्रत लेना चाहती हैं, वे हमारे आदर की पात्र हैं, हमारा गौरव हैं, और हमारी पवित्रता का सबसे उच्च दिग्दर्शन हैं। मैं मानता हूँ, और मुक्त कंठ से स्वीकार करता हूँ कि ऐसी विधवाएँ बहुत कम निकलेंगी, लेकिन निकलेंगी अवश्य।"

राजा प्रकाशेंद्र ने भ्रू-कुंचित करते हुए कहा—"परंतु यह भी हमें मालूम होना चाहिए कि विधवाएँ स्त्रियाँ हैं, और वे अपना मंतव्य प्रकट करने के पहले मरना श्रेयस्कर समझेंगी। इसके अलावा समाज में तो उन्हें ज़बरदस्ती विधवा रहना पड़ता है। हम अपने स्वार्थ-साधन के लिये कितने ही निरपराध,

नवजात शिशुओं का अंत कर देते हैं। विभीषिकामय पापाचार के विरुद्ध आवाज़ निकालने के पहले ही स्त्रीत्व, त्याग, ममत्व, वात्सल्य की रूप मा अपने दोनो हाथों से, अपनी कलंक-चादर धवल बनाए रखने के लिये, उनका गला घोट देती है। हिंदू-समाज का पाप उसके ज्ञान के प्रकाश में खिलखिलाकर हँसता है, और हम गर्व से कहते हैं कि हमारा हिंदू-धर्म भगवान् का ज्ञान-रूप है! क्यों?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उसी तरह शांत स्वर में कहा—"सत्य है, यह हमारा अपराध है, परंतु मैं यह कब कहता हूँ कि विधवा-विवाह न हो, और ज़बरदस्ती विधवाएँ कठोर व्रत का पालन करें। मैं तो कहता हूँ कि जिनकी इच्छा हो, वे विवाह करें। हाँ, किसी अंश तक आपका कहना ठीक है कि वे अपनी इच्छा प्रकट करने के बजाय मरना श्रेयस्कर समझेंगी। परंतु फिर भी उपाय है। स्त्री अपने मुख से नहीं कहती, लेकिन चेष्टाओं से कह देती है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसते हुए कहा—"चेष्टाओं से जानने के लिये समाज में आप-जैसे मनोविज्ञान के डॉक्टरों की आवश्यकता बहुत पड़ेगी।"

यह कहकर वह हँस पड़े। कमरा हास्य की मधुर ध्वनि से गूँज उठा। केवल विद्रूप की गुंजन शेष रह गई।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"चेष्टा पढ़ने के लिये किसी चतुर डॉक्टर की आवश्यकता नहीं—वे इतनी साफ़ होती हैं कि जानना कोई कठिन काम नहीं। भला बताइए, आप कैसे जान लेते हैं कि अमुक स्त्री का प्रेम आपके प्रति है? उसकी चेष्टाओं से या किसी और तरह? क्या आप उस समय किसी विशेषज्ञ से इस संबंध में राय लेते हैं? नियमों का पालन कराना अति आवश्यक

है। स्कूल जाना, पढ़ना और काम करना एक दस-ग्यारह वर्ष के बालक को बड़ा कड़ुआ मालूम पड़ता है, परंतु माता-पिता क्यों पढ़ाते हैं, पढ़ने के लिये क्यों दंड देते हैं ? गुरु तो कहीं-कहीं पीठ की खाल निकाल देते हैं—यह क्यों ? परंतु जहाँ बालक समझदार हो जाता है, उसे पढ़ने से, लोहे के चने चाबने से, प्रेम हो जाता है, वह स्वयं पढ़ता है, और फिर ऐसी मेहनत करता है कि रात-दिन पढ़ता है। इसी प्रकार यम-नियम, आहार-व्यवहार, आचार-विचार, पूजा-आराधना, त्याग-वैराग्य की शिक्षा हमारे घर की बड़ी-बूढ़ी मा-सासू या सुयोग्य पिता अपनी विधवा बहू-बेटी को देते हैं, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, और न नाक-भौं सिकोड़ने की। कोई-कोई बालक पढ़ाने पर, मार-पीट करने पर भी नहीं पढ़ते, तो पिता उन्हें किसी उद्योग-धंधे में लगाते हैं, इसी प्रकार कोई-कोई विधवाएँ ऐहिक वासना नष्ट नहीं कर सकतीं, तो उन्हें विवाह के पवित्र पाश में बाँध देना नितांत आवश्यक है। हमारे क़ानून-शास्त्र मनुस्मृति में आज्ञा है, हमारी सभ्यता में स्थान है। केवल आपको यह कठिनाई है कि चेष्टाओं से कैसे ज्ञात होगा ! मैं कहता हूँ, ठीक वैसे ही, जैसे न पढ़नेवाले बालक की चेष्टाओं से पिता या उसके अभिभावकों को ज्ञात हो जाता है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसते हुए कहा—"डाक्टर साहब, तो अब यह ज़रूरी होगा कि पिता या माता होने के पहले हम मनोविज्ञान का ज्ञान हासिल कर लें, क्यों ? कितनी कमज़ोर दलील है। कैसा हास्यास्पद प्रयत्न है !"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"हास्यास्पद हो सकता है, परंतु है सत्य। देखिए, विधवाओं के लिये आचार-विचार के नियम केवल तीन वर्णों में हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। तीनो में ज्ञान की मात्रा ज़्यादा है। उच्च वर्ण में होने से उन्हें अपने कर्तव्य का

ज्ञान है। इसीलिये यह कठोर शिक्षा है। पहले हमारा वायु-मंडल पवित्र था, आज कलुषित है, इसीलिये हमारी इतनी हेय स्थिति है। हमारा पतन है। हम मनुष्यत्व के आसन से पतित होकर पशुत्व की श्रेणी में जा रहे हैं। हम स्त्रियों को अपने भोग की वस्तु समझते हैं। इसलिये उनके सामने हम काम, वासना-लालसा, आसक्ति के उदाहरण रखकर उनके लिये स्वतंत्रता चाहते हैं। स्वतंत्र रहने से हमारी काम-वासना तृप्त होगी, इसलिये हम उन्हें लुभाने के लिये पेरिस, बर्लिन, लंदन, नेपिल्स, रूस और अमेरिका की स्लम्स का उदाहरण रखते हैं। हम स्वयं रोगी हैं, उन्हें भी रुग्ण करना चाहते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि हम मनुष्य हैं, ईश्वर की प्रतिमा हैं, स्त्रियाँ हमारी शक्ति हैं, वे पवित्र और पूजने योग्य हैं। योग और साधना, दमन और शमन हमारे लिये उसी प्रकार आवश्यक है, जिस प्रकार स्त्रियों के लिये। हमारा नैतिक पतन इतना ज़्यादा हो गया है कि हम बहन कहकर उसके घर में घुसते हैं, और पाप की ज्वाला लगाकर तांडव नृत्य करते हैं। अगर आप छान-बीन करें, तो मैं कह सकता हूँ कि प्रतिशत ६६ विधवाएँ ऐसी मिलेंगी, जो इस प्रकार हमारी विश्वासघातकता से दीनो दीन से गई हैं। इसके पहले कि हम किसी बात का प्रयत्न करें, यह नितांत आवश्यक है कि हम अपनी नैतिक उन्नति करें, अपना वातावरण शुद्ध और पवित्र बनाएँ। अँगरेज़-समाज का नैतिक उत्थान बहुत ज़्यादा है। वे बहन कहकर उसका सर्वनाश नहीं करते। लेकिन हम......जो कुछ भी कहा जाय, थोड़ा है।"

इसी समय कमरे का दरवाज़ा खुला, और नौकर ने दो तश्तरियों में आम और ख़रबूज़े की फाँकें लिए प्रवेश किया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने राजा साहब से हँसते हुए कहा—"ख़ैर, बैठिए, जल-पान तो कीजिए, फिर कभी बहस होगी।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उठते हुए कहा—"जल-पान आप कीजिए, अब मैं जाऊँगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हाथ पकड़कर बिठाते हुए कहा—"ऐसी धूप में कहाँ जाइएगा, बैठिए भी।"

राजा प्रकाशेंद्र बैठ गए। दोनो मित्र जल-पान करने लगे।

---

(६)

प्रातःकाल की स्वर्ण-मयूखें संसार को आलोकित करने लगीं, और उन्होंने अपने प्रकाश का फ़ोकस सोती हुई मिस ट्रैवीलियन पर डाला। एक सुखद स्वप्न देखती हुई वह सहसा जाग पड़ीं। सामने ही उनका माली फूलों का गुलदस्ता लिए अपनी स्वामिनी के जगने की प्रतीक्षा कर रहा था। माली ने झुककर सलाम किया, और पुष्प-राशि मसहरी के अंदर रख दी। मिस ट्रैवीलियन ने पुष्प सूँघते हुए कहा—"राधू, तू क्या चाहता है ?"

राधेलाल ने हाथ जोड़कर कहा—"हुज़ूर, दो रोज़ की छुट्टी। कल लड़कों की मा के बाप के मरने की ख़बर आई है, इसलिये वहाँ जाना ज़रूरी है।"

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"अच्छा, जाओ।"

राधेलाल प्रसन्न-मन चला गया।

मसहरी से बाहर निकलकर वह अपने उद्यान में चली गईं। रविश पर टहलते हुए वह सोचने लगीं—"कितना सुखद स्वप्न था। हिंदू कहते हैं, प्रातःकाल का स्वप्न सत्य होता है, तो क्या मेरा भी स्वप्न सत्य होगा ? उसने मुझसे विवाह किया—मैंने अपने को वधू-वेश में देखा। आह, हृदय कितना आनंद से ओत-प्रोत था ! रोमांच अभी तक है। उसकी स्मृति-मात्र से ही शरीर रोमांचित हो जाता है।

"मेरे हृदय में न-मालूम क्यों एक टीस होती है। एक हलका दर्द तो हमेशा ही बना रहता है। यह कसक उस वक़्त से है, जब से मैंने उसे देखा है। वह कितना मनोहर है, कितना शिष्ट है, और कितना

नेत्र-रंजक है। शरीर कितना बलिष्ठ है, अवयव उन्नत और पुष्ट हैं, और ऐसा मालूम होता है कि समग्र शरीर साँचे में ढाला गया है। सौंदर्य का जाग्रत् रूप है। पुरुषत्व का प्रतिनिधि है, और मनुष्यता की परा काष्ठा। शुभ्र गौर वर्ण में यौवन की ललाई फूट-फूटकर निकली पड़ती है। कितना भव्य है, कितना मनोहर है, और कितना आकर्षक है!

"जब से मैंने उसे देखा है, तब से मैं दीवानी हो रही हूँ। मन-ही-मन एक प्रकार की वेदना का अनुभव करती हूँ, और उसे देखने की लालसा सदैव बनी रहती है। मैं समझती थी, मैं दूसरों को तड़पा सकती हूँ, परंतु यह दर्द तो मेरे ही दिल में पैदा हो गया है, और स्वयं तड़प रही हूँ। उसकी सादगी, उसका भोलापन, उसकी हिचकिचाहट उसके महत् होने का परिचय है। ठीक है, रानी मायावती ने सत्य ही कहा था—'मनोरमा का भाग्य सराहनीय है, जो उसे ऐसा पति मिला।' यह सत्य है, नितांत सत्य है। मनोरमा का वह पति है। सच्चरित्र है। पवित्र है। फिर...। आगे सोच नहीं सकती! उफ़्! यह दर्द क्यों दिया, जब दवा मिलने की नहीं। मैंने यह भेद अपने हृदय के गुह्य पटल में छिपा रक्खा है। यह चिन-गारी यहाँ सुलग रही है, और मेरा समस्त जीवन आपदामय बना रही है। राजा प्रकाशेंद्र कहते हैं, वह मनोरमा के सामने बंदर-सा मालूम होता है, लेकिन वास्तव में सत्य यह है कि वह उनके समक्ष बंदरिया मालूम होती है। राजा प्रकाशेंद्र मूर्ख है, ईडियट है। उसे क्या तमीज़? वह तो बग़ैर सींग-पूँछ का बैल है, मेरे हाथ का खिलौना है, और मेरा ग़ुलाम, जो मेरे इशारों पर नाचता और मेरे इशारों पर बोलता है। वह मूर्ख अपनी मूर्खता में ही मग्न है। उसे ऐसे ही पड़ा रहने दो।

"राजेंद्रप्रसाद! नाम लेते ही रोमांच होता है, हृदय अपनी प्रिय

वस्तु सुनकर नाच उठता है, परंतु मन फिर तुरंत ही व्याकुल हो जाता है, आशंका से सिहर उठता है । ऐसे प्रियतम से प्यार किए जाने की इच्छा होती है । आह, कितना सुख है ! कल्पना में ही आनंद मिलता है, विलास उन्मत्त हो जाता है, लालसा शीतल ज्वाला के समान जलाती है । जीवन के इन पचीस वर्षों में मैंने यह पीड़ा तो कभी नहीं अनुभव की । प्रणय, हास, परिहास, विलास और फिर ठुकरा देना, यही नियम रहा है, आमोद-प्रमोद के साधन को रात्रि के पुष्प की भाँति सूँघा, सुबह मसला और फिर फेंक दिया । किंतु यह तो दूसरा ही पहलू है, जिसमें तड़पन है, दर्द है, और फिर भी सुखद है । वासना जाग्रत् तो होती है, किंतु वह क्षणिक नहीं । वह दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है, अभी तो आज दो सप्ताह से इस आग को दमन कर रही हूँ, लेकिन आज हृदय से बाहर निकल ही पड़ी । विवाह का स्वप्न देख कमज़ोर नारीत्व जाग पड़ा, और साथ विजय भरी निगाहों से मेरे छटपटाते मन को देखकर हँसने लगी है ।

"विवाह ! दो जीवन-धाराओं का एकत्र होना, सम्मिलित होना और फिर एक होकर बहना ! लेकिन यह गुलामी की ज़ंजीर है, दासता का चिह्न है, और निजत्व का अंत है । आनंद-उपभोग प्रातः-काल की लालिमा की भाँति आता और संध्या की लालिमा छोड़कर विलीन हो जाता है । बंधन-हीनता ही प्रेम है, और परतंत्रता वहीं है, जहाँ उन्मुक्त समीरण-जैसा प्रेम बाँध डाला जाता है । मैं स्वतंत्र हूँ, पुष्प की तरह मधुर सुरभि-पूर्ण हूँ । मैं प्रेम के नाते प्रेम करती हूँ, दासता के नाते नहीं । अपने सुखमय जीवन में विषमय कीट नहीं उत्पन्न करना चाहती ।

"किंतु जीवन कितना शून्य है । इस संसार में स्वयं, केवल स्वयं है । कोई दूसरा, जिसे अपना पुकार सकूँ, नहीं है । अरे ! यह

भीरु विचार क्यों ? आज पच्चीस वर्षों में तो यह विचार नहीं उठा, फिर आज क्यों ? मैंने तो विवाह की सदैव निंदा की है, फिर आज उसकी आशा क्यों ? मैं स्वयं नहीं जानती कि क्यों यह परिवर्तन एक ही रात में हो गया। कुछ नहीं, यह मेरी स्त्रियोचित कमज़ोरी है। आज स्वप्न में अपने को वधू-वेश में देखा, उनसे विवाह होते देखा, और सैकड़ों पीढ़ियों का कुसंस्कार जाग्रत् हो गया। विवाह स्त्रीत्व का अंत है, और प्रेम का नीच घातक।

"राजेंद्रप्रसाद, क्या मेरे प्रति .....! भीरु मन आगे नहीं सोचता। असफलता मेरे जीवन को हार होगी, और सफलता मेरी जीत। वह कितना संकोच करते हैं। मैं तो लालसा-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखा करती हूँ, परंतु वह मेरी ओर दृष्टि फेरते भी नहीं। कल जब वह राजा प्रकाशेंद्र के बँगले पर आए, मैं नहीं कह सकती कि कितनी प्रसन्नता मुझे हुई, लेकिन वह मेरी बात नहीं माने, और चले गए। मुझे कितना ग़ुस्सा आया, लेकिन क्या करूँ ? रानी मायावती ने देखा या नहीं, ईश्वर जाने। मैं अपनी साध अपने आप लेकर रह गई। उन्होंने मेरी ओर देखा भी नहीं, और काम का बहाना लेकर चले गए। कहाँ ? मनोरमा, दुष्ट बँदरिया के पास !

"दुष्ट मनोरमा मेरी प्रतिद्वंद्विनी है। मेरी संपत्ति पर अधिकार किए है। मैं इसका नाश करूँगी। इस पथ के काँटे को निकालकर सदा के लिये नष्ट कर दूँगी। अभिमानिनी का उन्नत सिर पदाघात से चूर कर मिट्टी में मिला दूँगी। इसे नष्ट किए बिना मेरा कल्याण नहीं, मेरी विजय में शंका है। मनोरमा को हिंदू होने का कितना गर्व है। उस दिन मुझे आड़े हाथों लिया, और खुल्लमखुल्ला गालियाँ दीं। दुष्ट, देखूँ तेरा गर्व ! तुझे यदि नष्ट नहीं किया, तो मेरा कौशल व्यर्थ है, चातुर्य निष्फल है। तुझे कुचलते ही मेरे प्राणों का प्रिय मेरा हो जायगा, इसके पहले नहीं। तू उसके हृदय

पर क़ब्ज़ा किए बैठी है। तेरा नाश मेरे जीवन की विजय है।

"कुसुमलता कितनी भोली है। उसे अपनी गुप्त सभा में दीक्षित करना ही होगा। कुसुमलता सुंदर, शिष्ट तथा मनोमोहक है, और सबसे बड़ी बात विधवा है। विधवा का जीवन हिंदू-समाज में नितांत घृणय है। आहत-हृदय को यदि और आहत किया जाय, तो उसकी प्रतिरोध-शक्ति का ह्रास हो जाता है। यौवन के प्रलोभनों को ठुकराना असंभव है, फिर एक रात-दिन प्रेम का पाठ पढ़नेवाली नवयौवना तो कल्पना का अद्भुत भांडार होती है। जूलियट का पार्ट कुसुमलता ने अपने कॉलेज में किया था। उस दिन उसका ही पार्ट एक स्वर से अकृत्रिम कहा गया था। क्या उसके वे प्रेम-वाक्य हृदय के निकले हुए नहीं मालूम होते थे? उसका हृदय प्रेम के लिये प्यासा है—उसे प्रेम, विलास का पानी चाहिए। और, मेरे पास वह पानी है। मैं उसकी प्यास बुझा सकती हूँ। उसे अपना अस्त्र क्यों न बनाऊँ? लोहा लोहे को काटता है। मनोरमा का पतन कुसुमलता से क्यों न करवाऊँ?

"मनोरमा, अभिमानिनी मनोरमा अपने यौवन-मद में चूर है। उसकी आँखें कपाल में हैं। न-मालूम क्यों उसका नाम लेते ही मेरा ख़ून उबलने लगता है। जी में आता है, उसके गाल फाड़ दूँ, और आँखें निकाल कुत्सित कर दूँ। जिस रूप का उसे गर्व है, उसे घिनावना, भयंकर बना दूँ। उसका पतन कैसे हो? मेरा उर्वर मस्तिष्क शीघ्र ही कोई-न-कोई उपाय खोज निकालेगा।

"मैं आज बीस दिनों से यह भेद छिपाए हूँ। आँखों से, मुख से यह भेद नहीं ज़ाहिर होने दिया। अब देखती हूँ, इसका कोई-

न-कोई उपाय करना ही पड़ेगा। मैं इसे एक साधारण आकर्षण समझती थी, लेकिन अब देखती हूँ, यह वेदना दिन-पर-दिन बढ़ती ही जाती है। राजेंद्र ने मेरे जीवन को कितना असुखी बना दिया है। मैंने बहुत कोशिश की कि उसके मन को अपनी ओर आकर्षित करूँ, लेकिन सारा प्रयत्न निष्फल गया। अब दूसरा उपाय ग्रहण करना पड़ेगा।

"रानी मायावती भी कितनी मूर्ख है। राजा और रानी, दोनो काठ के उल्लू हैं। एक भोंदू है, और दूसरी बेवक़ूफ़। दोनो मेरे कौशल-जाल में फँसे हैं। दोनो मेरे ट्रेज़रर (ख़ज़ानची) हैं। एक अपनी स्त्री का ज़ेवर चुराकर भेंट चढ़ाता है, और दूसरी अपने मा-बाप की संपत्ति की आय मुझे अर्पण करती है। कितना सरल उपाय है। जीवन की सभी आवश्यकताएँ तो पूर्ण होती हैं, फिर भी ग़ुलामी से मुक्त हूँ। कितना आनंदमय और स्वच्छंद जीवन है। किसी का शासन नहीं, किसी की चिंता नहीं, किसी का बंधन नहीं, किसी का भय नहीं, किसी से शंका नहीं। मेरे हास-विलास में किसी का विरोध नहीं। मेरे मन के वेग में विराम नहीं। मेरी क्रीड़ा में विघ्न नहीं। मैं किसी के विलास की सामग्री नहीं, वरन् दूसरे ही मेरे विलास की वस्तु हैं। मैं उनका उपभोग करती हूँ, वे मेरा नहीं। मैं वायु की तरह मुक्त, आकाश की तरह स्वच्छंद, जल की तरह चंचल, अग्नि की तरह दीप्त और पृथ्वी की तरह गंधमय हूँ। मेरा यौवन, मेरा रूप मेरा साधन है। राजा प्रकाशेंद्र कितनी सरलता से मेरा ग़ुलाम बन गया है। कितने ग़ुलामों को मैंने अपने इन्हीं पैरों से ठुकराकर इस घर के बाहर निकाल दिया है—वे आज भी मेरी ओर सतृष्ण नेत्रों से निहार रहे हैं।

"मैं अपना मूल्य जानती हूँ। अपनी शक्ति मुझे ज्ञात है। लेकिन

इस राजेंद्र के ऊपर मेरा कोई उपाय नहीं चलता। मैं नहीं जानती, इसके ऊपर कैसे विजय प्राप्त करूँ? इसे किस तरह अपना गुलाम बनाऊँ? बस, मेरे पथ में मनोरमा काँटा है, उसे अपने रास्ते से हटाना पड़ेगा। इसका सर्वनाश और मेरी जीत!......" मिस ट्रैवीलियन ने अंतिम शब्द कुछ ज़ोर से कह दिए, जिनके जवाब में, मधुर शब्दों में, रानी मायावती ने कहा—"क्या है मिस साहबा, किसका सर्वनाश और किसकी जीत?"

रानी मायावती को देखकर मिस ट्रैवीलियन का चेहरा सफ़ेद हो गया। किंतु यह रूपांतर केवल क्षणिक था। उन्होंने दूसरे ही क्षण कहा—"आपकी कल की बातों ने मेरे हृदय में एक नवीन जोश पैदा कर दिया है। जब से आपसे बिदा होकर आई हूँ, यही सोच रही हूँ कि किस तरह इस हिंदू-जाति के कुसंस्कार नाश होंगे, और कब आपकी संस्था की जीत होगी।"

मिस ट्रैवीलियन के मुख पर एक मनोहर मुस्कान थी।

रानी मायावती ने हँसकर कहा—"आपका यह त्याग ही है, जिससे हमारी संस्था इतनी जल्दी उन्नत कर रही है। और, वह दिन दूर नहीं, जब हमारी संस्था भारत-भर में फैल जायगी।"

इसी समय एक परिचारक ने आकर कहा—"मिस साहबा, चाय ठंडी हो रही है, ले आऊँ?"

मिस ट्रैवीलियन ने इशारे से स्वीकृति दे दी। नौकर चला गया।

मिस ट्रैवीलियन ने रानी मायावती से कहा—"आइए, चलकर चाय पीजिए। आज आपने सुबह-सुबह कैसे कष्ट किया?"

रानी मायावती ने उत्तर दिया—"कल रात को मैंने सारी स्कीम लिख डाली है। उसी के विषय में आपसे परामर्श लेने आई हूँ।"

यह कहकर उन्होंने एक काग़ज़ अपनी जेब से निकालकर मिस ट्रैवीलियन के हाथ में दे दिया। उसे लेकर मिस ट्रैवीलियन पढ़ने लगीं। पढ़कर उन्होंने प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"रानी साहबा, मैं आपकी तारीफ़ किस तरह करूँ। आपका नेतृत्व मिलने से हमारी संस्था इतनी गौरव-पूर्ण उन्नति कर सकी है। आपकी प्रशंसा में जो कुछ कहा जाय, थोड़ा है। मैंने इतनी कार्य-कुशलता किसी में नहीं देखी। कल स्कीम बनी, और आज मसविदा बनकर तैयार है। बस, अब केवल टाइपराइटर पर इसकी प्रतियाँ निकालना अवशेष है, और अधिवेशन के लिये एक तारीख़ निश्चित करना, जो हमारी अंतरंग सभा करेगी। यह हमारी संस्था के जीवित रहने का चिह्न है।"

रानी मायावती आत्मतुष्टि की हँसी से प्रसन्न हो गईं। उनके शरीर का एक-एक रोम उल्लास से कंपित होने लगा। प्रशंसा स्त्री-जाति के दुर्ग का सबसे कमज़ोर कोना है, जहाँ कोई भी शत्रु सुगमता से घुसकर अपना आधिपत्य जमा सकता है।

---

(७)

परीक्षा में सफलता उल्लास का सबसे उत्कृष्ट रूप है। लखनऊ-विश्वविद्यालय का परीक्षा-फल निकला, और कितने ही उल्लास के जीवित रूप होकर आनंद में मग्न हो गए, तथा कितने ही शोकान्वित होकर पहले दैव को, फिर परीक्षक को गालियाँ देने लगे।

ज्येष्ठ-मास का तपता हुआ सूर्य पृथ्वी को अपना ही-जैसा दूसरा सूर्य बनाने का उपक्रम कर रहा था, किंतु परीक्षा-फल जानने के लिये विद्यार्थी अविराम गति से बादशाहबाग़ की ओर जा रहे थे, क्योंकि शाम के पहले स्थानीय समाचार-पत्र में कोई सूचना मिलने की आशा नहीं थी। राजेंद्रप्रसाद की मोटर भी वायु-वेग से रजिस्ट्रार के दफ़्तर में घुसी, और मोटर ठहरने के साथ ही वह उस व्यग्र मंडली में सम्मिलित होकर पहले पहुँचने की कोशिश करने लगे। परीक्षा-फल स्थिर होकर निरीक्षकों को सधीर दृष्टि से देख रहा था, और विद्यार्थी, उनके मित्र और अभिभावक उसकी आँखें बाहर निकालकर देखने का उपक्रम कर रहे थे। उत्कंठा की चरम सीमा का रूप मनोहर था, परंतु किसी को हँसानेवाला और किसी को रुलानेवाला था। जो उत्तीर्ण हो गए थे, वे अपने नाम को मुग्ध दृष्टि से देख रहे थे। उस दिन उन्हें मालूम हुआ कि उनके नाम में कितनी मधुरता है, और वह उन्हें कितना प्यारा है। आँखें कहतीं, सत्य है, लेकिन मन कहता, 'और देख लो।' जिनका नाम ढूढ़ने पर नहीं मिला, वे बार-बार ढूँढ़ते, और जब न मिलता, तो ऐसे निश्चेष्ट हो जाते कि पीछे से धकेलता हुआ कोई उत्सुक

विद्यार्थी उन्हें एक ओर हटा देता, और वे ज्ञान-शून्य की भाँति किसी विचार में मग्न हो जाते।

राजेंद्रप्रसाद ने एक विद्यार्थी को हटाकर परीक्षा-फल देखा। ऊपर ही सबसे प्रथम नाम था मनोरमादेवी, उसके बाद नाम था कुसुमलतादेवी। दोनो ही प्रथम श्रेणी में प्रथम थीं। राजेंद्रप्रसाद को जितनी प्रसन्नता अपने उत्तीर्ण होने पर नहीं हुई थी, उससे अधिक इन दो नामों को देखकर हुई। वह वायु-वेग से मोटर की ओर लौटे। भीतर सीट पर बैठते-बैठते उन्हें एक हास्य की मधुर ध्वनि सुनाई दी। विद्यार्थियों की मंडली का एक नवयुवक कह रहा था—"भाई, यह ज़माना ज़नाना है। युनिवर्सिटी में भी औरतें मर्दों का मुक़ाबिला करती हैं, और मुक़ाबिला ही नहीं, वे सबको हराकर अव्वल आती हैं।"

युवक-मंडली हँस पड़ी, और दूसरे ने तुरंत उत्तर दिया—"आख़िर हमारे इक्ज़ामिनर्स मर्द ही हैं, उनका फ़र्ज़ है कि ज़मानाहाल के मुताबिक़ औरतों को तरजीह दें।"

युवक-मंडली की और बातें सुनने के लिये राजेंद्रप्रसाद के पास वक़्त न था। उन्होंने शोफ़र को घर चलने का आदेश दिया। मोटर बादशाहबाग़ से निकलकर मोतीमहल-पुल को पार कर रही थी कि दूसरी मोटर पर मिस ट्रूवीलियन और रानी मायावती आती हुई दिखलाई पड़ीं। मोटर पास आते ही ठहर गई। राजेंद्रप्रसाद के शोफ़र ने भी गाड़ी ठहरा दी।

मिस ट्रूवीलियन ने उतरकर आते हुए कहा—"मिस्टर वर्मा, आप ख़ूब मिले। मैं नहीं जानती कि पहले मैं बधाई किसको दूँ, आपको या मिसेज़ वर्मा को? जब से मैंने यह समाचार सुना है, प्रसन्नता से प्रत्येक अवयव फड़क रहा है। हमारे स्त्री-समाज का मुख आज उज्ज्वल हुआ, और मिसेज़ मनोरमा हमारी संस्था

की आदरणीय गौरव हैं। ऐसा उज्ज्वल रत्न पाने के लिये आपको हृदय से बधाई देती हूँ!"

राजेंद्रप्रसाद ने सिर झुकाकर कहा—"मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ!"

राजेंद्रप्रसाद धीरे-धीरे चलते हुए रानी मायावती की मोटर के पास गए, और उन्हें सादर अभिवादन किया।

रानी मायावती ने मोटर से नीचे उतरते हुए कहा—"मैं भी आपको बधाई देती हूँ!"

राजेंद्रप्रसाद ने नत होकर धन्यवाद दिया।

मिस डू वीलियन के सतृष्ण नेत्र-युगल राजेंद्रप्रसाद को देख रहे थे। उन्होंने एक मृदु मुस्कान से रानी मायावती की ओर देखकर कहा—"क्षमा कीजिएगा रानी साहबा, मैं मिसेज़ मनोरमा को बधाई देने का लोभ संवरण नहीं कर सकती। इसलिये मुझे अनुमति दीजिए, मैं मिस्टर वर्मा के साथ जाकर उन्हें बधाई दे आऊँ।"

रानी मायावती ने बैठते हुए कहा—"मैं भी चलती, लेकिन इस वक्त नहीं चल सकती। आप शौक़ से जाइए, और मेरी तरफ़ से भी बधाई दे दीजिएगा।" यह कहकर उन्होंने शोफ़र को चलने के लिये संकेत किया।

सूर्य का उत्तप्त प्रकाश उन्हें अधिक देर तक ठहरने की आज्ञा नहीं दे रहा था।

मिस डू वीलियन ने एक उत्सुक दृष्टि से राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा, और उनकी मोटर में बैठते हुए कहा—"आइए मिस्टर वर्मा, हम लोग चलें। गरमी असहनीय है।"

राजेंद्रप्रसाद ने शोफ़र के पास बैठते हुए कहा—"हाँ, गरमी तो बहुत ज़्यादा है।"

मिस डू वीलियन ने आपत्ति करते हुए कहा—"आगे आप कहाँ

बैठते हैं। अगर मेरे बैठने से आपके आराम में ख़लल पड़ा है, तो मैं यहीं उतर जाऊँगी।"

यह कहकर वह नीचे उतरने का उपक्रम करने लगीं।

राजेंद्रप्रसाद ने स्वयं उतरते हुए कहा—"नहीं-नहीं, यह आप क्या कहती हैं। आपके मिलने से जो प्रसन्नता होती है, वह अकथ-नीय है। गरमी के लिहाज़ से मैं यहाँ बैठ गया था।"

मिस ट्रैवीलियन ने द्वार खोलते हुए कहा—"तो फिर आइए, तशरीफ़ रखिए; आपके बैठने से गरमी बढ़ न जायगी।"

कहते-कहते उन्होंने उनका हाथ पकड़कर दबाते हुए भीतर की तरफ़ खींचा। वह भीतर मिस ट्रैवीलियन के बग़ल में बैठ गए। शोफ़र ने मोटर चला दी। स्टॉर्ट इतना अचानक हुआ कि राजेंद्रप्रसाद सँभलने के पहले ही मिस ट्रैवीलियन के तुरंत ही फैले हुए बाहु-पाश में गिर पड़े, और उसकी गरम निःश्वास उनके कपोलों के पास आकर एकदम रुक गई, और उसके मधु से भीने अधर एक तड़िद्वेग से अपना प्रभाव डालकर फिर दूर हो गए। यह घटना केवल आकस्मिक घटना-वैचित्र्य की भाँति ही विदित हुई।

मिस ट्रैवीलियन ने मृदु हास्य से कहा—"कैसे ग़ज़ब का धक्का लगा! मालूम होता है, जैसे भूकंप आया हो।"

राजेंद्रप्रसाद ने लज्जित कंठ से कहा—"क्षमा कीजिए, मुझे बहुत दुःख है कि मैंने आपको भयभीत कर दिया। क्षमा कीजिएगा।"

राजेंद्रप्रसाद का कपोल जल रहा था, और एक विचित्र प्रकार के विचार से उनका मुँह लाल हो रहा था। हृदय की धड़कन बड़े वेग से हो रही थी। उनके नेत्र अपराधी की भाँति नत थे। ऐसी घटना उनके जीवन में प्रथम ही थी। वह रूमाल निकाल कपोल पर के उस मृदु चिह्न को पोछने लगे।

मिस ट्रैवीलियन ने उनकी भीरुता देखकर किंचित् मुस्कान से कहा—"मिस्टर वर्मा, आपको रमणियों के साथ बैठने में कुछ संकोच मालूम होता है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उनका नत सिर उन्नत भी नहीं हुआ।

मिस ट्रैवीलियन ने किंचित् व्यंग्यमय कंठ से कहा—"यह आपके समाज का गुण है। स्त्रियाँ तो संसार की सबसे कोमल कृति हैं। इनसे भयभीत होना आप-जैसे 'पॉलिश्ड' नवयुवक के लिये सर्वथा अनुचित है।"

राजेंद्रप्रसाद क्या उत्तर दें, वह अपने मानस-कोष में शब्द ढूँढ़ने लगे।

मिस ट्रैवीलियन ने ज़रा-सा उनकी ओर खिसकते हुए कहा—"क्या आप मेरी बात से रुष्ट हो गए हैं? अगर मैंने कुछ अनुचित कहा हो, तो क्षमा कीजिए।"

राजेंद्रप्रसाद ने किनारे की ओर हटते हुए कहा—"नहीं, आप-जैसी रमणी के शब्द सदैव कोमल ही होते हैं। हाँ, यह मेरे समाज का, हिंदू-समाज का दोष अवश्य है कि हमें रमणियों से दूर रहना पड़ता है, इसीलिये हम लोग भीरु होते हैं। नारी के प्रति हमारी श्रद्धा अवश्य जागती है, किंतु उसके संसर्ग में आने से उतने खुले हृदय से बात नहीं निकलती, जैसी निकलनी चाहिए। और, मैं विशेषकर भीरु हूँ।"

यह कहकर वह हँस पड़े।

मिस ट्रैवीलियन ने हँसी में योग देते हुए कहा—"अपनी कमज़ोरी को लक्ष्य करना सुधार का प्रथम लक्षण है। मिस्टर वर्मा, संसार की दो कृतियाँ विशेष रूप से आदरणीय हैं—एक पुरुष और दूसरी नारी। सृष्टि के आदि में यही युग्म दो भिन्न-भिन्न रूप में

प्रकट हुआ, और तब से वही विभिन्नता चली आती है। जहाँ विभिन्नता है, वहाँ विरोध है, दुःख है; और जहाँ दोनों का युग्म रूप है, वहाँ सृष्टि का विस्तार और आनंद है।"

कहती-कहती मिस ट्रैवीलियन सहसा रुक गईं, क्योंकि मोटर ठहर गई थी, और बाबू राधारमण का बँगला आ गया था।

राजेंद्रप्रसाद ने द्वार खोलते हुए कहा—"कृपा कर उतरिए, कोठी आ गई।" मिस ट्रैवीलियन को यह अनुमान नहीं था कि इतनी जल्दी कोठी आ जायगी। वह किंचित् संदिग्ध दृष्टि से शोफ़र की ओर देखती हुई नीचे उतरीं। राजेंद्रप्रसाद ने अपने हाथ का सहारा दिया। मिस ट्रैवीलियन ने एक आह की निःश्वास छोड़कर अपने शरीर का बोझ उनके हाथ पर डाल दिया। दूसरे ही क्षण उनका पैर लड़खड़ा गया। राजेंद्रप्रसाद ने उन्हें सँभालते हुए कहा—"आप गरमी से बहुत परेशान हो गई हैं। अंदर चलिए।"

मिस ट्रैवीलियन ने कुछ उत्तर नहीं दिया, और कोठी के भीतर दाख़िल हो गईं। पुराना वृद्ध शोफ़र सीताराम एक विचित्र दृष्टि से उनकी ओर देखने लगा।

---

(८)

कभी-कभी मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ घटा करती हैं, जिनकी स्मृतियाँ किसी एक घटना के होने पर सजग होती हैं, और वे मनुष्य का जीवन कभी सुखमय और कभी दुःखमय बना देती हैं। प्रायः यह देखने में आता है कि वे स्मृतियाँ किसी दुःखमय घटना का ही चित्र खींचती हैं, सुखमय का बहुत कम। कुसुमलता के उत्तीर्ण होने पर जितनी प्रसन्नता जस्टिस सर रामप्रसाद को हुई, उतनी ही कातरता उन्हें उसका वैधव्य-जीवन सोचकर हुई। बल्कि यह कहना उचित होगा कि उनके सौख्य-चंद्रमा को कुसुमलता के वैधव्य-राहु ने ग्रस लिया।

"इंडियन टेलीग्राफ़' की विशेषांक प्रति लेकर वह सधीर पदों से कुसुमलता के कक्ष में गए। कुसुमलता आराम-कुरसी पर लेटी हुई एक पुस्तक पढ़ने में लीन थी। सर रामप्रसाद ने किंचित् देर तक उसकी ओर देखकर कहा—"बिट्टन !"

सर रामप्रसाद उसे इसी नाम से पुकारते थे।

कुसुमलता ने चौंककर पीछे की ओर देखा, और पिता को देखकर उठ खड़ी हुई। सर रामप्रसाद कुसुमलता के कमरे में बहुत कम आते थे। उसने पिता की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा।

जस्टिस सर रामप्रसाद ने, नेत्रों में अश्रु छिपाए हुए उसके पास आकर, उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"बिट्टन, ईश्वर को धन्यवाद है कि तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हो गई, और प्रथम श्रेणी में।"

कुसुमलता ने पिता की ओर देखा, और उनके चरण छूने के लिये नीचे झुकी, परंतु उन्होंने उसे रोककर कहा—"यह क्या करती हो, बिट्टन ! ......।"

कहते-कहते वह रुक गए। उनके हृदय का आवेग अश्रुओं के रूप में निकलने का उपक्रम करने लगा। कुसुमलता ने उनकी ओर देखा, और दूसरे ही क्षण उसकी आहत चिर-संचित पीड़ा सहानुभूति से जागरित होकर बाहर निकलने का उद्योग करने लगी।

जस्टिस रामप्रसाद ने कुरसी पर बैठते हुए कहा—"बिट्टन !..."

कहते-कहते वह फिर न कह सके। उनके आवेग ने उनका गला दबा दिया।

सर रामप्रसाद की आँखें घूमती हुई अपनी स्त्री के तैल चित्र पर जाकर स्थिर हो गईं। धीरे-धीरे वह उसकी ओर मुग्ध नेत्रों से देखने लगे। कुसुमलता ने उस चित्र के पास जाकर, नत-जानु होकर प्रणाम किया, और वह ज्यों ही उठनेवाली थी कि सर रामप्रसाद ने उसके समीप जाकर कहा—"बिट्टन, इस देवी को तुम नमस्कार करती हो, करो, लेकिन यह भी जान लेना तुम्हें आवश्यक है कि यह उस जन्म की तुम्हारी शत्रु थी, जो माता होकर प्रकट हुई थी। इसी की ज़िद ने तुम्हें आज उस सुख से वंचित कर रक्खा है, जिसे पाने की तुम सर्वथा अधिकारिणी हो।"

कुसुमलता ने एक व्यथा-भरी दृष्टि से पिता की ओर देखकर कहा—"जो कुछ भी हो, यह मेरी जन्मदात्री माता हैं। सुख और दुःख अपने जीवन का विकार है, जो स्वयं प्राप्त होता है, और स्वयं नष्ट होता है। अपने जीवन को सुखी और दुखी बनानेवाला मनुष्य स्वयं है।"

जस्टिस रामप्रसाद ने चकित नेत्रों से अपनी पुत्री की ओर देखा,

और कहा—"बिट्टन, तुम इतनी महत् हो, यह मुझे आज मालूम हुआ।"

कुसुमलता ने सिर नत कर कहा—"महत्! महत् तो वह थीं, जिन्होंने मुझे जन्म दिया था, जिनका प्रतिबिंब इस चित्र में है।"

जस्टिस रामप्रसाद ने उत्तर दिया—"हाँ, वास्तव में वह महत् थी, जिसने तुम्हारी-जैसी पुत्री पैदा की। बिट्टन, अकेले उसका ही अपराध नहीं है, मेरा भी तो है। उसकी ज़िद पूरा करने का अपराध तो मेरा ही है। मैंने जब तुम्हारा विवाह किया था, तब मेरे मित्रों ने मुझे मना किया था, नगर के नेताओं को आश्चर्य हुआ था, मेरी आत्मा स्वयं मेरे ख़िलाफ़ थी, लेकिन फिर भी मैंने तुम्हारा विवाह कर दिया। क्यों? उसकी साध रखने को। जानती हो, क्यों? अच्छा सुनो, आज मैं सब कथा तुम्हें सुना दूँगा।" कहते-कहते जस्टिस रामप्रसाद अधीर होकर कमरे में टहलने लगे। कुसुमलता कभी उनकी ओर देखती, और कभी सिर नत कर मेदिनी की ओर देखने लगती।

जस्टिस रामप्रसाद ने कुसुमलता के पास आकर कहा—"बिट्टन, आज कई साल से मैं पश्चात्ताप की अग्नि से मन-ही-मन जल रहा हूँ, लेकिन यह वह घाव है, जो बाहर किसी को दिखलाया नहीं जा सकता। सांसारिक ऐश्वर्य, मान, इज़्ज़त, आबरू, ओहदा, ज़मींदारी, सभी मुझे प्राप्त है—इतना कि दूसरे लोग ईर्ष्या कर सकते हैं, परंतु फिर भी मैं सुखी नहीं हूँ। जब मैं अपनी विकट भूल पर नज़र डालता हूँ, तो मुझे सबसे पहले अपने ऊपर क्रोध आता है, और फिर तुम्हारी मा के ऊपर। उसी की ज़िद ने आज तुम्हें इतना दुखी बनाया है, तुम्हें विधवा बनाया है। तुम भोली-भाली हम दोनों के बीच में फूल की तरह महक रही थीं, लेकिन तुम्हें हम दोनों ने मसलकर धूल में मिला दिया। तुम्हारी मा

तपेदिक़ से बीमार हो गई। हकीमों और डॉक्टरों ने मिलकर यही तय किया कि वह तपेदिक़ से बीमार है। मुझे बड़ी चिंता हुई। मैंने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विशेषज्ञों को उसके इलाज के लिये बुलाया, और दवा होने लगी। एक दिन जब मैं कचहरी से लौटा था, तो तुम आकर मेरे पैरों से लिपट गईं, और रोकर कहने लगीं— 'बाबूजी, अम्मा रोती हैं।' सुनते ही मैंने तुम्हें अपनी गोद में उठा लिया, और उसके कमरे में गया। बिट्टन, तुम्हें वह दिन याद नहीं है, लेकिन मुझे सदा दिखाई पड़ता है। तुम्हारी मा सूखकर काँटा हो गई थी, शरीर केवल हड्डियों का ढाँचा रह गया था, हाथ-पैर सूखकर लकड़ी हो गए थे, लेकिन मुख पर तब भी रौनक़ थी, और तेज था। उसकी सारी सिर से खिसक गई थी, और हड्डियों का ढेर सामने था। वह वास्तव में रो रही थी। बिट्टन, मैं क्या कहूँ, और कैसे कहूँ, मेरा ख़ून पानी-पानी हो गया। एक विचित्र हालत हो गई, जिसे मैं आज भी बयान नहीं कर सकता। उसने मुझे देखकर सारी तो ओढ़ ली, लेकिन रुलाई नहीं रुकी। वह और ज़ोर से रोने लगी, और तुम भी रोने लगीं। तुम्हें चुप कराकर उसके पास बैठ गया, और रोने का सबब पूछा। उसने रोते-रोते कहा कि अब मैं बचूँगी नहीं, लेकिन मरने के बाद मेरी बिट्टन की हालत ख़राब हो जायगी। मैंने हर तरह से उसे ढाढ़स दिया, लेकिन सब बेकार हुआ। ज्यों-ज्यों मैं उसे धीरज बँधाता, त्यों-त्यों वह रोती। आख़िर उसने कहा कि मरने के पहले वह तुम्हारा विवाह करना चाहती है। मुझे उस वक़्त बिलकुल होश न था। मैंने उसकी बात मान ली, और उसी महीने में तुम्हारा विवाह करना निश्चय किया। तुम्हारे लिये वर उसने ही खोज रक्खा था। बनारस के राय लाडलीप्रसाद बहादुर की स्त्री और तुम्हारी मा, दोनो में बहन-जैसा स्नेह था।

उन्हीं के पुत्र से उसने तुम्हारा विवाह करना तय किया। मैंने संबंध तय करके फाल्गुन महीने में विवाह भी कर दिया। हम दोनो ने तुम्हारे लिये फाँसी का फंदा तैयार किया, और तुम्हारे गले में डाल दिया। धीरे-धीरे तुम्हारे विवाह के बाद वह अच्छी होने लगी, और थोड़े दिनों में उसका शरीर सबल होने लगा। मैं भी कुछ निश्चिंत हुआ। परंतु अभी तुम्हारा विवाह हुए डेढ़ साल भी न हुआ होगा कि एक दिन तार आया कि तुम विधवा हो गईं! तुम्हारी मा यह सुनकर फिर बीमार पड़ गईं, और दो साल भुगतकर, हम लोगों को छोड़कर चली गईं।"

कहते-कहते सर रामप्रसाद बालकों की भाँति अधीर होकर रोने लगे। कुसुमलता भी रोने लगी।

सर रामप्रसाद ने सँभलकर कहा—"बिट्टन, तब से मैं आज तक बराबर रोता हूँ। अपने जीवन को मैंने भी तुम्हारे ही-जैसा बनाना निश्चित किया। संसार के सब काम केवल कर्तव्य-रूप में करता हूँ। फ़र्ज़ अदा करना ही पड़ता है। लेकिन रात-दिन हृदय में वह भीषण संग्राम मचा हुआ है, जिससे मेरा जीवन स्वयं भार हो गया है। तुम्हें पाकर मैं पुत्र का अभाव भूल गया हूँ, इसीलिये तुम्हें सुशिक्षित करने में कुछ उठा नहीं रक्खा। ईश्वर को धन्यवाद है कि तुमने वह अभाव—वह कमी पूरी कर दी। आज लखनऊ-विश्वविद्यालय में तुम प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई हो। तुमने मेरा सिर ऊँचा किया। लेकिन मैंने तुम्हारे साथ क्या किया? तुम्हें अपने हाथों से बलिदान के बकरे की तरह हलाल कर दिया है।"

सर रामप्रसाद ने रुककर फिर कहना शुरू किया—"बिट्टन, आज मैंने उस पाप का प्रायश्चित्त करने का पूरा-पूरा विचार कर लिया है, और इसलिये तुम्हारी इच्छा जानना चाहता हूँ। तुम अब भोली-भाली लड़की नहीं, अपना नफ़ा-नुक़सान समझती हो।

तुम्हारी माता के न होने से उसका कर्तव्य मुझे ही पूर्ण करना पड़ेगा, इसीलिये मैं पूछता हूँ। मैं तुम्हारा विवाह करना चाहता हूँ। हिंदू-समाज में ऐसा विवाह प्रचलित हो गया है, और शास्त्र इसकी अनुमति देता है। बोलो, क्या तुम मुझे वह अवसर दोगी कि मैं अपने दिल का खटकता हुआ काँटा निकालकर फेंक दूँ, और तुम्हें संसारी देखकर पिता की हविस पूरी करूँ ?"

सर रामप्रसाद ने कुसुमलता की ओर देखा—उसका मुख लाल होता हुआ गौर-वर्ण था। उसके नेत्र नीचे होकर ज़मीन में गड़ गए। वह चुपचाप बाहर जाने लगी।

सर रामप्रसाद के मुख पर प्रसन्नता की प्रभा चमकने लगी। उन्होंने मन-ही-मन प्रसन्न होकर कुरसी से उठते हुए कहा—"बिटन, मैं अब जाता हूँ, और यह भी कह देना चाहता हूँ कि मैंने तुम्हारे लिये डॉक्टर आनंदीप्रसाद एम्० ए०, डी० फ़िल्० को वर निश्चित किया है। अगर तुम उन्हें नापसंद करो, तो मुझे इसकी सूचना देना। सूचना न मिलने पर मैं किसी मौक़े पर यह विवाह का प्रस्ताव उनके सामने रक्खूँगा। उनके संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिये मैं तुम्हें एक पक्ष का समय देता हूँ। अगर इस समय में तुम्हारा कोई निर्णय नहीं मिला, तो मैं इसे स्वीकृति समझूँगा।"

कहकर वह कुसुमलता के कमरे से बाहर हो गए।

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"अब कहिए, मन्नी क्या करेगी?"

बाबू राधारमण ने चकित होकर कहा—"क्या, मन्नी क्या करेगी?"

राजेश्वरी ने गंभीर होकर कहा—"हाँ, मन्नी को क्या अभी और पढ़ाइएगा?"

बाबू राधारमण बड़े वेग से हँस पड़े, और थोड़ी देर तक हँसते रहे। राजेश्वरी अप्रतिभ होकर उनका मुख देखने लगी।

राजेश्वरी ने खीझकर कहा—"तुम्हें कुछ शरम तो है नहीं। ऊपर दामाद और बेटी बैठी हुई है, और यहाँ इतनी ज़ोर की हँसाई हो रही है। वे लोग क्या समझेंगे। मैं तो जाती हूँ, और तुम हँसो। बुढ़ापे में जवानी का रंग आया है।"

कहकर राजेश्वरी कमरे के बाहर जाने लगी। बाबू राधारमण ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"अच्छा, मैं अब न हँसूँगा, तुम तो ज़रा-ज़रा-सी बात पर रूठ जाती हो। अब तुम्हीं कहो, मैं जवान हूँ या तुम? तुम अपनी आदतें कब छोड़ती हो, जो मुझे छोड़ने को कहती हो।"

राजेश्वरी ने कहा—"तुम्हारे पास आकर क्या करूँ, तुम तो मेरी बात सुनते ही नहीं, जवाब देने की जगह हँसते हो, और मुझे बदनाम करोगे। भला, तुम्हीं बताओ, मन्नी या तुम्हारे दामाद साहब हँसी का सबब पूछने आ जायँ, तो तुम क्या उत्तर दोगे?"

बाबू राधारमण ने मुस्किराते हुए कहा—"मैं तो यही कहूँगा कि

तुम्हारी अम्मा पागल हो गई हैं, और मुझे काटने के लिये दौड़ी-दौड़ी फिरती हैं। इसलिये उनकी पागल कुत्ते की-जैसी शक्ल देखकर मुझे हँसी आ गई। मुझे यक़ीन है कि वे लोग अगर तुम्हारी यह सूरत देखेंगे, तो उन्हें मेरी बात पर विश्वास करना पड़ेगा।"

कहकर बाबू राधारमण फिर हँसने लगे।

राजेश्वरी ने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा—"छोड़ो तो। बस, अब देख लिया। तुम लोग अँगरेज़ी पढ़े-लिखे हो, शरम-लिहाज़ तो उठाकर ताक़ पर रख दिया है। जब देखो, हँसी, हँसी। इतना हँसना अच्छा नहीं होता। रात आधी बीतने आई, और इतने ज़ोर से हँसना।"

बाबू राधारमण ने राजेश्वरी को कुरसी पर बिठाते हुए कहा—"अगर मेरा हँसना तुम्हें बुरा मालूम होता है, तो न हँसूँगा। अच्छा, कहो, क्या कहती थीं?"

राजेश्वरी ने कुरसी पर से उठने की चेष्टा करते हुए कहा—"मुझे वक़्त नहीं है, आख़िर मुझे भी तो सोना है। मैं कुछ न कहती थी, और न कभी कुछ तुमसे कहूँगी।"

बाबू राधारमण ने दूसरी कुरसी पर बैठते हुए, गंभीर होकर कहा—"कहो, मैं सब सुनने के लिये तैयार हूँ। तुम कहती थीं कि मन्नी को क्या और पढ़ाओगे? यही कहती थीं कि और कुछ?"

राजेश्वरी ने दूसरी ओर देखते हुए कहा—"कुछ कहती थी, अब तो कुछ नहीं कहती, और न कहना चाहूँगी। तुम्हारी लाडली है, तुम जानो, और वह जाने। न वह मेरे कहने की, और न तुम्हीं मेरे कहने के। वह मेरी सौत की लड़की है, और......।"

राजेश्वरी के कुछ कहने के पहले ही बाबू राधारमण ने कहा—

"और मैं ? तुम्हारी सौत का पति। इसलिये हम दोनों ही तुम्हारे लिये बेगाना हैं।"

राजेश्वरी ने तुरंत उत्तर दिया—"हाँ, यह सत्य है। अगर तुम मुझे कुछ जानते होते, तो क्या इस तरह मेरी बात-बात में हँसी उड़ाते ? जैसे तुम हो, वैसी ही तुम्हारी लाडली है। अँगरेज़ी पढ़ा-पढ़ाकर दिमाग़ ख़राब कर दिया। यह भी कुछ सुना है, तुम्हारी मन्नी विलायत जाने की तैयारी कर रही है ?"

बाबू राधारमण ने चकित होकर कहा—"यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

राजेश्वरी ने जवाब दिया—"मालूम होने में क्या कुछ बाक़ी है। बाप विलायत में रहा, और पति-देवता जाने के लिये कमर कसे बैठे हैं, फिर ख़ुद क्यों न जाय। विलायत तो तीर्थ-यात्रा है। बग़ैर विलायत गए पुरखे भूखे-प्यासे बैठे रहते हैं।"

बाबू राधारमण ने कुछ सोचते हुए कहा—"अगर मन्नी का यह इरादा है, तो......।"

राजेश्वरी ने बात काटते हुए कहा—"देखा, बाप ने सुना नहीं कि भेजने को तैयार हो गए। अभी कोई चर्चा नहीं चली, लेकिन आप उसे विलायत भेजने को तैयार बैठे हैं। यह भी सोचा कि ख़र्च कितना पड़ेगा ? दामाद साहब तो जा ही रहे हैं, मन्नी को भी भेज दो, बस, ठीक हो गया, और तुम यहाँ बैठे-बैठे हरि-कीर्तन करना, क्योंकि घर तो बग़ैर मन्नी के अच्छा ही नहीं लगेगा, और मैं बिना मन्नी के जीवित नहीं रहूँगी। अकेले तुम सटक सीताराम करना। क्यों, पसंद है ?"

राजेश्वरी ने इस भाव-भंगी से बाबू राधारमण की ओर देखा कि उन्हें फिर हँसी आ गई। उन्होंने हँसते हुए कहा—"सारा झगड़ा तो इसी बात का है। मन्नी ने आज जाने की ज़िद की होगी,

बस, आज यह तूफ़ान बरपा हुआ। मैं सोचता-सोचता हैरान हो गया था कि बात क्या है, जो बात-बात पर यह ख़फ़गी ज़ाहिर होती है। अब मालूम हुआ। मन्नी क्या सचमुच जाना चाहती है ?"

राजेश्वरी ने उत्तर दिया—"हाँ, और नहीं तो क्या झूठ! यह तो तुम जानते हो कि मैं तुमसे कभी झूठ नहीं बोलती। आज शाम को मन्नी ने बहुत ज़िद की, लेकिन मैंने किसी तरह स्वीकार नहीं किया। तुम्हीं कहो, मैं उसे छोड़ ही कैसे सकती हूँ। मेरे जो कुछ है, वह है। जब तक वह कॉलेज में रहती है, न-मालूम मैं वे दो-चार घंटे किस तरह अकेले काटती हूँ, और दो-दो, तीन-तीन, न-मालूम कितने साल के लिये इतनी दूर सात समुद्र पार भेज दूँ! यह मुझसे नहीं हो सकता, चाहे जो कुछ हो। मन्नी को बुरा लगे, या तुम्हें बुरा लगे, और चाहे हमारे दामाद साहब को बुरा लगे। मैं इस घर की मालकिन हूँ, मेरा ही हुक्म चलेगा।"

बाबू राधारमण ने मुस्किराकर कहा—"बेशक, आपका ही हुक्म चलेगा। आपको पूरे अख़्त्यार हैं, आपकी इच्छा ही क़ानून है। मैं उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। मन्नी को अगर आप नहीं भेजना चाहतीं, तो वह नहीं जायगी। लेकिन अगर तुम और मैं दोनो ही मन्नी के साथ चलें, तो आप क्या हुक्म देंगी ?"

राजेश्वरी ने स्वप्न में भी यह विचार नहीं किया था। बाबू राधारमण का प्रस्ताव सुनकर वह थोड़ी देर के लिये स्तंभित हो गई। उसकी विचार-धारा दूसरी ओर, किसी नवीन मार्ग की ओर बहने लगी।

कुछ देर तक सोचकर उसने कहा—"हाँ, तब तो विचारना पड़ेगा। यह प्रस्ताव विचारणीय अवश्य है। परंतु मैं अभी हठात् इसका कोई उत्तर नहीं दे सकती। सोचकर उत्तर दूँगी। हाँ, यह तो बताओ, कितना ख़र्च लगेगा ?"

राधारमण ने हँसते हुए नेत्रों से कहा—"ख़र्च कितना पड़ेगा, यह कैसे कहूँ। अगर कुल योरप घूमा जायगा, तो कम-से-कम बीस हज़ार रुपए चाहिए, क्योंकि हम लोग चार आदमी होंगे, और किसी क़दर ठाट के साथ रहना पड़ेगा। अगर साधारण रूप से रहा जायगा, तो कम-से-कम पंद्रह हज़ार तो चाहिए ही। इससे कम ख़र्च नहीं पड़ेगा।"

राजेश्वरी ने भीत स्वर में कहा—"तो फिर मैं नहीं जाऊँगी। बीस हज़ार मैं मन्नी को दूँगी, जिससे उसका जीवन सुख से बीतेगा। फ़िज़ूल घूमने में रुपया ख़र्च करना कौन अक़्लमंदी है। हाँ, यह होता कि परलोक सुधरता, तो ठीक भी था, लेकिन परलोक सुधरने की कौन कहे, बिगड़ चाहे भले ही जाय। नहीं भई, मैं विलायत-सिलायत कहीं नहीं जाऊँगी। मेरे लिये तो लखनऊ ही विलायत है। विलायत में और क्या अनोखा है, यही ललमुँहे बंदर की तरह शक्लें होंगी, जिन्हें मैं रोज़ ही देखती हूँ, और ऐसी ही चुड़ैलें होंगी, जैसी मिस ट्रेवीलियन आती है। तुम्हारा तीर्थ तुम्हें ही मुबारक रहे, मुझे न चाहिए। न-मालूम मन्नी क्यों जाने की ज़िद करती है।"

बाबू राधारमण ने हँसते हुए कहा—"इसका जवाब तो मन्नी ही दे सकती है। हाँ, इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि विलायत-यात्रा से मनुष्य के दिमाग़ का विकास बहुत होता है, और दृष्टिकोण बहुत ऊँचा हो जाता है। मानव-सभ्यता का विकास देखना हो, मानव-शक्ति और मानव-गुण जानना हो, तो विलायत जाना अत्यंत आवश्यक है। हाँ, यह सच है कि परलोक तो नहीं सुधरता, परंतु यह लोक अवश्य ही सुधर जाता है। उन्नति के मार्ग खुल जाते हैं।"

राजेश्वरी ने उत्तर में कहा—"यह मैं नहीं मानती। मानव-

सभ्यता का विकास देखना हो, तो अपने हिंदू-धर्म का निरीक्षण करो। पश्चिम की सभ्यता केवल ढोंग है। सच्ची सुंदरता, जो भगवान् का रूप है, पवित्रता, जो भगवान् का गुण है, वहाँ नहीं। अगर होती, तो मुझे वहाँ भी कुछ देखने को मिलता। मुझे तो सिर्फ़ एक आडंबर-ही-आडंबर दिखाई देता है। यह ज़रूर है कि हमारा राजद्वार वहाँ है, इसलिये अगर नौकरी करना हो, राज में प्रवेश करना हो, तो विलायत का सार्टीफ़िकेट चाहिए। लेकिन मैं किसी नौकरी की भूखी नहीं, और न मेरी मर्ज़ी ही किसी नौकरी की इच्छुक है, तो फिर हम क्यों जायँ? फ़िज़ूल बीस हज़ार रुपया घर से निकाल उन्हें दे आवें। वे हमारे देश में आते हैं, तो यहाँ से लाखों का, नहीं करोड़ों-अरबों का धन बाँधकर ले जाते हैं, इसीलिये आते ही हैं, और हम अपने घर की पूँजी वहाँ जाकर उनकी भेंट चढ़ा आवें! भला तुम्हीं कहो, यह कौन-सी बुद्धिमानी है?"

बाबू राधारमण ने गंभीर होकर कहा—"वास्तव में तुम्हारा कहना सत्य है। हम व्यर्थ ही वहाँ धन खो आते हैं। विलायत जाने का रोग बहुत बढ़ गया है, और दिन-पर-दिन बढ़ ही रहा है। पर यह तो ज़रूर है कि जो दरवाज़े विलायत जाने के पहले बंद रहते हैं, वे वहाँ से लौटने पर खुल जाते हैं। मुझी को देखो। विलायत का सार्टीफ़िकेट मेरे पास है, तभी मेरी वकालत चलती है।"

राजेश्वरी ने उत्तर दिया—"यह संपूर्ण सत्य नहीं। भला बतलाइए, पं० मोतीलाल नेहरू, पंडित मदनमोहन मालवीय कौन विलायत गए थे, लेकिन उनकी वकालत क्या कम चली? तुम तो एक दिन कहते थे कि पंडित मोतीलालजी ने जितना वकालत में कमाया है, उतना किसी वकील ने नहीं कमाया। यह मैं मानती हूँ कि जिनमें प्रतिभा कम है, वे विलायत जाकर खाने-कमाने लायक़ हो जाते हैं।"

बाबू राधारमण ने उत्तर में कहा—"हाँ, यह बिलकुल सत्य है।

अब देखो, राजेंद्र बाबू भी विलायत जा रहे हैं, इन्हें तो सरकार ने छात्रवृत्ति दी है।"

राजेश्वरी ने जवाब दिया—"तभी तो मैं कहती हूँ कि हमारी सरकार विलायती है, इसलिये विलायत को महत्त्व देती है। छात्र-वृत्ति देकर वह दुनिया को बतलाती है कि अगर उन्नति करना चाहते हो, तो पहले हमारे देश का सार्टीफ़िकेट लाओ। सरकार की सबसे छोटी नौकरी आई० सी० एस्० का इम्तिहान पास करने के बाद ही मिलती। देखिए, यह भी भला कहीं का न्याय है कि इस देश में नौकरी करने के लिये विलायत का इम्तिहान पास करना पड़े! इसमें कोई शक नहीं कि हम लोग राजेंद्र बाबू-जैसा दामाद पाकर धन्य हो गए हैं। अगर मेरी कोख से कोई बालक होता, तो मैं उसे उनसे अधिक न प्यार करती। हमारी मन्नी के लायक़ ही वर हमें मिला है। रूप में, गुण में, शील में, सौजन्य में, प्रतिभा में, सब प्रकार से वह श्रेष्ठ हैं।"

राधारमण ने हँसकर कहा—"देखो, कहाँ से कहाँ पहुँच गईं। अब दामाद के गुण-गान करने की बारी आई है।"

राजेश्वरी ने लजाकर कहा—"क्यों, क्या हुआ। अपने रत्न की सभी तारीफ़ करते हैं। अच्छा हुआ, जो मेरी कोख से कोई लड़का नहीं हुआ, वर्ना अगर वह राजेंद्र बाबू के बराबर न होता, तो मुझे अपने पर और उस पर क्रोध आता। मैंने अपनी पुत्री देखकर पुत्र पाया है। मेरा-जैसा भाग्य किसका होगा? हाँ, अगर तुम्हें अच्छा न मालूम होता हो, तो तुम बैठे-बैठे कुढ़ो।"

इसी समय घड़ी ने एक-एक करके बारह बजा दिए।

बाबू राधारमण ने उठकर कहा—"तुम्हारी बकवास में बारह बज गए। बस, गप मारने को कह दो, सारी रात बीत जाय, कोई परवा नहीं, बेसिर-पैर की बातें चाहे जितनी सुन लो।"

राजेश्वरी ने एक जमुहाई लेकर कहा—"तुम्हारे मारे सोने को मिले, तब तो सोऊँ ! आप तो खुद मारें, और दूसरों को दोष देंगे।"

बाबू राधारमण ने बिजली का पंखा बंद करते हुए कहा—"तो क्या सचमुच मन्नी विलायत जाने को कहती थी ?"

राजेश्वरी ने चिढ़कर कहा—"अब कौन छेड़ रहा है, आप या मैं ? फिर मुझे दोष देते हैं। मन्नी तो बहुत सी बातें कहती हैं, लेकिन मैं तो नहीं कहती।"

बाबू राधारमण ने कहा—"मन्नी का विकास मैं बंद नहीं करना चाहता। मन्नी की प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित होनी चाहिए। ऐसी मेधावी बालिकाएँ बहुत कम देखने में आती हैं। विश्वविद्यालय-भर में प्रथम उत्तीर्ण होना हमारे लिये बड़े गौरव की बात है। ऐसी पुत्री पाकर हम लोग बड़े भाग्यशाली हैं।"

राजेश्वरी ने कुरसी से उठते हुए कहा—"मैं भाग्यशाली हूँ या तुम ?"

बाबू राधारमण ने कहा—"हम-तुम दोनों।"

राजेश्वरी ने उत्तर दिया—"नहीं, केवल मैं। मैं उसकी मा हूँ, इसलिये वह गौरव सिर्फ़ मुझे ही प्राप्त है।"

बाबू राधारमण ने हँसकर कहा—"अच्छा, इसका निर्णय अब कल होगा। इसका फ़ैसला तो मन्नी ही देगी, क्योंकि तुम सबसे जीत जाती हो, लेकिन हारती हो, तो उससे ही।"

राजेश्वरी ने कमरे के बाहर निकलते हुए कहा—"इसमें कौन-सी अनोखी बात है। अपनी कोख से कौन नहीं हारता !"

बाबू राधारमण हँसने लगे।

"वासना और प्रेम का संघर्ष मानव-जीवन का इतिहास है। रात और दिन, झूठ और सत्य, पाप और पुण्य, दुःख और सुख, तड़पन और शांति, ये युग्म ही वस्तु के दो रूप हैं, जो ब्रह्मांड के आदि से हैं, और अंत तक रहेंगे।" डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने बड़ी गंभीरता से राजा प्रकाशेंद्र की ओर देखते हुए कहा।

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तर में कहा—"किंतु एक की मौजूदगी दूसरे का नाश होना ज़ाहिर करती है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अपने विशाल नेत्रों को उनके चेहरे पर गड़ाकर कहा—"सत्य है, परंतु एक की मौजूदगी दूसरे का होना साबित करती है। जिसका आदि है, उसका अंत है, जिसका जन्म है, उसका मरण है। जो एक नहीं है, वह दूसरी है। 'नहीं' के साथ 'हाँ' है। ज़हर मारात्मक है, इसलिये अमृत की कल्पना मनुष्य करता है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"यह सत्य है, लेकिन जो अच्छा है, वह बुरा नहीं। अच्छा और बुरा, ये दो गुण एक साथ, एक जगह, और एक समय नहीं हो सकते। यह तो बिलकुल ठीक है कि वासना का अस्तित्व निःस्वार्थ प्रेम का नाश नहीं करता, बल्कि वासना होना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि कहीं संसार में प्रेम भी है। परंतु वासना और प्रेम, दोनो एक ही जगह देखने को नहीं मिलेंगे।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने गंभीरता के साथ कहा—"आपका कथन बिलकुल सत्य है। हमारे और आपके वक्तव्य में सिर्फ़ शब्दों

का फेर है। वासना इंद्रियों का विकार है, और उन्हीं से उसका जन्म है, परंतु प्रेम आत्मा की ज्योति है—अथवा ईश्वर की ज्योति है, जो माया के आवरण से ढके होने से पार्थिव-प्रेम या इश्क़ मजाज़ी है, और वही ज्योति जब आत्मज्ञान होने से माया के आवरण को काट देती है, अथवा जला डालती है, तो वह वास्तविक प्रेम अथवा इश्क़ हक़ीक़ी है। यदि प्रेम का ज्वलंत उदाहरण देखना है, तो तुलसीदास को मैं मिसाल के लिये रक्खूँगा। उनके पहले जीवन में हमें पार्थिव-प्रेम मिलता है—है प्रेम, वासना नहीं; परंतु उनके उत्तरार्ध जीवन में हमें प्रेम—वास्तविक प्रेम—देखने को मिलता है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद कुछ और कहने जा रहे थे कि कमरे का दरवाज़ा खुला, और नौकर के साथ चपकन पहने एक चपरासी आया, और उसने झुककर दोनो को प्रणाम किया। संकेत से डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर देकर पूछा—"क्या चाहते हो, कहाँ से आए?"

चपरासी ने 'पियन-बुक' आगे बढ़ाते हुए कहा—"जज साहब के यहाँ जलसा है, उसका निमंत्रण लेकर हाज़िर हुआ हूँ।"

यह कह एक सुनहला निमंत्रण-पत्र निकालकर पियन-बुक के साथ पेश कर दिया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद खोलकर पढ़ने लगे। पढ़कर उन्होंने पियन-बुक दस्तख़त करके दे दी।

चपरासी ने पियन-बुक लेकर फिर सलाम किया, और राजा प्रकाशेंद्र की ओर देखते हुए कहा—"हुज़ूर के बँगले से अभी आ ही रहा हूँ। चिट्ठी आपके नाम भी थी, जो आपके सिकत्तर साहब को दे आया हूँ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने सिर हिला दिया। चपरासी अदब के साथ दुबारा सलाम कर कमरे के बाहर चला गया।

राजा प्रकाशेंद्र ने निमंत्रण-पत्र पढ़कर कहा—"जस्टिस सर राम-प्रसाद से क्या आपका घनिष्ठ परिचय है ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"क्यों ? उतना घनिष्ठ नहीं, जितना आपसे है। हाँ, परिचय अवश्य है। एक मरतबे युनिवर्सिटी-कोर्ट की मीटिंग में अचानक परिचय हुआ था, और उस दिन उन्होंने यह ज़ाहिर किया था कि उन्होंने मेरे बहुत-से लेख पढ़े हैं, और जो वेदांत पर मैंने पुस्तक लिखी है, उसे पढ़कर वह बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद जब मैं प्रातः-काल घूमने जाता हूँ, तो अक्सर भेंट हो जाती है। दो-एक मरतबे धार्मिक विषयों पर भी वार्तालाप हुआ है। आपकी तो अवश्य ही गहरी जान-पहचान होगी, क्योंकि अगर आपको लखनऊ की सोसाइटी का चमकता हुआ तारा कहा जाय, तो मेरी समझ में कोई अत्युक्ति न होगी।"

राजा प्रकाशेंद्र ने प्रसन्नता दबाते हुए कहा—"यह तो नहीं है। हाँ, मेरा आना-जाना अक्सर लोगों के यहाँ रहता है। मुझे आपकी तरह कमरे में बंद रहकर केवल पुस्तकें पढ़ना और लिखना पसंद नहीं। जीवन का पूरा आनंद लेना, यही मानव-धर्म है। सर रामप्रसाद से मेरा घनिष्ठ परिचय तो नहीं है, लेकिन इतनी जान-पहचान है, जिसे मैं मित्रता कह सकता हूँ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उठते हुए कहा—"आपके लिये कुछ शरबत वग़ैरह लाऊँ ? आम आज बहुत अच्छा आया है। हमारे मित्र सर मुहम्मदद्दीन ने अपने बाग़ से कुछ फल भेजे हैं, कहिए, तो कुछ हाज़िर करूँ ?"

कहते-कहते डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने नौकर को आवाज़ दी। राजा प्रकाशेंद्र को इनकार करने का समय ही नहीं मिला।

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"आप बैठिए डॉक्टर साहब, नौकर

ले आएगा। आप तो विधवा-विवाह के पक्ष में हैं? उस दिन तो आपने यही ज़ाहिर किया था।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने बैठते हुए कहा—"हाँ, मैं कोई दोष नहीं समझता।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"आपने अभी तक विवाह क्यों नहीं किया?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर कहा—"विवाह कर मैं गुलामों की संख्या बढ़ाना नहीं चाहता।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"ख़ूब! अगर आप-जैसे विचार के सभी नवयुवक हो जायँ, तो भारतवर्ष कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता। नवयुवक विवाह नहीं करेंगे, संतान उत्पन्न न होगी, हम लोगों की संख्या नहीं बढ़ेगी, तो इस तरह हम सब शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे!"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने ज़ोर से हँसकर कहा—"ओह, आप तो किसी नतीजे पर बहुत ही जल्द पहुँच जाते हैं। विवाह का विधान जब होगा, हो जायगा। फ़िलहाल विवाह करने का मन नहीं है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने पूछा—"यह वैराग्य क्यों?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"वैराग्य नहीं है। आत्मिक विनिमय का नाम विवाह है। वासना की तृप्ति के लिये विवाह नहीं होता। ईश्वर और प्रकृति के युग्म का नाम विवाह है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"ऐसा विवाह तो असंभव है। न तो आपके ईश्वर का किसी प्रकृति से संयोग होगा, और न आप विवाह करेंगे।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद और राजा प्रकाशेंद्र, दोनो हँसने लगे।

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसी बंद कर कहा—"जस्टिस रामप्रसाद की लड़की कुसुमलतादेवी ने इसी वर्ष बी० ए० पास किया है, और यह गौरव का विषय है कि वह युनिवर्सिटी में द्वितीय हुई हैं, और उससे भी अधिक ताज्जुब की बात यह है कि बाबू राधारमण बार-एट-लॉ की लड़की मनोरमादेवी प्रथम उत्तीर्ण हुई हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्किराते हुए कहा—"इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात ? क्या स्त्रियाँ मेधावी नहीं होतीं ? मंडन मिश्र की स्त्री ने भगवान् शंकराचार्य-जैसे विद्वान् से भी शास्त्रार्थ किया था।"

राजा प्रकाशेंद्र ने अपनी दृष्टि पुस्तकों की अलमारी पर जमाए हुए कहा—"यह सुनकर आपको और आश्चर्य होगा कि जस्टिस रामप्रसाद की लड़की बाल-विधवा है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने सहानुभूति-सूचक स्वर में कहा—"यह जानकर मुझे कष्ट हुआ। वास्तव में हिंदू-घर की विधवा की दशा अत्यंत दयनीय है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उछलकर कहा—"लीजिए जनाब, आप भी मेरे मत में आ गए। अभी आपने उस दिन कहा था कि हिंदू-विधवा संसार की गौरव है, और आज आप कह रहे हैं कि हिंदू-विधवा की दशा दयनीय है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कुछ सकपकाकर कहा—"यह ठीक है। हिंदू-विधवा की दशा दयनीय इसलिये है कि हम समाज को पश्चिमीय विचारों से संस्कृत कर रहे हैं। जिनके दिमाग़ में संसार केवल भोग की वस्तु है, उनके लिये विधवा-जीवन अवश्य दुःखमय है। विधवा तो तपस्या-रूप है। तपस्या की चरम सीमा यदि देखना है, तो वास्तव में हिंदू-विधवा में देखने को मिलेगी। लेकिन तपस्या कोई हलुआ नहीं, वज्र के चने हैं, जिनके चबाने में दाँत भी टूट जाते हैं। विधवा को पश्चिमीय सिद्धांतों पर शिक्षित करना उसके

जीवन को दुःखमय बनाना है। इसलिये संप्रति काल की विधवाएँ दयनीय हैं। उनके हृदय में वासना का निरंतर युद्ध होता रहता है, और वह वासना उनके आचार-विचार तथा शिक्षा से उत्तरोत्तर वृद्धि पाती रहती है, एवं अंत में उसका नाश कर देती है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"मगर हम पश्चिमीय विचार नहीं छोड़ सकते। हमारा जीवन इन विचारों से ओत-प्रोत है, यहाँ तक कि हमारे जीवन की नींव इन्हीं विचारों पर स्थिर है। जब हम इतना आगे बढ़ आए, तब कैसे पीछे लौट सकते हैं। अब हमारे लिये कल्याण का मार्ग केवल यह है कि हम पश्चिमीय जीवन को पूरी तरह अपना लें। समुद्र की लहर जब आती है, तब उसके साथ हमें बहना पड़ता है, हम उसका किसी तरह प्रतिकार नहीं कर सकते।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"ठीक है; लेकिन हमारी आँखें खुली हैं। इस सभ्यता का विषमय फल हम देख रहे हैं, फिर कैसे उस विष को हम देखते हुए खा जायँ। उचित तो यह है कि पश्चिमीय विचारों को हम अपने देश, काल और परिस्थिति के अनुसार शुद्ध करके भारतीय बना डालें, तभी हमारा कल्याण है। भारतीय सभ्यता को भारतीय ही रखना पड़ेगा। हमारा धर्म विशद है—इतना विशद कि संसार के सब धर्म उसमें समाविष्ट हो सकते हैं। इस देश में कितने ही धर्म पैदा हुए, और सब हिंदू-धर्म में शामिल हो गए, लेकिन हिंदू-धर्म अपना अस्तित्व अलग किए रहा। उसी तरह हम अपनी सभ्यता में दूसरी सभ्यता को मिलाकर अपना कर लें। यही तो परिवर्तन का मूल-सिद्धांत है कि दूसरे का रंग अपने रंग में शामिल कर लो।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसते हुए कहा—"तब तो आपकी तीतर-बटेर की तरकारी बड़ी ही अच्छी बनेगी।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद कुछ उत्तर देने जा रहे थे कि नौकर तश्तरियों में तरह-तरह के फल लेकर आया, और उनके सामने रख दिए।

राजा प्रकाशेंद्र ने आम की फाँक लेकर चखते हुए कहा—"निहायत नफ़ीस आम हैं। २१ जून को सर रामप्रसाद के यहाँ 'ऐट होम' है न।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने निमंत्रण देखकर कहा—"हाँ, लेकिन सुनिए तो, मुझे अभी आपकी बात का जवाब देना है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने आम की दूसरी फाँक खाते हुए कहा—"अब आप माफ़ कीजिए, मैं अपने आम का मज़ा नहीं ख़राब करना चाहता। अब किसी दूसरे दिन बहस करूँगा। आपको तो इसका मर्ज़ है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद और राजा प्रकाशेंद्र, दोनो हँसने लगे।

---

(११)

अपने कमरे में एकांत पाकर कुसुमलता सोचने लगी—"मेरा विवाह होगा। हाँ, विवाह! कितना सुखद शब्द है। विवाह के नाम से तरुण और तरुणियाँ, दोनों गद्‌गद हो जाते हैं। कल्पना का एक मधुर संसार रचने लगते हैं, जहाँ केवल आनंद-ही-आनंद होता है। वास्तव में विवाह अभिलाषाओं की पूर्ति है, चिर-संचित कामना का फला हुआ रूप है।

"किंतु, विवाह क्या है? दो जीवन-धाराओं का एकत्र होकर बहना ही विवाह है। दोनो धाराओं का अपने स्वाभाविक व्यक्तित्व को रखना, फिर भी एक होकर बहना, यही विवाह का असली उद्देश्य है। मनोरमा, फिर वह नाम याद आ गया! मनोरमा तो मेरे पग-पग पर प्रकट होकर मेरा जीवन दुरूह बनाती है। न-मालूम क्यों मनोरमा के नाम से मुझे चिढ़-सी हो गई है। इसका कारण? मैं स्वयं नहीं जानती।

"राजेंद्र, मेरी कल्पनाओं का केंद्र तो वही है। उन्हें देखकर ही मेरे मन में नवीन भाव, नवीन जागृति उत्पन्न हुई। आज लगभग तीन महीने से अपने मन से युद्ध कर रही हूँ, लेकिन इस बावले भाव पर विजय नहीं पाती। उनकी मनोहर मूर्ति सदैव मेरे नेत्रों के सामने नृत्य करती रहती है। किंतु मैं उस पर विजय प्राप्त करूँगी, करूँगी, और अवश्य करूँगी।

"उनकी कल्पना मैं सदैव करती हूँ, क्यों? इसलिये कि मेरे पास उस वस्तु का अभाव है, जो उनके संसर्ग से पूर्ण होती है। यदि आज मैं विवाह करूँ, तो मेरे मानसिक भाव इंद्रियों के तृप्त होने से

अवश्य ही बदल जायँगे। इंद्रिय और मन का संबंध ऐसा है, जैसा पेड़ और पत्तों का। जिस प्रकार पेड़ के नाश होने से पत्तियों का नाश स्वतः हो जाता है, उसी प्रकार इंद्रिय-विकार नष्ट होने पर यह मानसिक ज्वाला अपने आप नष्ट हो जायगी। तब तो मेरा विवाह करना नितांत आवश्यक है। भाग्य से, ईश्वर से और समाज से युद्ध करने का ऐसा अवसर हाथ से गँवा देना उचित नहीं मालूम होता।

"विवाह, मैं करूँगी। किंतु पिताजी ने तो मेरे लिये वर भी मनोनीत कर लिया। डॉक्टर आनंदीप्रसाद, वही हैं, जो दुबले-से, किंतु तेजोमय, सुंदर, गौर वर्ण के, उन्नत ललाटवाले, गंभीर प्रकृति के, नितांत अध्यवसायी हैं, जिनकी कीर्ति भारतवर्ष में ही नहीं, वरन् समग्र संसार में व्याप्त हो रही है। इतनी कम अवस्था में इतना सम्मान तो किसी विरले ही को मिला होगा। ऐसे पुरुष को पति-रूप में प्राप्त करना अवश्य ही गौरवमय होगा। उनके साथ-साथ मेरी भी प्रसिद्धि होगी। क्या फिर भी मनोरमा मुझसे विजय प्राप्त कर ले जायगी? उसका यह गर्व चकनाचूर हो जायगा।"

कुसुमलता हँस पड़ी। विजय की हँसी का मधुर गुंजन उस कमरे में गूँज गया। किसी आशा के पूर्ण होने की कल्पना ही कितनी सुखद होती है?

कुसुमलता फिर कहने लगी—"मनोरमा के पति विद्वान् अवश्य हैं, लेकिन इनके-जैसे नहीं। उन्हें कोई नहीं जानता, किंतु इन्हें विद्वानों की मंडली जानती है। रूप में भी वह किसी तरह कम नहीं हैं। सौंदर्य निरखने के दृष्टि-कोण न्यारे-न्यारे होते हैं। मनोरमा के पति एक प्रकार से सुंदर हैं, और मेरे अन्य प्रकार से। सौंदर्य तो बाह्य नहीं, आंतरिक है। सच्ची रूप-रेखा तो हृदय में ही देखने

को मिलती है। जो इतने विद्वान् हैं, इतने उच्च हैं, क्या उनका हृदय महत् न होगा?

"मनोरमा को पराजित करना है, उसका अभिमान चूर करना है। बस, यही मेरी आंतरिक कामना है। मनोरमा मेरी शत्रु नहीं, मित्र है। बाल्यकाल से हम दोनों साथ रही हैं, एक दूसरे के दुख-सुख से दुखी-सुखी होती रही हैं। उसे मेरे प्रति बिलकुल द्वेष नहीं है। उसका हृदय दूध-सा स्वच्छ है, और मक्खन की तरह कोमल। किंतु फिर मैं क्यों उसकी शत्रु हुई जा रही हूँ? इसका जवाब मेरे पास नहीं मिलता, यही तो आश्चर्य है!"

कुसुमलता ने सहसा पीछे फिरकर देखा, सामने मनोरमा खड़ी हुई मुस्किरा रही थी। वह चौंक पड़ी। उसका हृदय धुकधुकाने लगा—उसके हृदय के उद्गार क्या मनोरमा ने सुन लिए? किंतु उसका हँसता हुआ मुख देखकर वह विचार दूर हो गया।

मनोरमा ने प्रेम से कुसुमलता की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा—"कहो सखी, क्या सोच रही थीं? सिर नीचे किए, नयन बंद किए किसके ध्यान में तल्लीन थीं?"

कुसुमलता ने मनोरमा के गले से लिपटकर, उसका कपोल चूमते हुए कहा—"प्यारी सखी, तुम्हारे ध्यान में।"

मनोरमा ने बिहँसकर उत्तर दिया—"असंभव है। तुम्हारा चेहरा कह रहा है कि तुम किसी मनोहर कल्पना में विभोर थीं। देखो, ये सुंदर नेत्र किसी की छाया पड़ने से और तीखे हो गए हैं, ये सुंदर कपोल किसी को चूमने का निमंत्रण दे रहे हैं, ये बिंबाधर किसी का रस-पान करने के लिये उत्सुक हैं। क्यों सखी, मुझसे ही अपने हृदय का भेद छिपाओगी?"

कुसुमलता ने मुस्किराकर कहा—"मैं देखती हूँ, राजेंद्र बाबू के सहवास ने तुम्हें हृदय के भावों की मूक भाषा का भी ज्ञान करा

दिया है। मैं तुमसे यह पूछती हूँ कि यह अपना अनुभव है, या किसी का सिखलाया हुआ ज्ञान है ?"

मनोरमा ने कुसुमलता के कपोल पर उँगलियाँ फेरते हुए कहा—"इसका उत्तर तो तुम्हें अपने हृदय में खोजना पड़ेगा। अपनी उमंगों का भेद तो तुम्हें अपने हृदय में मिलेगा।"

कुसुमलता ने मनोरमा के गले में हाथ डालकर, झूलते हुए कहा—"मैं तो तुम्हारी उमंगों की कथा जानना चाहती हूँ।"

मनोरमा ने तुरंत ही उत्तर दिया—"ठीक है, किंतु मेरी उमंगों की कथा तुम्हारी उमंगों में ही निहित है।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"मैं यह रहस्य नहीं समझी।"

मनोरमा ने हँसते हुए नेत्रों से जवाब दिया—"इसके रहस्य का भेद तो डॉक्टर आनंदीप्रसाद ही समझा सकेंगे।"

यह कहकर मनोरमा हँस पड़ी। कुसुमलता साश्चर्य उसकी ओर देखने लगी।

मनोरमा ने हँसते हुए कहा—"सोचती हो, यह भेद कैसे मुझे मालूम हुआ ? तुमने तो मुझसे नहीं कहा। क्यों, 'आशान चोरी, पीरान दग़ाबाज़ी !' अगर आज पापा अम्मा से न कहते, तो शायद मुझे उसी दिन मालूम पड़ता, जिस दिन आपका शुभ विवाह होता। किंतु आपके पिताजी ने पापा से ज़िक्र किया, और उनकी सलाह माँगी। पापा ने अम्मा से कहा, और अम्मा ने मुझसे। यह मालूम है कि ऊँट की चोरी झुके-झुके नहीं होती।"

कुसुमलता के मुख का रंग गिरगिटान की तरह बदल रहा था। उसके नेत्र मनोरमा के सम्मुख नहीं हुए।

मनोरमा फिर कहने लगी—"इसमें शरमाने की कौन बात है ! विवाह करना मनुष्य का धर्म है। मुझे प्रसन्नता है कि मेरी सखी का दुःख दूर हो जायगा।"

कुसुमलता ने दबी ज़बान से कहा—"परंतु तुम विधवा-विवाह के ख़िलाफ़ हो।"

मनोरमा ने अपनी ज़बान दाँतों से दबाकर कहा—"नहीं, यह तुम्हारा भ्रम है। मैं विधवा-विवाह के ख़िलाफ़ नहीं हूँ।"

कुसुमलता ने धीमे स्वर में कहा—"क्या तुमने उस दिन नहीं कहा था, जब मिस ट्रैवीलियन और तुमसे बहस हुई थी?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"हाँ, उस दिन जो कहा था, वह आज भी कहती हूँ। मैं विधवा-विवाह के ख़िलाफ़ नहीं हूँ, परंतु यह कहती हूँ कि अगर विधवा अपनी तपस्या कायम करे, और सांसारिक प्रलोभनों से दूर रहकर तप करे, तो यह उसके लिये कल्याण-कारक है। ऐहिक सुखों को ही सुख न समझना चाहिए, किसी और सुख की कामना होनी चाहिए, जो अनंत है, असीम है, और अविनाशी है। कर्म का बंधन नष्ट करने का अवसर विधवा होकर प्राप्त हुआ, तो उससे पूरा लाभ उठाना परम धर्म है। परंतु जो विधवा धर्म-पालन नहीं कर सकती, उसके लिये तो विवाह ही कल्याणकारी है। और, तुम्हारी परिस्थिति तो दूसरी ही है। तुम बाल-विधवा हो, तुम्हें अपने पहले पति की स्मृति भी नहीं है। महज़ भाँवरें फिरने का अपराध तुम्हें लगा है, फिर तुम्हारा विवाह क्यों न हो? तुम्हारा विवाह होना आवश्यक है। किंतु मिस ट्रैवी-लियन के कथनानुसार नहीं। पश्चिम के सिद्धांतों पर मैं समाज का निर्माण श्रेयस्कर नहीं समझती।"

कुसुमलता ने कुछ तीव्र स्वर से कहा—"किंतु मैं समझती हूँ, आज यदि हमें पश्चिमीय शिक्षा न मिली होती, तो समाज की गर्दन पर जूँ भी न रेंगती होती। समाज-सुधारकों को उत्तेजना केवल पश्चिमीय शिक्षा के प्रभाव से हुई है। इसके पहले विधवा-विवाह की कौन कहे, स्त्रियों को पति के साथ ज़बरदस्ती सती होना

पड़ता था। उन्हें जीवित जलना पड़ता था। क्या तुम इस अमानुषिक बर्बरता का कोई उत्तर दे सकती हो?"

मनोरमा ने मंद कंठ से कहा—"सती-प्रथा आजकल के विचार से अमानुषिक बर्बरता अवश्य है, परंतु अभी तक, आश्चर्य है, सती-प्रथा संपूर्ण रूप से बंद नहीं हुई। अब भी आएदिन किसी-न-किसी के सती होने के समाचार आ ही जाते हैं। यह क्यों? सती-प्रथा की नींव सत्य पर अवलंबित है, और इसलिये उसका नाश नहीं हो सकता। सत्य का नाश कभी नहीं होता, चाहे वह कितना ही कम क्यों न हो जाय। स्त्रियाँ सती स्वतः होती थीं, और यह प्रथा विशेषकर तत्कालीन समय के अनुकूल ही प्रचलित हुई थी। मुसलमानी शासन-काल में स्त्रियों की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिये ही यह प्रथा चल पड़ी थी। स्त्रियाँ पति के मरने के बाद ही सती न होती थीं, बल्कि उनके जीवित रहते-रहते भी जल जाती थीं। इसके भी उदाहरण मौजूद हैं। राजपूत-स्त्रियों का जौहर-व्रत इस सत्य का ज्वलंत उदाहरण है। दूसरे, सधवा स्त्री का पति उसकी रक्षा करनेवाला होता है, किंतु विधवा की कौन रक्षा करे? मुसलमानी राज्य-काल में हमारे शासक हमारे राज्य के ही शत्रु न थे, बल्कि हमारी इज़्ज़त के भी, इसलिये स्त्रियों की मर्यादा बनाए रखने के लिये सती-प्रथा की आवश्यकता प्रतीत हुई थी, और उस समय समाज में यह प्रचलित हुई। इसी प्रकार बाल-विवाह भी प्रचलित हुआ। यह तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि कोई भी प्रथा हर समय अच्छी नहीं रह सकती। काल और परिस्थिति के साथ परिवर्तन होता ही है। जो परिवर्तित नहीं होता, उसका नाश होता है। सती-प्रथा या बाल-विवाह इस समय के सर्वथा अनुपयुक्त हैं, और समय के साथ इनका ह्रास भी हो गया है। आजकल शिक्षा का दृष्टि-कोण बदल गया है, इसलिये

हम भी अपने समाज में विधवा-विवाह रायज करना चाहते हैं, और समय करवा रहा है।"

कुसुमलता ने व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा—"यह तो तुम्हारा भूसे पर लीपने का-सा प्रयत्न है। पुरुषों की दासता को तुम श्रेष्ठ समझती हो, लेकिन मैं तो नहीं समझती। मैं तो इसे स्वार्थ-जाल का सबसे उत्कृष्ट नमूना जानती हूँ। पुरुष-जाति ने अपने स्वार्थ के लिये ही यह आडंबर रचा है।"

मनोरमा ने शांत स्वर में कहा—"बहन, तुम पुरुष-जाति को स्त्री-जाति से न्यारा समझती हो, यही तुम्हारी भूल है। स्त्री-पुरुष तो दो रूप अवश्य हैं, लेकिन वास्तव में ये एक हैं। जहाँ यह ऐक्य नहीं है, वहीं दुःख है, कष्ट है, वेदना है, और है घोर अविराम कलह तथा युद्ध। स्त्री और पुरुष का युग्म ही ब्रह्म का रूप है, और अलग-अलग ये ईश्वर और प्रकृति हैं। ईश्वर कारक है, और प्रकृति कर्म, परंतु ब्रह्म तो, वही कारक है, और वही कर्म है।"

कुसुमलता ने खीझकर कहा—"तुम हरएक बात में ईश्वर और ब्रह्म को घसीटकर केवल अपने कथन का खोखलापन ज़ाहिर करती हो। ईश्वर और कर्म केवल निश्चेष्ट आलसियों का अस्त्र है। ईश्वर की कल्पना ने हमें निर्वीर्य बना दिया है। ईश्वर केवल कपोल-कल्पना है। हम जब तक ईश्वर में विश्वास करेंगे, तब तक कभी उन्नति नहीं कर सकेंगे।"

मनोरमा ने मुस्किराकर कहा—"तो अब आप अनीश्वरवादिनी भी हो गईं। कुसुम, तुममें इतना परिवर्तन कब से हो गया?"

मनोरमा के शब्द में आश्चर्य का आभास था।

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"ईश्वर को तो मैं बहुत दिनों से अपने विचारों से दूर कर चुकी हूँ। तुम्हें न मालूम होगा, मैं ईश्वर और कर्म, दोनो को तिलांजलि देकर अपने जीवन से विसर्जन कर

चुकी हूँ। अगर तुम ईश्वर पर विश्वास करोगी, तो कर्म को भी मानना पड़ेगा, और जब कर्म मानोगी, तो भाग्य भी मानना पड़ेगा। इसलिये कर्म, ईश्वर और भाग्य, तीनों को मैं समुद्र-तल में डुबा देना चाहती हूँ, जिसमें ये फिर प्रकट होकर मनुष्य-जाति का अकल्याण न कर सकें।"

कुसुमलता के स्वर में छिपे हुए क्रोध की झंकार थी।

मनोरमा सुनकर हँस पड़ी। कुसुमलता का क्रोध द्विगुणित हो गया। उसने तीव्र स्वर में कहा—"तुम हँस भले ही लो, लेकिन तर्क में ईश्वर को प्रमाणित नहीं कर सकतीं।"

मनोरमा ने गंभीर होकर कहा—"ईश्वर की सत्ता तर्क द्वारा नहीं बतलाई जा सकती, क्योंकि तर्क अपूर्ण है। अपूर्ण से पूर्ण को व्यक्त करना केवल निष्फल प्रयत्न है। ईश्वर को तुम केवल साधना से जान सकती हो, क्योंकि साधना की कोई परिधि नहीं है, वह भी ईश्वर की तरह अनंत है। साधना तर्क द्वारा सिद्ध नहीं होती। वह स्वयं करने की वस्तु है। बहन, तुम्हारे विचारों में यहाँ तक परिवर्तन हो गया, मुझे आश्चर्य होता है। स्त्री-जाति का सबसे शक्तिशाली अस्त्र है ईश्वर में विश्वास। उसी विश्वास से स्त्री अपने पति को ईश्वर मानकर पूजती है, तभी स्त्रियों का आसन पुरुष से ऊँचा है। संसार की सभ्य जातियों में ही नहीं, असभ्य जातियों में भी स्त्रियाँ ईश्वर पर विश्वास करनेवाली होती हैं। बहुत कम स्त्रियाँ ऐसी मिलेंगी, जो ईश्वर पर विश्वास न करती हों। हाँ, ईश्वर पर अविश्वास करनेवाले पुरुष तो बहुत हैं, लेकिन स्त्रियाँ नहीं। यह क्यों? इसलिये कि स्त्रियाँ बड़ी कोमल हैं, पुरुषों से भी कोमल हैं, और ईश्वर भी कोमल है, अतएव कोमल को कोमलता का आभास बहुत जल्द मिलता है।"

कुसुमलता ने व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा—"खूब, तब तो मैं आज

से तुम्हें ही ईश्वर समझकर पूजूँगी। जिसे तुम कोमलता कहती हो, वह वास्तव में भीरुता है। भीरुता दासता का प्रथम रूप है। जो भीरु होता है, वह मैदाने-जंग से भागता है, और शत्रु को देखकर त्राहि-त्राहि करता है। जीवन संग्राम है। इसमें जो लड़ता है, वही सफल होता है। Struggle for existence/(जीवन के लिये युद्ध) करना पड़ेगा। पुरुषों की दासता जीवन-संग्राम नहीं है, यह तो भीरु होने का सबसे उत्कृष्ट प्रमाण है। अगर हम पुरुषों से युद्ध करें, और विजयी हुईं, तो पुरुषों को हमारी दासता करनी पड़ेगी। जो हथियार फेंक देता है, वही विजित होकर दास होता है। हम आजकल पुरुष-जाति के हाथ के खिलौने हैं। वे जैसे चाहते हैं, हमें नचाते हैं। यह क्यों? इसलिये कि हममें प्रतिरोध की शक्ति नहीं। हमारे हिंदू-घरों में पुरुष स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार करते हैं, और उन्हें सहना पड़ता है। क्यों? इसलिये कि उनमें प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं। पश्चिम में पुरुष स्त्रियों पर अत्याचार करने का साहस नहीं करते, क्योंकि उनमें प्रतिरोध करने की शक्ति है। शक्ति होना जीवित रहने का लक्षण है।"

मनोरमा ने शांति-पूर्ण स्वर में कहा—"हाँ, शक्ति जीवन का रूप है। हमें तो पुरुषों ने आदि शक्ति ही माना है। आज भी बंगाली शक्ति की 'मा काली' के रूप में पूजा करते हैं, और कहाँ तक कहा जाय, शक्ति-संज्ञा ही स्त्री-वाचक है। शक्ति का उपयोग हमें घर में करके अपने जीवन को, अपने घर को अशांत नहीं बनाना चाहिए। तुम्हारा विचार उस विचार की प्रतिक्रिया है, जिसके रखनेवाले स्त्री-जाति को गुलाम समझते हैं। परंतु हमारे हिंदू-धर्म में स्त्री और पुरुष दो नहीं माने गए—वे तो एक हैं। एक को दूसरे का अर्द्धांग कहा है। यह समानता का कैसा अद्भुत उदाहरण है! कोई भी कर्म बिना स्त्री के विहित नहीं बतलाया गया है। पुरुष-जाति ने हमें

उच्च आसन दिया है। वह मा-रूप में भक्ति करता है, स्त्री-रूप में प्रेम करता है, भगिनी-रूप में आदर करता है, और पुत्री-रूप में पूजता है। ऐसा आदर-सम्मान बताओ, कौन सभ्य जाति हमें देती है? पुरुष-जाति की अमानुषिक बर्बरता के उदाहरण हमारी श्रेष्ठता को कलुषित नहीं कर सकते। क्या योरप में पुरुष स्त्रियों पर अत्याचार नहीं करते? ऐसी मिसालें तो प्रत्येक देश और काल में मिलेंगी ही।"

इसी समय कमरे का दरवाज़ा खुला, और जस्टिस सर रामप्रसाद ने भीतर आकर कहा—"बिट्टन, आज सिनेमा देखने चलोगी? मन्नी, तुम भी आ गईं, अच्छा हुआ, तुम भी चलो। उधर बाबू राधारमण को भी पकड़ लेंगे। आज का तमाशा बड़ा अच्छा है।"

कुसुमलता और मनोरमा, दोनो चौंक पड़ीं, और उठ खड़ी हुईं।

जस्टिस सर रामप्रसाद ने देखा कि उन्होंने आकर व्यर्थ ही दोनो को चौंका दिया। वह उलटे-पैरों जाने लगे।

मनोरमा ने उन्हें जाते देखकर कहा—"आइए, आप जाते क्यों हैं? हम लोग भी सिनेमा चलेंगी। पापा तो शायद आपके कहने से जायँ। वह कभी कहीं आने-जाने का नाम ही नहीं लेते। हमेशा काम ही करते रहते हैं।"

सर रामप्रसाद जाते-जाते ठहर गए। उन्होंने हँसकर कहा—"तुम्हारे पापा को रुपया पैदा करने की बीमारी है, लेकिन मैं तो इस बीमारी से छूट गया। अब बिट्टन की शादी कर दूँ, तो पेंशन लेकर किसी एकांत स्थान में भगवद्भजन करूँगा।"

सर रामप्रसाद हँसने लगे। मनोरमा भी हँसने लगी।

अवसर मनुष्य के जीवन में केवल एक ही बार आता है। जो उसका उपयोग करते हैं, वे सफल होते हैं, और जो उसे खो देते हैं, जन्म-भर पछताते हैं।" कहती हुई मिस ट्रैवीलियन ने अपने शयन-कक्ष में प्रवेश किया। शयन-कक्ष को अगर रतिरानी का क्रीड़ा-भवन कहा जाय, तो किसी प्रकार अतिशयोक्ति न होगी। उसकी सजावट और उसका शृंगार बड़े-से-बड़े ऐयाश राजों के केलि-भवन को लज्जित करता था। उसका वायु-मंडल ही कामोद्दीपक था। उसकी भीनी सुरभि निकलकर शरीर के अवयवों में काम-पिपासा जागरित करती थी, हृदय में गुदगुदी पैदा करती थी, और उसकी आराइश भोग की सुप्त लालसा को उत्तेजित करती थी।

मिस ट्रैवीलियन एक सोफ़े पर बैठ गईं। बिजली का सुनील वर्ण का बल्ब अपना धवल प्रकाश उनके चेहरे पर डालकर उन्हें आद्रा-जैसी सुंदरी से भी श्रेष्ठ दिखाने का प्रयत्न करने लगा। वह सोचती हुई लेट गईं, और अर्द्ध-निमीलित नेत्रों से किसी के आने की प्रतीक्षा करने लगीं।

प्रतीक्षा करते-करते वह अपने मन से कहने लगीं—"मुझे उसने ठुकरा दिया? मैंने वह किया, जो आज तक कभी नहीं किया—किसी के साथ नहीं किया। मैंने सब संकेतों से उसे बतलाया, कितनी उत्तेजना देने का परिश्रम किया, किंतु सब निष्फल हुआ। वह मूर्ख संगमरमर की तरह कठिन और कठोर बना रहा। क्या उसे साहस नहीं हुआ? साहस नहीं हुआ, यह मैं नहीं मान सकती। जब वह अचानक मेरी गोद में गिर पड़ा, और मैंने उसके कपोलों

को चूम लिया था, तब भी क्या उसे साहस नहीं हुआ ? नहीं, वह मूर्ख है । वह असभ्य है । बिलकुल बंदर है । जब मैं उसके घर पहुँचकर मोटर से उतरी, और अपने शरीर का भार उसके हाथ पर डालकर दबाया, लेकिन तब भी वह निश्चल रहा ; कोई दूसरा होता, तो मेरा ज़रख़रीद ग़ुलाम हो जाता ।

"ऐसे मूर्ख से क्या प्रेम करना मुझे उचित है ? जी में आता है, उसे तड़पा-तड़पाकर मारूँ, लेकिन बस नहीं चलता । वह तो मेरे पाश में उलझता हुआ दिखाई नहीं देता । बिलकुल भोंदू है, उल्लू है, पागल है, बदमाश है, बेईमान है………।"

राजा प्रकाशेंद्र ने दबे पैरों प्रवेश करते हुए कहा—"और क्या है ?"

मिस ट्रैवीलियन चौंक पड़ीं । उनका मुख चूने-जैसा सफ़ेद हो गया । ये उद्गार तो वह मौन होकर निकाल रही थीं, किंतु न-मालूम कब उन्होंने शब्द और झंकार का रूप धारण कर लिया । कहते हैं, उत्तेजना की सीमा आत्मविस्मृति है ।

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसते हुए कहा—"तुम्हारा क्रोध-रूप भी कितना सुहावना है ! जब तुम मुझ पर क्रोध करती हो, तो मुझे बड़ा आनंद मिलता है । आज कुछ देर हो गई, और मेरी प्रतीक्षा में उकताकर तुमने मुझे गालियाँ दीं । आह ! इन गालियों में भी कितना मिठास है, क्या बताऊँ ! और कुछ देर क्यों न हो गई ! तब और ज़्यादा आनंद देखने को मिलता ।"

यह कहकर वह ज़ोर से हँस पड़े । मिस ट्रैवीलियन की चिंतित मुद्रा दूर हो गई, और मुख पर एक मोहन मुस्कान नृत्य करने लगी । उन्होंने एक वंकिम कटाक्ष-सहित, मान से अपना सिर घुमाकर कहा—"तुम बड़े ही बदमाश हो । दूसरे को रुलाना, तड़पाना ख़ूब जानते हो ।" कहकर अपना मुख दूसरी ओर फिरा लिया ।

राजा प्रकाशेंद्र ने सप्रेम उनके कपोलों पर उँगली फेरकर कहा—"एक मरतबे और कहो। इस अदा पर मैं सदक़े, मैं क़ुर्बान।"

मिस ट्रैवीलियन ने बनावटी क्रोध से कहा—"किसी की जान जाय, किसी का तमाशा! यह अच्छी तुम्हारी हँसी!"

राजा प्रकाशेंद्र ने उसी सोफ़े पर बैठकर, सप्रेम उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"अच्छा, मुझे माफ़ करो। मैं तो समझता था, अगर मैं न जाऊँगा, तो कोई दूसरा मेरी जगह आ जायगा!"

मिस ट्रैवीलियन ने आहत फणिनी की भाँति उत्तेजित होकर कहा—"स्कउंड्रेल! अपने-जैसा मुझे समझते हो?"

वह क्रोध से काँपने लगीं।

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"क़सूर हुआ, माफ़ करो। तुम्हारी पूजा करने को मन चाहता है। तुम कितनी सुंदर मालूम होती हो!"

मिस ट्रैवीलियन उठकर सवेग दूसरे सोफ़े पर बैठ गईं। उनके श्वास-निःश्वास बड़े वेग से निकलकर शरीर आंदोलित करने लगे।

राजा प्रकाशेंद्र हँसते हुए उनके समीप बैठने को अग्रसर हुए।

मिस ट्रैवीलियन ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"बस, मेरे पास मत आना। अगर मैंने किसी भूल-वश अपना आत्मसमर्पण किया है, तो इसके यह मानी नहीं कि तुम मेरा अपमान करो। जैसे तुम स्वयं नीच हो, उसी तरह मुझे समझते हो?"

राजा प्रकाशेंद्र ने कुछ ध्यान नहीं दिया। वह उनके पास जाकर बैठ गए। मिस ट्रैवीलियन ने कोई विशेष आपत्ति नहीं की।

राजा प्रकाशेंद्र ने उनके कंधे पर हाथ रखकर कहा—"मैं अपना अपराध अंगीकार करता हूँ, और माफ़ी माँगता हूँ। मुझे क्षमा करो। भूल इंसान से होती ही है। अगर इंसान भूल न करे, तो वह ईश्वर है। भूल और कमज़ोरी का नाम ही इंसान है।"

मिस ट्रैवीलियन ने सोफ़े के दूसरे कोने की ओर खिसकते हुए कहा—"मैं तुमसे बात नहीं करना चाहती। तुम्हारी लच्छेदार बातों में अब नहीं फँसने की। एक मरतबे फँसकर अपनी इज़्ज़त ख़ाक में मिला दी, अब दुबारा वह भूल नहीं करने की।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उनके समीप खिसककर, उनके कानों के पास अपना मुँह ले जाकर कहा—"अब तो बहुत सज़ा दे ली। अब कब तक......"

मिस ट्रैवीलियन ने सहसा उठकर कहा—"तुम मुझे क्यों परेशान करते हो?"

राजा प्रकाशेंद्र ने भी उठकर कहा—"इसलिये कि तुमने मुझे पागल बना दिया है। रात-दिन तुम्हारी ही मूर्ति मेरे नेत्रों के सामने घूमा करती है।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक वंकिम कटाक्ष-सहित कहा—"अगर यह सत्य होता, तो तुम इतनी देर कर न आते।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उन्हें बाहु-पाश में बद्ध करते हुए कहा—"क्या करूँ, जब रानी मायावती सो जाय, तब तो आऊँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने छूटने का प्रयत्न नहीं किया, उसी तरह कहा—"क्या स्लीपिंग डोज़ (सोने की दवा) नहीं दी?"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"अगर सलफ़ोनेल न खिलाया होता, तो फिर मैं किस तरह आने पाता। थोड़ी-सी ह्विस्की में सलफ़ोनेल का डोज़ पिलाया, तब उसे नींद आई। इसीलिये देर हो गई।"

मिस ट्रैवीलियन ने अपने को छुड़ाकर कहा—"तुम्हारा कौन विश्वास करे। जब तुम अपनी स्त्री को इस तरह ठगते हो, तब मुझे कब छोड़ोगे?"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"परंतु इसकी अपराधिनी तो

तुम्हीं हो। तुमने मुझे अपने मोह-पाश में बद्ध न किया होता, तो मेरा जीवन कुछ और होता।"

मिस ट्रैवीलियन ने पुनः उत्तेजित होकर कहा—"तब तुम जा सकते हो। मैं अपना मोह-जाल फैलाकर तुम्हें नष्ट नहीं करना चाहती।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उनके संगमरमर-जैसे स्कंधों पर अपना प्रेम-चिह्न अंकित कर कहा—"अब लौटना असंभव है। यह जीवन तो अब तुम्हारे ही क़दमों पर निछावर होगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने पीछे मुड़कर, एक मोहन कटाक्ष से कहा—"झूठ बोलना बनावटी मुहब्बत में गुनाह नहीं है। तुम्हारे-जैसे प्रेमियों का विश्वास करना......।"

मिस ट्रैवीलियन को राजा प्रकाशेंद्र ने बोलने नहीं दिया। उन्हें आलिंगन-पाश में बद्ध करके उनके बोलते हुए अधरों को अपने गरम-गरम अधरों से दबा दिया। मिस ट्रैवीलियन ने भी अपना शरीर ढीला कर दिया।

राजा प्रकाशेंद्र ने उन्हें पलँग पर बिठाते हुए कहा—"बनावटी मुहब्बत! तुम कहती हो कि मेरा प्रेम बनावटी है। तुम यह नहीं कह सकतीं—अपने हृदय से नहीं कह सकतीं। मैं कह सकता हूँ कि यह तुम्हारा कहना बनावटी है। यह तुम्हें मालूम है कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ, और इसीलिये तुम मुझे इस तरह ठुकराया करती हो।"

राजा प्रकाशेंद्र को मदिरा की मादकता एक नवीन आनंद की गुदगुदी पैदा कर मस्त बना रही थी। वासना की सुरभि से सुगंधित वायु-मंडल उन्हें बेहोश करने लगा। मिस ट्रैवीलियन अपने नेत्र उनकी ओर जमाए उनके हृदय में वह मोहकता पैदा कर रही थीं, जो बड़े-बड़े अजगर मृग-शावक के मुग्ध और कोमल हृदय में उत्पन्न करते हैं।

मिस ट्रैवीलियन ने एक प्रेम-चिह्न अंकित कर कहा—"तुमने तो मुझे पिलाया नहीं !"

जिस प्रकार स्विच दबाने से बिजली का दीपक चैतन्य हो जाता है, उसी प्रकार राजा प्रकाशेंद्र के नेत्र चमकने लगे। उन्होंने मिस ट्रैवीलियन को छोड़ दिया, और एक अलमारी खोलकर गिलास तथा बोतल निकाल लाए।

गिलास भरकर मिस ट्रैवीलियन के ओष्ठों में लगाते हुए राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"यह अमृत मुर्दों को भी ज़िंदा करता है।"

मिस ट्रैवीलियन ने मोहन कटाक्ष से कहा—"कहीं इसमें तो सलफ़ोनेल नहीं मिलाया ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने वह गिलास हटा लिया, और खुद पीकर कहा—"तुम्हारे लिये सलफ़ोनेल नहीं है।"

मिस ट्रैवीलियन ने बोतल और गिलास अपने हाथ में ले लिए। दूसरा पेग भरकर राजा प्रकाशेंद्र ने उन्मत्त स्वर में कहा—"पहले तुम पियो, तुमने तो अभी तक एक बूँद भी नहीं पिया। तुम्हारे पीने के बाद मैं पिऊँगा।"

यह कहकर उन्होंने पेग मिस ट्रैवीलियन को पिला दिया। दूसरा पेग राजा प्रकाशेंद्र ने पिया। दो-तीन पर ही विराम न था, पेग के बाद पेग ख़त्म होने लगे। सुरूर चढ़ने लगा।

मिस ट्रैवीलियन ने आवेश में झूमते हुए राजा प्रकाशेंद्र के गले से लिपटकर कहा—"सच कहना, तुम मुझे कितना प्यार करते हो ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने झूमकर कहा—"शराब से भी ज़्यादा।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"तुम मेरे लिये वह हीरे का इयरिंग नहीं लाए, जिसके लिये तुम कहते थे कि बेगम इशरतजहाँ का था, और तुम्हारे परदादा ने दो लाख रुपए में मोल लिया था, जब वारेन हेस्टिंग्स ने उन्हें फ़ैज़ाबाद में क़ैद कर दिया था ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने उछलकर कहा —"अरे, मैं तो बिलकुल भूल ही गया। वह मैं लाया हूँ, लेकिन........."

कहते-कहते उन्होंने अपनी जेब से एक ही हीरे की कटी हुई एक जोड़ी बालियाँ देते हुए कहा—"लो, पहनो। बेगम इशरतजहाँ से भी अधिक सुंदरी तुम हो।"

हीरे का प्रकाश बिजली के प्रकाश से मुक़ाबला करने लगा।

मिस ट्रैवीलियन ने अपना सिर राजा प्रकाशेंद्र के वक्षःस्थल पर डालते हुए कहा—"तुम्हीं पहना दो।"

राजा प्रकाशेंद्र ने सप्रेम वे बालियाँ उनके कानों में पहना दीं। केतकी की मादकता उन दोनों को मत्त करके बेसुधी के राज्य में भ्रमण कराने लगी।



(१३)

रानी मायावती की आँख उस वक़्त खुली, जब प्रकाश की प्रथम किरण पूर्व दिशा में क्षितिज की कालिमा को भेदकर सूर्य के आगमन की मौन सूचना देती है, और मुर्गे अपनी तूर बजाकर निद्रा-मग्न संसार को जगाने का प्रयत्न करते हैं। रानी मायावती का कलेजा धक से हो उठा। वह उठ बैठीं। बिजली का पंखा अविराम गति से चल रहा था। चारो ओर अंधकार छाया हुआ था। पहले उन्हें यह ज्ञान न रहा कि वह कहाँ हैं। एक प्रकार के अकथनीय भय से वह सिहर उठीं।

उन्होंने धीमे स्वर में पुकारकर कहा—"क्या सो गए ?"

राजा प्रकाशेंद्र के लिये यह संबोधन था, किंतु वह तो मौजूद नहीं थे, उत्तर कौन दे। रानी मायावती साहस कर उठीं, और स्विच दबाया। प्रकाश में देखा, राजा प्रकाशेंद्र अपने पलँग पर नहीं थे, और यह साफ़ ज़ाहिर हो रहा था कि कोई उस पर सोया भी नहीं था। रानी मायावती का माथा ठनका। वह भय-विह्वल दृष्टि से चारो ओर देखने लगीं। इसी समय मुर्ग़ा अपनी आवाज़ से दूसरे दिन के आगमन की सूचना देने लगा। उन्होंने तकिए के नीचे से घड़ी निकालकर देखा, ४ बजकर दस मिनट हुए थे।

प्यास से उनका गला सूख रहा था। सुराही से पानी उँडेलकर पिया। ठंडे पानी ने पहुँचकर घूमते हुए दिमाग़ में शांति पैदा की, और वह अपनी चारपाई पर बैठकर सोचने लगीं—

"मुझसे यह छल ! मुझे ठगना ! ठीक है। यह कोई नई बात नहीं मालूम होती; शायद बहुत दिनों से होता है। मैंने अक्सर मन

में ख़याल किया कि खाना खाने के बाद मुझे नींद क्यों लग जाती है, हालाँकि मैं न सोने का बहुत यत्न करती हूँ, लेकिन नींद के झोंके इतने ज़बरदस्त होते हैं, जो मुझे दबा लेते थे, और मैं लेटते ही सो जाती थी। कई मरतबे तो उन्होंने मुझे इस बात का उलाहना भी दिया कि तुम्हें आजकल बहुत नींद आती है, जिसका कारण मैं यह समझती थी कि मैं दिन-भर घूमती-फिरती हूँ। अपनी संस्था के निमित्त घर-घर मारी-मारी फिरती हूँ, इसलिये थकावट से सो जाती हूँ। लेकिन अब तो कुछ रंग ही दूसरा दिखाई देता है। यह सब उन्हीं की कृपा मालूम होती है। वह मुझे कोई सोनेवाली ओषधि पिला देते हैं, या किसी चीज़ में मिलाकर खिला देते हैं, और जब मैं सो जाती हूँ, तब कहीं चले जाते हैं।"

विचारते-विचारते रानी मायावती की आँखों से आँसू बहने लगे। हृदय में एक प्रकार की पीड़ा होने लगी। उनका पति विश्वासघाती है, यह वह सोच न सकीं, किंतु वह तो सत्य था, निष्ठुर सत्य था। प्रमाण सामने मौजूद था। वह फिर सोचने लगीं—

"तो क्या यह उन्हीं की छलना है? वह क्या अविश्वासी हैं? ऐसे देवोपम मनुष्य में यह अवगुण! विश्वास करने को मन नहीं होता, लेकिन फिर भी सत्य मालूम होता है। इतना तो निश्चय है कि वह सोए नहीं। मुझे सुलाकर आप कहीं चले गए। कहाँ गए? कैसे मालूम हो? देखूँ, मोटर पर गए हैं, या पैदल? रामा को बुलाकर मोटर दिखवाऊँ? नहीं, यह ठीक न होगा। नौकरों के कान में यह बात एक मरतबे गई कि इसकी चर्चा चारो ओर होने लगेगी। कौन जानता है, यह मेरा भ्रम हो। वह किसी आवश्यक कार्य से कहीं चले गए हों, और रात अधिक हो जाने से लौट न सके हों। उसी मित्र के यहाँ सो गए हों। उनसे पूछे बिना मैं क्या निर्णय कर सकती हूँ।

"अगर किसी काम से गए होंगे, तो मोटर पर गए होंगे, और मुझसे छिपाएँगे नहीं। किसी नौकर को साथ ले गए होंगे। शोफ़र तो साथ में ज़रूर होगा। तब मैं जाकर देख आऊँ कि मोटर गैरेज में है या नहीं।"

दूसरे ही क्षण रानी मायावती बरामदे से कमरे में गईं, और वहाँ भी स्विच दबाकर प्रकाश किया। देखा—राजा प्रकाशेंद्र का शाम का सूट टँगा हुआ था, परंतु टोपी, घड़ी और जूते ग़ायब थे, जिससे ज़ाहिर होता था कि वह कपड़े बदलकर कहीं गए हैं। अचानक उनकी दृष्टि दीवार में लगे हुए 'सेफ़' पर पड़ी। वह खुला था। उसे खुला देखकर उनका माथा ठनका। वह एक ही छलाँग में उसके पास पहुँचीं। हाथ डालकर देखा, उनके गहनों का डब्बा मौजूद था। क्षण-मात्र में उसे बाहर निकालकर खोल डाला। जड़ाऊ ज़ेवर प्रकाश में जगमगाने लगे। वेग से स्पंदित हृदय कुछ शांत हुआ। वह एक-एक ज़ेवर बाहर निकालकर देखने लगीं। सब मौजूद थे, सिर्फ़ दो ग़ायब थे—एक हीरों का हार, और दूसरा कानों की इयरिंग, दोनो बहुमूल्य। वह सेफ़ के अंदर ढूँढ़ने लगीं, किंतु उसमें वे न थे। सेफ़ की भी एक-एक चीज़ निकालकर देखी, लेकिन हार और इयरिंग का कहीं पता न था।

सुबह की सफ़ेदी निकल आई थी। वह कमरे से निकलकर बाहर आईं। नसीम-सहरी के झोंके उन्हें सांत्वना देने का प्रयत्न करने लगे। आकर राजा प्रकाशेंद्र का पलँग देखा, जो कह रहा था कि उस पर उनके पतिदेव सोए नहीं। धीरे-धीरे उन्होंने बिछावन उलट दी। अपनी चारपाई पर बैठकर कहने लगीं—'मेरे दो बहुमूल्य आभूषण ग़ायब हैं। इस सेफ़ की चाभी मेरे पास रहती है, आज नहीं है। उसी सेफ़ में लगी मिली है। चुरानेवाले ने ये ही

दो ज़ेवर क्यों चुराए ? बहुमूल्य ज़रूर थे, लेकिन वे हमारे वंश के आभूषण थे, जिन्हें सिर्फ़ किसी विशेष अवसर पर ही पहनने का आदेश मेरी सास का था। उन दोनो आभूषणों के साथ हमारे वंश और राज्य का कोई भेद छिपा था। जब मेरी सास मरने लगी थीं, तो उन्होंने सबको हटाकर मुझसे कहा था—'देखो, मैं तुम्हें आज रूपगढ़ के राजवंश की मर्यादा सौंपती हूँ। इस धरोहर को सुरक्षित रखना। जब तक ये दो आभूषण रहेंगे, तब तक तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति नहीं आएगी। इन्हें कभी अपने से जुदा नहीं करना। मेरी सास भी मुझे अपने अंतिम समय में देकर मरी थीं, और आज मैं तुम्हें सौंपकर मरती हूँ।' वे शब्द मुझे ज्यों-के-त्यों याद हैं। अगर यह किसी चोर का काम होता, तो वह दूसरे आभूषण क्यों छोड़ जाता ? यह किसी घर के मनुष्य का काम है, जो यह ज़ाहिर नहीं होने देना चाहता कि आभूषण चोरी गए हैं। मैं इन्हें इसी डर से बिलकुल नहीं पहनती थी। अपने जीवन में केवल उस दिन पहने थे, जब इस घर में आई थी, और गृह-प्रवेश का उत्सव हुआ था। इनके विषय में सिवा उनके और कोई नहीं जानता। अगर रामा को दोष दूँ, तो यह अन्याय होगा। वह इनके विषय में कुछ जानती भी नहीं। इसके अलावा इस सेफ़ का भेद तो मेरे और उनके सिवा कोई तीसरा व्यक्ति नहीं जानता। किसी को स्वप्न में भी यह ख़याल तक नहीं हो सकता कि यहाँ कोई सेफ़ है। उसका द्वार ही इतना गुप्त है। इसका बनानेवाला भी मर गया है, और वह यहाँ का नहीं, मेरे मायके बंगाल का है। अगर मान लो, किसी को इस सेफ़ के खोलने और बंद करने का भेद मालूम हो गया था, तो वह सिर्फ़ वे ही दो आभूषण क्यों लेगा ? लेने के लिये दूसरे भी बहुत थे, जिनका मूल्य दोनो से ज़रूर ज़्यादा होगा। तब फिर यह किसका काम है ? क्या यह भी उनका

काम है ? अगर उन्हें ज़रूरत थी, तो मुझसे क्यों न माँग लिए ? मैं देने से इनकार क्यों करती ? इस तरह चोरी करके क्यों लिया ? क्या उन्हें नहीं मालूम कि इनमें उनके वंश की मर्यादा निहित है ? और ले जाकर क्या किया ? अरे ! यह भी तो हो सकता है कि आज मेरे सो जाने के बाद कोई चोर चोरी के लिये आया हो, और चोरी कर रहा हो, तथा उन्होंने उसे पकड़ने का प्रयत्न किया हो, लेकिन वह भाग निकला हो, और उसी का पीछा करते-करते वह कहीं ठहर गए हों ? हाँ, यह भी संभव है।"

यह विचार आते ही रानी मायावती के नेत्रों की विषाद-कालिमा कुछ कम हुई, और छाती का बोझ हलका हुआ। उन्होंने अपने चारों ओर देखा। उस दृष्टि में कितना हलकापन था !

नीचे कुछ खड़खड़ाहट हुई, और दूसरे ही क्षण राजा प्रकाशेंद्र भयभीत दृष्टि से कमरे में प्रविष्ट हुए। रानी मायावती को देखकर उनका चेहरा सफ़ेद हो गया, और पैर डगमगाने लगे। उनके बाल बिखरे हुए थे, आँखें लाल थीं, शराब की गंध मुँह से निकल रही थी। ओष्ठ सूखे हुए थे, और मुख श्री-हीन था। रानी मायावती उनका यह विचित्र हाल देखकर सहम गईं। वह अवाक् दृष्टि से उनकी ओर देखने लगीं।

राजा प्रकाशेंद्र ने लड़खड़ाती ज़बान में कहा—"क्या तुम जाग गईं ?"

प्रश्न की विचित्रता ने रानी मायावती को चौंका दिया। उन्होंने कुछ तीक्ष्ण स्वर में उत्तर दिया—"हाँ, आपकी दवा कल कुछ थोड़ी मात्रा में मिली, जिससे मैं सूर्य निकलने के पहले-पहले जाग गई। क्यों, इससे तो आपको कष्ट ज़रूर हुआ होगा ?"

राजा प्रकाशेंद्र का हृदय बड़े वेग से काँप रहा था। रक्त की

धारा बड़ी तेज़ी से मुख की ओर दौड़कर उनका पर्दा-फ़ाश कर रही थी। उन्होंने भय-विह्वल दृष्टि से देखते हुए कहा—"तुम क्या कह रही हो, मैं नहीं समझा?"

रानी मायावती का संदेश उत्तरोत्तर दृढ़ता में परिणत हो रहा था, उन्होंने व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा—"आपका ही खेल, और आपकी समझ में नहीं आता? ताज्जुब है! मैं इससे अधिक क्या समझा सकती हूँ।"

राजा प्रकाशेंद्र की नसों में उत्तेजना पैदा होकर क्रोध उत्पन्न कर रही थी। उन्होंने कुछ तीव्र स्वर में कहा—"तुम क्या बकती हो? मैं कुछ सुनना नहीं चाहता।"

यह कहकर वह बाहर जाने लगे। क्रोध को देखकर छिपा हुआ क्रोध उमड़ पड़ता है। रानी मायावती ने सवेग आगे बढ़कर, उन्हें पकड़कर कहा—"सुनना नहीं चाहते, इसके क्या माने? आपको सुनना होगा। आपके कपट और चोरी का सारा हाल मुझे मालूम हो गया है। यह आपको मालूम रहना चाहिए कि मैं गुलाम हिंदू-घर की औरत नहीं हूँ, जो आपका यह अत्याचार सहन कर सकूँ।"

चोरी-शब्द का उच्चारण करते ही राजा प्रकाशेंद्र की दृष्टि सीधे उस सेफ़ पर जाकर रुक गई, जहाँ रानी मायावती के आभूषण रहते थे। सेफ़ बंद था। उनका कलेजा ज़ोर से धड़कने लगा।

रानी मायावती सक्रोध कहने लगीं—"आप चोरी भी करने लगे। अगर आप मेरे दूसरे ज़ेवर ले गए होते, तो मैं कुछ न कहती, लेकिन आप वे ज़ेवर कैसे ले गए, जो हमारे वंश की मर्यादा हैं, जिन्हें अम्माजी मुझे अपने आख़ीर वक़्त में दे गई थीं, और कह गई थीं कि इन्हें जिस दिन अपने से जुदा किया, उसी दिन विपत्तियों की शिकार होओगी। बोलिए, वे ज़ेवर आप कहाँ ले गए?"

राजा प्रकाशेंद्र ने दृढ़ कंठ से कहा—"अपने ज़ेवरों के बारे में तुम जानो, मैं क्या जानूँ? और, तुम्हें मुझे चोर बनाते हुए शरम नहीं आती! अगर मान लो, मैं ही ज़ेवर ले गया, तो मैं अपने ज़ेवर ले गया हूँ, तुम्हारे बाप के नहीं। मुझे यह अधिकार है कि मैं अपना माल किसी को भी दे दूँ।"

रानी मायावती ने जोश में आकर कहा—"क्या? तुम मालिक हो? तुम राज्य के भले ही मालिक हो, लेकिन राजवंश की मर्यादा की मालकिन मैं हूँ। वे ज़ेवर मेरे बाप के न थे, बल्कि मेरी सासजी के थे। और, वे तुम्हारी संपत्ति नहीं, बल्कि तुम्हारे उत्तराधिकारी की संपत्ति हैं। तुम्हें केवल व्यवहार करने का अधिकार है, किसी रंडी-मुंडी को देने का नहीं। तुम कुछ भी करो, मैं उसमें बाधा नहीं डालूँगी, लेकिन तुम्हें वे दोनो आभूषण वापस करने पड़ेंगे, लाने पड़ेंगे।"

राजा प्रकाशेंद्र ने ज्वलित कंठ से कहा—"अगर न लाऊँ, तो?"

रानी मायावती ने ज़ोर से कहा—"न लाऊँ के क्या माने, तुम्हें लाना पड़ेगा, हुक्मन लाना पड़ेगा।"

राजा प्रकाशेंद्र ज़ोर से हँस पड़े। उनके कंठ की कर्कशता ने रानी मायावती को चौंका दिया।

राजा प्रकाशेंद्र ने जाते हुए कहा—"मैं औरतों की गुलामी नहीं करता। मैं कहता हूँ कि मैं किसी को दे आया हूँ। अगर तुम्हारी हिम्मत हो, तो वापस मँगवा लेना।"

यह कहकर वह बाहर हो गए। असहाय रमणी देखती रही।

---

(१४)

"किस भाग्यवान् की चिंता में लवलीन हो, बहन !" मनोरमा ने हँसते हुए कुसुमलता से कहा।

कुसुमलता अपने कमरे में बैठी किसी उलझी हुई गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न कर रही थी। मनोरमा की आवाज़ ने उसे चौंका दिया। उसने उठकर स्वागत करते हुए कहा—"भाग्यवान् की चिंता में लवलीन ! यह तो तुम्हारे ही हिस्से में आया है। हाँ, चिंता अवश्य मेरे ही पीछे हाथ धोकर पड़ी है।"

मनोरमा ने सप्रेम उसके गले में हाथ डालकर कहा—"लेकिन तुम भी तो शीघ्र ही सिंगल से डबल होनेवाली हो।"

कुसुमलता ने मुस्किराकर कहा—"नहीं, यह आशा नहीं है। मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अपना पुनर्विवाह नहीं करूँगी।"

मनोरमा ने चकित कंठ से कहा—"क्यों, क्या हुआ ! यह विचार क्यों ?"

कुसुमलता ने गंभीर होकर कहा—"यह इसलिये कि विवाहित जीवन से अकेला जीवन अच्छा है। अकेले जीवन में केवल अपनी ही चिंता होती है, दूसरे की नहीं।"

मनोरमा ने कुसुमलता का कपोल चूमकर कहा—"अगर कहीं डॉक्टर साहब ने यह सुन लिया, तो वह कल ही संन्यासी हो जायँगे !"

कुसुमलता ने मुस्किराकर कहा—"हो जायँ, मेरी बला से !"

मनोरमा ने कुरसी पर बैठते हुए कहा—"इसका जवाब तो मैं कुछ दिन बाद दूँगी। सचमुच बहन, तुम्हारे मन की थाह नहीं मिलती। तुम बड़ी गहरी हो।"

कुसुमलता ने हँसकर कहा—"क्यों, क्यों? मैं गहरी क्यों हूँ?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"तुम्हारी बातें हमेशा पोलिटिकल होती हैं। कहती कुछ हो, करती कुछ, और बतलाती कुछ हो। इन तीन-चार महीनों में तुममें ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ आ गया है। मैं कभी-कभी यह सोचती हूँ कि शायद मेरी प्यारी सखी बदल तो नहीं गई।"

कुसुमलता ने उठकर एक गिलास सुराही से भरते हुए कहा—"मैं भी यही देखती हूँ, मेरी प्यारी सखी मनोरमा भी तो पहली-जैसी नहीं रही। इन तीन-चार महीनों में उसमें भी फ़र्क़ आ गया है। और, पोलिटिकल मैं नहीं, तुम हुई हो।"

मनोरमा ने चकित होकर कहा—"मैं! पोलिटिकल! यह तो तुम ताज्जुब में डालती हो। अगर मुझमें कोई तबदीली हुई है, तो उसका कारण भी है, क्योंकि मुझे तो अपने सिवा किसी दूसरे की भी परवा करनी पड़ती है।"

कुसुमलता ने पानी पीते हुए कहा—"तभी तो कहती हूँ।"

मनोरमा ने हँसकर कहा—"अब मालूम हुआ!"

कुसुमलता ने कुरसी पर बैठते हुए कहा—"हाँ, इसीलिये तो मैं विवाह नहीं करना चाहती। मुझे डर है, कहीं मैं भी अपनी सखी की तरह न हो जाऊँ कि अपने बचपन के साथियों को भूल जाऊँ!"

मनोरमा ने ज़ोर से हँसकर कहा—"अच्छा, यह बात है!"

कुसुमलता ने हँसने में संयोग देते हुए कहा—"हाँ, यही बात है। पहले तो मेरी सखी को बिना मुझसे मिले चैन नहीं पड़ता था, और अब हफ़्तों दर्शन तक नहीं होते, मिलने और बात करने की कौन कहे। मैं भी डरती हुई आने की हिम्मत नहीं करती, क्योंकि मेरे आने से दो आदमियों के सुख में बाधा पड़ती है।"

मनोरमा ने सलज्ज कंठ से कहा—"कहती तो हूँ कि तुम बड़ी गहरी हो। इतनी बात कहने के लिये कितनी बड़ी भूमिका बाँधी !"

कुसुमलता ने सप्रेम मनोरमा के गले में हाथ डालकर कहा—"तो क्या मैं झूठ कहती हूँ ?"

मनोरमा ने अपने नेत्र नत करते हुए कहा—"सखी, अब तुम्हें शिकायत का मौक़ा नहीं मिलेगा। वह शीघ्र ही जानेवाले हैं।"

कुसुमलता ने चौंककर कहा—"क्या, मिस्टर वर्मा जानेवाले हैं ?"

मनोरमा ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—"हाँ, वह किसी तरह नहीं मानते। कहते हैं, ससुराल में बहुत दिन ठहरना अच्छा नहीं होता। वह अगले बृहस्पतिवार को इलाहाबाद जायँगे, और फिर २१ अगस्त को इँगलैंड के लिये रवाना हो जायँगे। उन्होंने यह प्रोग्राम निश्चित किया है।"

कुसुमलता ने धड़कते हुए हृदय से कहा—"इतनी जल्दी ! मैं उन्हें किसी प्रकार नहीं जाने दूँगी। अभी उन्हें आए हुए ही कितने दिन ! ससुराल में रहना क्या कोई गाली है या पाप ?"

मनोरमा का हृदय आज कई दिनों से रो रहा था। जब से राजेंद्रप्रसाद ने अपने प्रोग्राम की सूचना दी, तब से उसका सारा सुख काफ़ूर हो गया था।

उसने आहत कंठ से कहा—"वही जानें ! हमारी अम्मा तो उन्हें अपनी कोख का बेटा जानती हैं, जितना मुझे प्यार नहीं करतीं, उतना उन्हें चाहती हैं, और पापा, वह भी मुझसे अधिक उन्हें मानते हैं। लेकिन वह कुछ नहीं मानते, और बार-बार यही कहते हैं कि ससुराल में बहुत दिन रहना नहीं अच्छा। अब तुम कहो, तो शायद मानें।" कहते-कहते मनोरमा की आँखों में आँसू भर आए।

कुसुमलता ने सप्रेम उन्हें पोंछते हुए कहा—"तुम क्यों घबराती हो, मैं किसी तरह उन्हें नहीं जाने दूँगी।"

आश्वासन छिपी हुई वेदना को खोल देता है। मनोरमा बालिका की भाँति कुसुमलता से लिपटकर रोने लगी।

मनोरमा ने रोते-रोते कहा—"बहन, मैं नहीं जानती, क्यों मुझे इतना दुःख होता है, जब वह जाने का नाम लेते हैं। मैं सत्य कहती हूँ, मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस बार बिछुड़ने पर फिर मिलन नहीं होगा। न-मालूम कैसी आशंका से मेरा मन काँपता रहता है। ऐसा मालूम होता है कि कोई भयंकर छाया मेरे इस सुख-सौभाग्य को सदा के लिये कलुषित कर अपनी कालिमा में मेरा जीवन डुबो देगी। मैं उन्हें अपने से दूर नहीं करना चाहती, और वह निष्ठुर मुझे जलाने में ही आनंद अनुभव करते हैं।"

कुसुमलता के मन की ईर्ष्या मनोरमा के आँसुओं में डूब गई। उसके हृदय में पीड़ा होने लगी। वह प्रेम के साथ उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी।

मनोरमा कहने लगी—"अभी उस दिन तुम्हारे साथ सिनेमा से लौटी, तो उन्होंने कहा कि 'मन्नी, मैं अब जाऊँगा।' मैंने पहले समझा कि बग़ैर उनसे पूछे चली गई, इसीलिये वह गुस्सा हो गए हैं। बहुत तरह से उन्हें मनाया, लेकिन उन्होंने कहा कि वह गुस्सा नहीं हुए, बल्कि सचमुच जाना चाहते हैं, क्योंकि ससुराल में बहुत दिन रहना अच्छा नहीं होता, लोग बदनाम करते हैं। लोक-लाज का भय उन्हें बहुत है, इसलिये वह जाना चाहते हैं। मैं जब मना-मनाकर हार गई, तब तुम्हारी शरण आई हूँ। उन्हें किसी तरह रक्खो। उनके बिना मेरा जीवन मुझे भार मालूम होता है।"

मनोरमा की रोते-रोते हिचकियाँ बँध गईं।

कुसुमलता ने आश्वासित शब्दों में कहा—"मन्नी, तुम दुखी मत होओ। मैं मिस्टर वर्मा को किसी तरह न जाने दूँगी।"

मनोरमा ने कुसुमलता की ओर देखा—उसकी दृष्टि में कृतज्ञता का प्रकाश था।

इसी समय कमरे का दरवाज़ा खुला, और मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए प्रवेश किया। मनोरमा ने अपने नेत्र तुरंत पोंछ डाले, किंतु मिस ट्रैवीलियन ने देख लिया, और उस कमरे के वातावरण से उन्हें मालूम हो गया कि कोई कष्टमय समस्या उलझी हुई थी। उनकी हँसी तुरंत अंतर्हित हो गई।

उन्होंने क्षमा-याचना करते हुए कहा—"मैं न जानती थी कि आप लोग किसी गुप्त, किंतु दुःखद विवेचना में मशग़ूल थीं। मैं अनधिकार प्रवेश की माफ़ी चाहती हूँ, लेकिन मैं हर तरह से आप लोगों की सहायता के लिये तैयार हूँ, अगर मेरी सहायता की आवश्यकता हो। अगर कोई गुप्त बात न हो, तो मैं भी दुःख में हाथ बटाने के लिये तैयार हूँ।"

मनोरमा की हालत उत्तर देने लायक़ न थी। कुसुमलता ने हँसकर कहा—"धन्यवाद! आपसे ऐसी ही आशा है। लेकिन हम लोग कोई गुप्त बात नहीं कर रही थीं। आइए, तशरीफ़ रखिए। मनोरमा की आँख में मेरी उँगली लग गई, जिससे उसकी आँखों में आँसू आ गए। और कोई ख़ास बात नहीं है।"

कुसुमलता का बहाना इतना भद्दा था, जिससे मिस ट्रैवीलियन का संदेह सत्यता में परिणत हो गया कि कोई ख़ास अरुचिकर विषय पर दोनो सखियों की बातें हो रही थीं, किंतु यह देखकर कि दोनो वह भेद उससे गुप्त रखना चाहती हैं, वह चुप रहीं। मनोरमा चुपचाप अपने हृदय का आवेग शांत करने लगी।

मिस ट्रैवीलियन ने एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"आपने अपनी उँगली कैसे इनकी आँखों में लगा दी। क्या आँख-मिचौनी खेल रही थीं?"

यह कहकर मिस ट्रैवीलियन ज़ोर से हँस पड़ीं। उनकी मधुर हँसी मनोरमा का विद्रूप करने लगी।

कुसुमलता ने हँसकर कहा—"क्या हम लोगों की उम्र आँख-मिचौनी खेलने की नहीं रही?"

फिर विषय बदलते हुए कहा—"आपकी संस्था का क्या हाल-चाल है?"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्तर दिया—"हाल अच्छे ही हैं, आप लोग मेंबर क्यों नहीं बनतीं? रूपगढ़ की रानी साहबा ने यह निश्चय किया है कि हमारी संस्था की शाखाएँ हिंदुस्थान के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरों में खोली जायँ, और भारत की नारियों का एक सम्मेलन किया जाय। ख़र्च के लिये उन्होंने अपने पास से दस हज़ार की रक़म देने का वादा किया है। मैं इस समय उसी संबंध में आपके पास आई हूँ। आशा है, आप हमारे इस उद्योग में शरीक होकर हमारा प्रयत्न सफल करेंगी।"

कुसुमलता ने मुस्किराकर उत्तर दिया—"फ़रमाइए, आप हम लोगों से कैसी मदद चाहती हैं? हम लोग आपकी सेवा के लिये तैयार हैं।"

मिस ट्रैवीलियन ने कुछ गंभीर होकर कहा—"किसी भी सार्वजनिक संस्था में रुपयों की बड़ी ज़रूरत रहती है। मैं भी वही मदद पाने की उम्मेद करके आई हूँ। आप दोनो अमीर घरानों की हैं, बहुत आसानी से हमारी सहायता कर सकती हैं।"

कुसुमलता ने उत्सुकता से कहा—"कितनी सहायता की आप आशा रखती हैं?"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्तर दिया—"कम-से-कम आप दोनो सखियाँ ४००) तो हमें प्रदान करेंगी। इससे कम क्या कहा जाय।"

कुसुमलता ने मनोरमा की ओर देखा, और मनोरमा ने कुसुमलता की ओर।

कुसुमलता ने दृष्टि नत कर कहा—"यह तो आप जानती हैं कि हम लोग अपने घर की स्वतंत्र नहीं हैं, और न हम लोगों को इतना ख़र्च ही मिलता है।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर कहा—"यह तो ठीक है, लेकिन यह रक़म तो आप दोनों से शामिल माँगी गई है। मुझे तो उम्मेद थी कि आप लोग अकेले ही इतनी थोड़ी रक़म दे सकेंगी।"

कुसुमलता ने धीमे स्वर में कहा—"मुझे आपकी संस्था से पूर्ण सहानुभूति है, लेकिन आपको हमारी हालत तो अच्छी तरह मालूम है। हम लोग सिर्फ़ १०१) दे सकती हैं, उसके लिये भी हमें अपने वालिदैन से कहना पड़ेगा।"

मिस ट्रैवीलियन मानो आकाश से गिर पड़ीं। उन्होंने विस्फारित नेत्रों से कहा—"१०१), सिर्फ़ १०१)। यह तो आप ग़ज़ब कर रही हैं, और फिर कहती हैं कि यह भी रक़म अपने वालिदैन से माँगेंगी। मैं तो उम्मेद करती थी कि जस्टिस साहब और बैरिस्टर साहब से अलग-अलग रक़म मिलेगी। ख़ैर, अगर आप १०१) देना चाहती हैं, तो वही लूँगी, ज़्यादा दबाना मैं उचित नहीं समझती। हाँ, इतना अनुरोध ज़रूर है कि यह रक़म अपने पास से दें। जस्टिस साहब और बैरिस्टर साहब से मैं अलग वसूल करूँगी।"

कुसुमलता ने अपनी चेकबुक निकालकर १०१) की चेक मिस ट्रैवीलियन के नाम काट दी।

मिस ट्रैवीलियन ने धन्यवाद देकर उसे अपनी थैली में रख लिया, और कहा—"मैं संस्था की तरफ़ से आप लोगों को धन्यवाद देती हूँ, और आज से आप लोगों का नाम इंडो-योरपियन वीमेंस-

एसोसिएशन की संरक्षिकाओं में लिखा दूँगी। हमारे यहाँ का यह नियम है कि जो संरक्षिकाएँ होती हैं, उन्हें १०१) चंदा सालाना देना पड़ता है।"

कुसुमलता ने भेद-भरी दृष्टि से मनोरमा की ओर देखा, और फिर कहा—"धन्यवाद, किंतु अगर आप हमें अपनी संस्था की सदस्य बनाना चाहती हैं, तो हम लोग साधारण सदस्य ही बनना उचित समझती हैं। संरक्षिकाएँ तो रानी-महारानी ही हो सकती हैं।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर कहा—"ख़ैर, यह आपकी मरज़ी। कल चपरासी के हाथ मैं प्रवेश-पत्र भेजूँगी, आप भरकर भेज दीजिएगा, और क़ायदे की कारवाई हो जायगी। मैंने आपका बहुमूल्य समय नष्ट किया, क्षमा चाहती हूँ। मुझे अफ़सोस है कि मेरे असमय आने से आप लोगों को कष्ट और असुविधा, दोनो हुई। विशेषकर मैं मिसेज़ वर्मा से माफ़ी चाहती हूँ।" यह कहकर उन्होंने एक भेद-भरी दृष्टि से मनोरमा की ओर देखा।

मनोरमा ने एक मुस्किराहट के साथ उत्तर दिया—"आप अन्याय करती हैं। कुसुम बोल रही थीं, इसलिये बीच में बोलना मैंने उचित नहीं समझा। आइए, बैठिए, अभी आप कहाँ जाती हैं? कुछ जल-पान तो कर लें।"

मिस ट्रैवीलियन ने उठते हुए कहा—"नहीं, अब कष्ट करने की ज़रूरत नहीं। मैं अब जाऊँगी। मुझे चंदा इकट्ठा करना है। अभी तो मुझे दस हज़ार रुपया इकट्ठा करना है।"

यह कहकर वह कमरे से बाहर हो गईं।

---

(१५)

तीसरे पहर का समय था। भगवान् अंशुमाली की तीव्रता धीरे-धीरे शीतलता में परिणत होने लगी थी। धनिकों की नींद-समाप्ति होने की सूचना थी। बाबू राजेंद्रप्रसाद सोकर उठे ही थे, और आराम-कुरसी पर लेटे हुए उस दिन का समाचार-पत्र पढ़ रहे थे कि कुसुमलता ने हाथ में रैकेट लिए हुए प्रवेश किया। पद-ध्वनि सुनकर राजेंद्रप्रसाद ने घूमकर देखा, और कुसुमलता का वह मोहन रूप अनिमेष दृष्टि से देखने लगे।

कुसुमलता उस दिन भुवन-मोहन रूप से सज्जित होकर राजेंद्रप्रसाद पर विजय पाने आई थी। उन्हें अपनी ओर इस प्रकार निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए उसके हृदय की कली खिल गई। उसका परिश्रम सफल हुआ। विजय की पहली रण-भेरी सैनिकों के हृदय को जितना प्रफुल्लित करती है, उतना दूसरी या तीसरी नहीं। रमणी को उसी समय चरम सीमा की प्रसन्नता प्राप्त होती है, जब उसे यह विदित होता है कि उसने किसी के हृदय पर विजय प्राप्त कर ली है।

कुसुमलता ने एक मंद मुस्कान के साथ कहा—"नमस्ते। कहिए, आपके मिज़ाज तो खुश हैं?"

राजेंद्रप्रसाद की तंद्रा टूटी। उन्होंने चौंककर कहा—"क्षमा कीजिएगा, मैं समझा ....."

कुसुमलता ने वाक्य पूरा करते हुए तुरंत ही बीच में कहा—"आप समझे कि आपके हृदय की रानी मन्नी है।"

यह कहकर वह एक हृदय-भेदी कटाक्ष कर मुस्किरा दी। कामदेव का मोहन शर वसंतोत्सव के निर्माण में संलग्न हो गया।

राजेंद्रप्रसाद शरमा गए। उन्होंने लज्जित कंठ से कहा—"आप भी ग़ज़ब करती हैं। साधारण बात..."

कुसुमलता ने तुरंत ही फिर कहा—"अच्छा, मैं अपराधिनी हूँ, क्षमा कीजिए। मैंने आपके आराम में विघ्न डाला, जाती हूँ।"

यह कहकर वह जाने लगी। राजेंद्रप्रसाद ने उठकर कहा—"ठहरिए, ठहरिए, आप कहाँ जाती हैं। बेशक अपराध मेरा है, जो मैंने आपको बैठने के लिये भी न कहा, माफ़ी बख़्शिए, और तशरीफ़ लाइए।"

कुसुमलता दरवाज़े पर, ख़स की टट्टियों के पास, जाकर खड़ी हो गई, और मुँह फिराकर वंकिम कटाक्ष से देखने लगी।

राजेंद्रप्रसाद ने अनुनय-पूर्ण स्वर में कहा—"क्या आप चली ही जायँगी?"

कुसुमलता ने मुस्किराकर उत्तर दिया—"अगर चली जाऊँ, तो?"

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"अगर आप चली जायँगी, तो मैं आपकी शिकायत करूँगा, और तब आपकी अच्छी तरह ख़बर ली जायगी।"

कुसुमलता ने मुस्कान-सहित कहा—"किससे शिकायत करेंगे, मन्नी से! वाह ख़ूब, मुल्ला की दौड़ मसजिद तक! लेकिन क्या यह भी आपको मालूम है कि मन्नी ने आपके विरुद्ध असहयोग किया है?"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"आपने तो असहयोग नहीं किया। आप तो आकर तशरीफ़ रक्खें।"

कुसुमलता ने वापस लौटकर, एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"फ़रमाइए, क्या कहते हैं?"

राजेंद्रप्रसाद ने आराम-कुरसी पर बैठकर कहा—"सत्य ही

डॉक्टर आनंदीप्रसाद का भाग्य सराहनीय है, जिन्हें आप-जैसी रमणी-रत्न मिलेंगी ।"

कुसुमलता के मुख पर लालिमा दौड़ने लगी । किंतु प्रसन्नता के बजाय वह कुछ खिन्न हो गई । जिस प्रकार असमय भैरवी की रागिनी कलाकार के हृदय में खिन्नता उत्पन्न करती है, उसी तरह की खिन्नता कुसुमलता के हृदय में उत्पन्न हो गई ।

कुसुमलता ने मस्तक नत कर कहा—"उनके भाग्य की आलोचना सुनाने के लिये ही क्या आप मुझे बुला रहे थे ?"

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"नहीं, आपको बधाई देने के लिये । जिस दिन मुझे बाबूजी से मालूम हुआ कि आपके विवाह की बात तय हो गई, उस दिन से मुझे असीम आनंद है ।"

कुसुमलता ने व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा—"मुझे यह न मालूम था कि आप इतने उत्सुक हैं, वरना हाज़िर होकर स्वयं बधाई ले जाती ।"

राजेंद्रप्रसाद ने शरमाए हुए कंठ से कहा—"यह ज़रूर ग़लती हुई कि मैं हाज़िर नहीं हुआ, वह भी महज़ आलस्य से । लखनऊ की आबोहवा में काहिली, ऐशोआराम का पूरी तरह असर है, जिससे इन दो महीनों में मैं भी बिलकुल बेपरवा और सुस्त हो गया हूँ । सत्य ही उतना मेरा क़ुसूर नहीं, जितना आपके शहर का ।"

कुसुमलता ने व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा—"बेशक, प्रयाग तो स्फूर्ति के लिये मशहूर ही है, और शायद इसीलिये आप लखनऊ छोड़कर इतनी जल्दी भागना चाहते हैं !"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर उत्तर दिया—"आप ऐसा ही समझिए, आपको अख़्तियार है ।"

कुसुमलता ने गंभीर होकर कहा—"मैं क्या समझूँ, आपका ही यह कथन है । यह भी सुनने में आया है कि लखनऊ में जादू-

टोनावाले आए हैं, जो इस शहर में आए हुए मेहमानों को टोना लगाते हैं। मुमकिन है, यह दूसरी वजह आपके जाने की हो।"

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"जादूगर तो नहीं, लेकिन जादूगरनी बहुत हैं, जो अपने मोह-जाल में अभागे पथिकों को लुभाकर उनका देश भुला देती हैं।"

कुसुमलता ने एक वंकिम कटाक्ष-सहित कहा—"ऐसी कौन भाग्यवान् है? क्या मैं सुन सकती हूँ?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"मिसाल के लिये आप ही हैं।"

कुसुमलता ने ज़ोर से हँसकर कहा—"धन्यवाद। ख़ैर, मुझे आज मालूम हुआ कि मैं जादूगरनी भी हूँ। लेकिन मुझे आपके कथन में सत्यता बिलकुल नहीं मालूम पड़ती। अगर मैं जादूगरनी होती, तो क्या आप हफ़्तों तक मेरी ख़बर भी नहीं लेते। जादूगरनी कोई दूसरी ही भाग्यवती है, जिसके मोह-जाल में आप इस तरह उलझे हैं कि इस जन्म में निकल ही नहीं सकते।"

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"वह मोह-जाल तो है ही, इसके अलावा दूसरे भी तो हैं, उनसे दूर रहना कल्याणकारी है।"

कुसुमलता ने एक अंतर्भेदी दृष्टि से देखते हुए कहा—"आपको असहाय, निर्बल, निरीह नारी-जाति से इतना भय मालूम होता है! हम लोग तो अबला कहलाती हैं, फिर आपको क्या भय है? आप तो सबल पुरुष हैं।"

राजेंद्रप्रसाद ने अपनी दृष्टि नत कर उत्तर दिया—"नारी-जाति की निर्बलता में ही तो शक्ति भरी हुई है। यह वह शक्ति है, जो सबल पुरुष को अपना ग़ुलाम बनाए हुए है। दूसरी ग़ुलामी से तो कभी-न-कभी छुटकारा हो सकता है, परंतु इस ग़ुलामी से पुरुष-जाति आमरण मुक्त नहीं हो सकती।"

कुसुमलता ने दूसरा मोहन कटाक्ष निक्षेप कर कहा—"तो क्या आप भी अपने को ग़ुलाम समझते हैं ?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"दूसरे ग़ुलाम के ख़रीदने में रुपयों की ज़रूरत हो सकती है, परंतु मैं तो बिना मूल्य का ग़ुलाम हूँ।"

कुसुमलता ने भ्रू-कुंचित कर कहा—"यह तो आप नहीं कह सकते। छोटे बाबूजी ने आपको ख़रीदने में पंद्रह हज़ार नक़द दिए थे।"

कुसुमलता बाबू राधारमण को 'छोटे बाबूजी' के नाम से पुकारती थी। यह संकेत दहेज़ की ओर था, जो बाबू राधारमण ने राजेंद्रप्रसाद के विवाह में दिया था।

राजेंद्रप्रसाद ने लज्जित होकर कहा—"पंद्रह हज़ार तो सिर्फ़ एक ही की ग़ुलामी के लिये दिए थे, दूसरी की ग़ुलामी के लिये नहीं।"

कुसुमलता ने मुस्कान-सहित कहा—"अच्छा, तभी आप दूसरी की ग़ुलामी करने की क़ीमत वसूल करने के लिये इलाहाबाद वापस जाने की तैयारियाँ कर रहे हैं।"

कुसुमलता और राजेंद्रप्रसाद, दोनो हँसने लगे।

राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"अब देखता हूँ कि हार मानकर यहीं ग़ुलामी का दस्तावेज़ लिखना पड़ेगा।"

कुसुमलता ने तीसरा बंकिम कटाक्ष निक्षेप कर कहा—"इसी में कल्याण है। ज़रख़रीद ग़ुलाम ख़ुद अपनी क़ीमत दुबारा वसूल करने का मुस्तहक़ नहीं है।"

राजेंद्रप्रसाद ने अख़बार उठाते हुए कहा—"कितने दिन तक यह ग़ुलामी करनी पड़ेगी ?"

कुसुमलता ने मुस्किराकर कहा—"कितने दिन तक ! यावज्जीवन।

चूँकि आप अपने मुँह से अपने को ग़ुलाम तसलीम कर चुके हैं, इसलिये अब आपका कोई उज्र नहीं चल सकता। आपको हमारे इच्छानुसार रहना पड़ेगा। हमारी इच्छा बिना आप एक क़दम इधर-उधर नहीं जा सकते।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"ऐसा कठिन नियंत्रण! लेकिन क्या आपको यह मालूम नहीं, अँगरेज़ी राज्य में ग़ुलामी-प्रथा बंद हो गई है?"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"वह ग़ुलामी दूसरी है, और यह दूसरी। पहली व्यावहारिक है, और यह प्रेम की। प्रेम की ग़ुलामी का अंत न कभी हुआ है, और न होगा। हमारी ग़ुलामी प्रेम की ग़ुलामी है। हम लोग प्रेम से ग़ुलाम बनाती हैं, और ग़ुलाम को अपने हृदय के उस गुह्य स्थान में छिपाकर रखती हैं, जहाँ वायु स्पर्श नहीं कर सकती, प्रकाश देख नहीं सकता, और सांसारिक शक्तियाँ जान नहीं सकतीं। जहाँ केवल आत्मा का आवागमन है, और मन की पहुँच।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसी के साथ कहा—"अगर मैं ऐसा भाग्यशाली ग़ुलाम हूँ, तो फिर जाने का नाम नहीं लूँगा।"

कुसुमलता ने तुरंत ही कहा—"आपको अपने शब्द रखने पड़ेंगे। आप कह रहे हैं कि मैं जाने का नाम नहीं लूँगा। बस, हो चुका। अब आप हमारी सखी की आज्ञा बिना एक क़दम भी इधर-उधर जाने का नाम नहीं ले सकते। मनुष्य की साख ज़बान है।"

राजेंद्रप्रसाद ने चौंककर कहा—"यह क्या आप ग़ज़ब कर रही हैं, मज़ाक़-मज़ाक़ में आप मुझे बाँध रही हैं।"

कुसुमलता ने भ्रू-कुंचित करके कहा—"मज़ाक़! मैं आपसे मज़ाक़ नहीं कर रही थी। मैं तो आपसे बातें कर रही थी।"

राजेंद्रप्रसाद ने अधीर होकर कहा—"यह तो आपका अन्याय है, जो इस तरह बातों में उलझाकर मुझे मेरे ही शब्दों में बाँध रही हैं।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"मैंने वे शब्द कहने के लिये आप से नहीं कहा था। आपने स्वयं कहा, अब उन्हें निबाहना आपके हाथ में है। अगर अपनी साख खोना हो, तो शौक़ से आप जा सकते हैं, लेकिन यह याद रखिए, बिना साख के आदमी की क़द्र नहीं होती।"

राजेंद्रप्रसाद चिंता में निमग्न हो गए।

कुसुमलता ने उठते हुए कहा—"चलिए, आज आपके साथ मैं टेनिस खेलना चाहती हूँ, इसीलिये आई हूँ।" फिर द्वार के पास ज़ोर से पुकारकर कहा—"मन्नी, यहाँ आओ।"

दूसरे ही क्षण मनोरमा ने प्रवेश किया।

कुसुमलता ने उसे संबोधन कर कहा—"भई, मैंने तो बाज़ी जीत ली। उनके मुँह से यह कहला दिया कि वह तुम्हारी आज्ञा बिना इलाहाबाद जाने की कौन कहे, एक क़दम भी इधर-उधर जाने का नाम नहीं लेंगे। अब तुम अपनी वस्तु सँभालो।"

यह कहकर वह हँसने लगी।

मनोरमा ने धीमे स्वर में कुसुमलता से कहा—"धन्यवाद! तुमने कैसे इतनी जल्दी इन्हें अपने वश में कर लिया?"

राजेंद्रप्रसाद ने उठकर कहा—"जो तुम न कर सकीं, वह तुम्हारी सखी ने कर लिया। मैं अपने शब्दों में आप ही बँध गया। ख़ैर, अभी न जाऊँगा। तुम्हारी सखी के विवाह की मिठाई खाकर जाऊँगा। ठीक ही हुआ, इस बहाने से मिठाई तो खाने को मिलेगी।"

मनोरमा ने मुस्किराकर कहा—"अंगूर खट्टे हैं। मिठाई-विठाई कुछ खाने को नहीं मिलेगी, यह कुछ उम्मेद न रखिए।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"अच्छा, अब आप भी ज़ोरावर हो गईं।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"पिंजड़े में बँधे शेर को कौन नहीं कोंचा मारता!"

तीनो की हँसी से कमरा गूँज गया। कुसुमलता धीरे-धीरे कमरे के बाहर हो गई।

राजेंद्रप्रसाद ने मनोरमा से कहा—"चलो, आज टेनिस खेलें। कुसुमलता निमंत्रण दे गई हैं। तुम भी खेलोगी?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"आप और कुसुमलता खेलिए, मैं देखूँगी।"

राजेंद्रप्रसाद रैकेट लेकर कमरे के बाहर हो गए, और पीछे-पीछे मनोरमा भी चली गई।

ज्योत्स्ना की धवल आभा ने रानी मायावती को मुग्ध करना चाहा, लेकिन वह अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुई, लज्जित होकर मलीन हो गई, और उनसे समवेदना प्रकट करने लगी। उन्होंने आकाश की ओर देखा—धूल-धूसरित वायु-मंडल से रजनीपति अपनी सहानुभूति का संदेश दे रहे थे। रानी मायावती की दृष्टि उनकी ओर स्थिर हो गई। बँधा हुआ आवेग निकलने के लिये व्याकुल होने लगा। आँखें कलेजे का रस निचोड़कर हृदय में धधकती हुई अग्नि को शांत करने के प्रयत्न में उन्माद के उता-वलेपन-सी उमड़ने लगीं, लेकिन अभागा मन किसी तरह शांत नहीं होता था। वह कहने लगीं—

"अविश्वास विश्वास की हत्या की समाप्ति है, सुख का अंत है, आनंद की इति है, सुहाग का प्रस्थान है, अभिमान का मरण है, और स्वामिगर्विता की निविड़ कालिमा से आवृत श्यामली संध्या है, अभागे हृदय का क्रंदन है, वेदना की आह है, करुणा का विलाप है, जिसे केवल भगवान् की दया का एकमात्र सहारा है। और, फिर पति पर अविश्वास! प्रलय की भयंकर पीड़ा का आभास है। रमणी की जीवन-नदी का सागर पति है, जिसकी ऊर्मि-माला के धवल फेन की भीनी ओट में उल्लास खेलता है, सुहाग नाचता है, अभिलाषा रंग-बिरंगे कपड़े पहनकर पति के विशाल, सुनील वक्ष पर केलि करती हुई, उस अगाध प्रेमांबुनिधि की ओर चकित, विस्मित और मुग्ध दृष्टि से देखती हुई उद्वेलित फेन-राशि के साथ हिंडोला झूलती है। उस स्वप्न का नाश प्रेम की समाधि है।

"देवता-जैसा तेजोमय, कार्त्तिक-जैसा विद्वान्, अश्विनीकुमारों-जैसा सुंदर, कामदेव-जैसा श्रीमान्, इंद्र-जैसा राजसी मेरा स्वामी है, परंतु देवतों में चंद्र कलंकी है, कार्त्तिकेय में मोर की सवारी का दोष है, अश्विनीकुमारों में केवल वैद्य-विद्या जानने का दोष है, कामदेव में अंग-हीन होने का शाप है, और इंद्र में सहस्राक्ष की पाप की छाप है, वैसे ही मेरे पतिदेव में विश्वासघाती होने का कलंक है, जो मेरे लिये वृश्चिक-दंशन से भी अधिक पीड़ाकारक है ! वह विश्वासघाती हैं, सोचकर हृदय में एक हूक उठती है, जिसकी फूत्कार से मेरी साध की गौरव-गरिमा काँच के टुकड़ों की भाँति टुकड़े-टुकड़े हो जाती है, जिनमें जलानेवाली लपटें निकलने लगती हैं, जो मेरी सुहाग की चादर को जलाती हैं, और मेरे सौभाग्य को राख करने में सन्नद्ध होती हैं । जिसके विचार-मात्र से हृदय में मुर्ग़ बिस्मिल की तड़पन से अधिक तड़पन होने लगती है ।"

"वह क्यों अविश्वासी बने ? क्या मुझमें सौंदर्य नहीं, रूप नहीं, प्रेम नहीं ? है, लेकिन उन्हें लुभाने के लिये पर्याप्त नहीं । वह कौन है, जिसने मेरे सौभाग्य में आग लगाई है, मेरे सुख-स्वप्न को भंग कर दिया है ? मैं रमणी हूँ, नारी हूँ, जिसे अबला कहते हैं, लेकिन मैं प्लेटफ़ार्म पर खड़े होकर बराबर के अधिकार के लिये स्पीच देती हूँ, अंतरंग सभाओं में रेज़ुलेशन पास करती हूँ कि स्त्रियाँ पुरुषों की ग़ुलाम नहीं हैं; सामाजिक बंधनों के तोड़ने का बीड़ा उठाया तो मैंने ही था । कैसे सुख-स्वप्न देखने में मैं बेसुध थी, और यह कैसा दुःस्वप्न सामने आया, जो सत्य है । मैं कल्पना के संसार में विचर रही थी, सोचती थी कि वह कौन दिन होगा, जिस दिन मैं अपने देश की स्त्रियों की ग़ुलामी तोड़कर उनके आशीर्वाद का पात्र बनूँगी; लेकिन अब तो कुछ और ही नज़र आता है । वह स्वप्न अब कभी सत्य में परिणत नहीं होगा । 'सीने में आग लग गई

घर के चिराग़ से।' बिलकुल सत्य है। जिस पर मुझे नाज़ था, फ़ख़्र था, अभिमान था, वह नहीं रहा। सत्य असत्य हो गया; देवता पशु हो गया; राव रंक हो गया! मेरी पूजा की वेदी कलुषित हो गई, पाप की छाया से अपवित्र हो गई। यह हिंदू-वैवाहिक जीवन की पवित्रता का ख़ून है, जो गला फाड़कर चिल्ला रहा है, लेकिन मैं क्या करूँ, कोई उपाय नहीं। हिंदू-समाज में इस मर्ज़ का कोई इलाज नहीं। स्त्री और पुरुष का बंधन यावज्जीवन रहनेवाला है। पुरुष फिर भी स्त्री को त्याग सकता है, लेकिन स्त्री क्या करे? क्या वह पुरुष को त्याग सकती है? सामाजिक नियम ऐसा करने की आज्ञा नहीं देते। क्या मैं क़ानूनन् अपने पति के अपने निकट आने में, अपने शरीर का स्पर्श करने में बाधा डाल सकती हूँ? नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकती। पति को मेरे शरीर पर उस वक़्त तक अधिकार है, जब तक इसके एक भी अवयव में जान है। दासता का इससे ज्वलंत उदाहरण और कहाँ मिलेगा? हिंदू-समाज— संसार की आदिम समाज, सभ्यता की शिरोमणि समाज, क़ानून की प्रथम प्रवर्तक समाज में इस अपराध का पुरुषों के लिये क्या दंड है? स्त्री तो कलुषित हो सकती है, किंतु क्या पुरुष पाप की छाप से अंकित होता हुआ भी पवित्र है? क्या यह न्याय है? यह पक्षपात का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। पश्चिमीय क़ानून में इसका प्रतिबंध है। महात्मा ईसा वास्तव में ईश्वर का संदेश लेकर ही अवतीर्ण हुए थे, जिन्होंने पुरुष को एक समय में केवल एक ही विवाह करने का आदेश दिया। ईसाई-धर्म में स्त्री रहते पुरुष दूसरा विवाह नहीं कर सकते, और स्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने कलंकी पति से बंधन-विच्छेद कर लें। परंतु हमारे हिंदू-समाज में क्या है? स्त्री की मान-मर्यादा और कोमलता का बिलकुल ख़याल ही नहीं किया गया, जब हिंदू-शास्त्रकार क़ानून बना रहे थे। उनके

लिये स्त्रियाँ केवल भोग की वस्तु हैं, पैर की जूती हैं, संतान पैदा करने की मशीन हैं। इस बात पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया कि वे भी वैसी ही मनुष्य हैं, जैसे वे स्वयं हैं, उनके हृदय में भी वही जज़्बात हैं, अरमान हैं, भाव हैं, जो उनमें हैं, वे भी प्रकाश देखकर प्रसन्न होती हैं, वायु से जीवित रहती हैं, अन्न से पलती हैं, और क्रोध, ईर्ष्या, दया, अनुकंपा, सुख, दुःख आदि अनुभव करती हैं, जैसे वे स्वयं अनुभव करते हैं। यदि पुरुष अपनी स्त्री को व्यभिचारिणी जान लेता है, तो वह उसका वध कर डालता है, परंतु यदि स्त्री पुरुष को व्यभिचारी जान ले, तो स्त्री क्या करे? कोई उपाय नहीं है। बल और शक्ति सदा से विजयी रहे हैं, यही संसार का नियम है। पुरुष बली है, शक्तिशाली है। वह 'आथेलो' की तरह 'डेसडीमोना' का गला घोट देता है, लेकिन निर्बल, कोमलता की पुतली स्त्री अपने आँसू बहाकर इस हृदय की आग को शांत करने का यत्न करती है। ईश्वर की सृष्टि में कितना अन्याय है!

"तलाक़ वैवाहिक ग़ुलामी का मुक्ति-मार्ग है, स्त्री-स्वाधीनता की सनद है। यदि आज तलाक़ की प्रथा हिंदू-समाज में व्यवहृत होती, तो कितना श्रेष्ठ होता! मैं अपनी ग़ुलामी की ज़ंजीर उसी तरह तोड़ डालती, जिस तरह कच्चे धागे को एक बालक तोड़ डालता है, और तब उन्हें मुँह तोड़ जवाब मिलता। परंतु मैं कहाँ पुकारूँ, मेरी फ़रियाद कौन सुनेगा? अगर किसी कोर्ट का सहारा लूँ, तो जवाब मिलेगा—तुम हिंदू-नारी हो, तुम्हारी सहायता करने में हम असमर्थ हैं। यदि समाज की शरण जाऊँ, तो नेता कहेंगे—"सब्र करो, पति को सन्मार्ग पर लाओ, पति की निंदा न करो, वह कलुषित है, लेकिन फिर भी उसकी पूजा करो, उसी में तुम्हारा कल्याण है। यदि मा-बाप की शरण जाऊँ, तो वे अपनी गोद में मुझे स्थान तो देंगे, लेकिन उस रोग को दूर करने में असमर्थ होंगे, जिसमें मैं

ग्रस्त हूँ। उनसे दया की आशा कर सकती हूँ, लेकिन प्रतिशोध की नहीं। हिंदू-नारी की दशा कितनी शोचनीय है!

"परंतु मैं अपनी शक्ति भूलती हूँ। मैं एक सभा की नेत्री हूँ, अपनी स्त्री-जाति का नेतृत्व करती हूँ। मुझे दुर्बल होकर, भीरु होकर यह अन्याय सहन नहीं करना चाहिए। क़ानून-सभा में तलाक़ का क़ानून बनवाना मेरा परम धर्म है। स्त्री-जाति को, जो गुलामी के बंधन में बँधी सो रही है, जगाना मेरा परम कर्तव्य है, जिससे वह उठकर पुरुष-जाति की बर्बरता से लड़े, और अपने लिये स्वच्छंद मार्ग निर्धारित करे।

"किंतु उस अबोध शिशु का क्या होगा, जो मेरे गर्भ में है, और रूपगढ़-राज्य का भावी स्वामी है, मेरे हृदय की साध और वंश का प्रतिनिधि है, जिसके रूप में मेरा स्वरूप निहित है? जब वह बड़ा होकर पिता की कलंक-कहानी सुनेगा, माता का पिता से विरोध जानेगा, तब उसके कोमल हृदय में क्या भाव उठेगा? वह अपने पिता के अन्याय, अविश्वास को जानकर क्या कहेगा? क्या उसका मस्तक शरम से नत न होगा? क्या उसका जीवन उसके लिये भार-रूप न हो जायगा? क्या मैं उसके जीवन को, उसके सुख को, उसकी आशाओं को छिन्न-भिन्न नहीं कर दूँगी? अपनी आग में उसे भी जला दूँगी? हृदय सिहर उठता है। नहीं, मैं यह नहीं करूँगी। अपना जीवन नष्ट कर उसका जीवन नष्ट नहीं करूँगी। अपने शाप की छाया उस पर डालकर कलुषित नहीं करूँगी। यह दुःख मैं स्वयं भोगूँगी, परंतु उसे अपने दुःख का भागी नहीं बनाऊँगी।"

रानी मायावती शिथिल होकर संगमरमर की बेंच पर लेट गई। शीतल पत्थर ने अपनी शीतलता से उनकी हृदय-अग्नि को शांत करना चाहा। चंद्रिका शीतल मयूखों से उस उत्तप्त उफ़ान को दूर करने का उद्योग करने लगी। समीर मलय-वन से चंदन का अंश

लाकर, उनके शरीर पर लेपकर ज्वाला को कम करने का उपचार करने लगा। मगर वे अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुए। रानी माया-वती को शांति नहीं मिली। वह अपनी उलझी हुई गुत्थियाँ सुलझाने में ही व्यस्त रही।

---

(१७)

बटलर रोड पर जस्टिस सर रामप्रसाद की विशाल अट्टालिका रंग-बिरंगे विद्युद्दीपकों के प्रकाश से जगमगा उठी। बँगले के बाहर बाग़ में ही मेहमानों के लिये प्रबंध किया गया था, जहाँ मधुर ध्वनि से पुलिस-बैंड बज रहा था। जगह-जगह कुरसियाँ और मेज़ें लगी हुई थीं, जो विद्युत्-प्रकाश में चमक रही थीं। आमंत्रित मेहमान आते, और स्वेच्छा-पूर्वक जहाँ-तहाँ बैठकर बातें करते। द्वार पर सर रामप्रसाद एक मंद मुस्कान के साथ उनका स्वागत करते, और दो-एक बातें करने के बाद निमंत्रित सज्जन चले जाते। निमंत्रित व्यक्तियों में थे राजा प्रकाशेंद्र और मिस ट्रैवीलियन भी। कुसुमलता उस दिन ख़ास तौर पर राजेंद्रप्रसाद को पकड़ लाई थी। चारो ओर आनंद-समारोह का समुद्र उमड़कर सबको चकित कर रहा था।

रात्रि के लगभग नौ बजने आए थे, लेकिन डॉक्टर आनंदीप्रसाद का कहीं पता न था। सर रामप्रसाद और बाबू राधारमण व्यग्रता से उनकी राह देख रहे थे। सर रामप्रसाद ने अपनी घड़ी देखते हुए कहा—"नौ बजकर दस मिनट हो गए, लेकिन डॉक्टर आनंदीप्रसाद अभी तक नहीं आए?"

सर रामप्रसाद के कंठ-स्वर से चिंता और उद्वेग प्रकट हो रहे थे।

बाबू राधारमण ने सिगार का धुआँ छोड़ते हुए कहा—"हाँ, अभी तक नहीं आए। क्या किसी को बुलाने भेजूँ?"

सर रामप्रसाद ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"क्या बुलाना पड़ेगा?"

बाबू राधारमण ने सिगार की राख झाड़ते हुए कहा—"हर्ज क्या है। अभी काफ़ी समय है।"

इसी समय एक मोटर आकर रुकी, और डॉक्टर आनंदीप्रसाद उससे निकलते हुए दिखाई दिए। राजा प्रकाशेंद्र, जो घूमते-घूमते वहाँ आ गए थे, तपाक से आगे बढ़े, और स्वागत करते हुए कहा - "हलो डॉक्टर साहब, आपने हम लोगों से बहुत देर तक इंतज़ार करवाया। आज आप कहाँ तशरीफ़ ले गए थे ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्किराकर राजा प्रकाशेंद्र से हाथ मिलाया, और धीमे स्वर में कहा—"आज एकाएक कुछ लड़के आ गए। उनसे बात करने में देर हो गई। मेरी वजह से आप लोगों को कष्ट हुआ, इसकी माफ़ी माँगता हूँ।"

सर रामप्रसाद ने आगे बढ़कर, हाथ मिलाते हुए कहा—"नहीं-नहीं, कोई असुविधा नहीं हुई। हाँ, आपको ज़रूर कष्ट हुआ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्कान-सहित कहा—"नहीं, मुतलक़ नहीं। यह आपकी विशेष कृपा है, जिसके लिये मैं हृदय से धन्य-वाद देता हूँ।"

सर रामप्रसाद ने बाबू राधारमण का परिचय करवाते हुए कहा—"आप लखनऊ के प्रमुख बैरिस्टर मिस्टर राधारमण हैं।" और, फिर बाबू राधारमण की ओर देखकर कहा—"आप लखनऊ-विश्वविद्यालय के फ़िलॉसफ़ी के प्रोफ़ेसर डॉक्टर आनंदीप्रसाद और विश्व-विख्यात पुस्तक 'हिंदू-फ़िलॉसफ़ी' के रचयिता हैं।"

दोनो ने हाथ मिलाया।

बाबू राधारमण ने प्रशंसा करते हुए कहा—"मुझे वह पुस्तक देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वास्तव में वह एक अद्भुत वस्तु है। हमारी सभ्यता का वास्तविक दिग्दर्शन उसी पुस्तक में देखने को मिलता है। डॉक्टर साहब, ऐसी गवेषणा-पूर्ण पुस्तक लिखने के लिये आप हमारी बधाई के पात्र हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने एक मंद मुस्कान-सहित कहा—"अगर

उस पुस्तक से आपका किंचित् मनोरंजन हुआ, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझता हूँ।"

जिस प्रकार चुंबक के पास लोहा अपने आप खिंचकर आ जाता है, उसी तरह दूसरे मेहमान भी वहाँ आकर एकत्र हो गए। उनमें राजेंद्रप्रसाद भी थे।

राजेंद्रप्रसाद को देखकर सर रामप्रसाद ने उनका परिचय डॉक्टर आनंदीप्रसाद से करवाया। डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने परिचित होने के बाद कहा—"आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, और यह जानकर और आनंद हुआ कि आप बैरिस्टर साहब के जामाता हैं। आपके नाम से मैं भली भाँति परिचित था, क्योंकि आपने फ़िलॉ-सफ़ी में इलाहाबाद-युनिवर्सिटी का रिकार्ड बीट किया और इसी-लिये आपको छात्र-वृत्ति भी मिली है। मैं आपको हृदय से बधाई देता और आपकी उन्नति चाहता हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने संकुचित होकर, सिर नत कर कहा—"धन्यवाद! परंतु आप भी उसी युनिवर्सिटी के उज्ज्वल रत्न हैं। और, फिर इस समय तो आपने समग्र सभ्य संसार को चकित कर रक्खा है। आप-जैसे विद्वान् को गुरु-भाई जानकर किसका सिर गौरव से उच्च न होगा।"

इसी समय राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"मिस्टर वर्मा का कथन सत्य है। मैं भी उस गौरव से वंचित नहीं हूँ, बल्कि हम दोनो ने तो एक साथ ही चार साल तक पढ़ा, और साथ ही डिगरी ली थी।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"तब तो आप हमसे भी अधिक भाग्यशाली हैं।"

सर रामप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"आप लोग अंदर चलिए, अब व्यर्थ क्यों देर करते हैं। खाने का समय हो गया है।"

राजेंद्रप्रसाद ने डॉक्टर आनंदीप्रसाद के साथ जाते हुए कहा—

"सत्य ही डॉक्टर साहब, आज आपसे परिचय प्राप्त कर बहुत प्रसन्नता हुई।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने चारो ओर देखकर उत्तर दिया—"आपसे मिलकर क्या मुझे कुछ कम प्रसन्नता हुई है। आप-जैसे मेधावी विद्यार्थी से भारत को बहुत आशा है, हिंदू-जाति को बहुत उम्मेद है। हमें अपनी जाति के गौरव की रक्षा करना नितांत आवश्यक है, जिसे पश्चिमीय विद्वान् जड़-मूल से मिटा देने के लिये कटिबद्ध हो रहे हैं।"

इसी समय मनोरमा और कुसुमलता घूमती हुई वहाँ आ गईं। कुसुमलता अपने सामने डॉक्टर आनंदीप्रसाद को देखकर ठिठुक गई। उसकी धमनियों में बड़े वेग से रक्त संचालित होने लगा।

मनोरमा ने उसके कान के पास बहुत ही धीमे स्वर में कहा—"प्रथम-दर्शन में ही यह बेसुधी!"

कुसुमलता ने मनोरमा के बड़े ज़ोर की चुटकी काटकर कहा—"चुप।"

मनोरमा थोड़ी दूर चली गई। उसके पीछे-पीछे कुसुमलता भी जाने लगी।

राजेंद्रप्रसाद ने उसे रोककर कहा—"ठहरिए, आपका परिचय तो डॉक्टर साहब से करवा दूँ!"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने चकित होकर राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा। मनोरमा ने कुसुमलता का हाथ पकड़कर घसीटते हुए कहा—"चलो, अब तो चलोगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने आगे बढ़कर धीमे स्वर में कहा—"अब तो ठहरिए, भागिए नहीं।"

कुसुमलता ने ठहरकर, नत दृष्टि से कहा—"कहिए, आज्ञा?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद के पास आ जाने पर राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"आपका शुभ नाम है श्रीकुसुमलतादेवी। आप सर

रामप्रसाद की एकमात्र संतान हैं। लखनऊ-युनिवर्सिटी में बी० ए० की परीक्षा में द्वितीय उत्तीर्ण हुई हैं।" फिर डॉक्टर आनंदीप्रसाद की ओर देखकर कहा—"आपका शुभ नाम डॉक्टर आनंदीप्रसाद एम्० ए० डी० फ़िल्० है। आप लखनऊ-विश्वविद्यालय में फ़िलॉसफ़ी के प्रोफ़ेसर हैं। आप जगद्विख्यात पुस्तक 'हिंदू-फ़िलॉसफ़ी' के रचयिता हैं।"

कुसुमलता ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद उस रूप-राशि की ओर चकित होकर देख रहे थे। प्रणाम का उत्तर देकर कहा—"आपसे परिचित होकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, और यह जानकर और अधिक प्रसन्नता हुई कि आप लखनऊ-विश्वविद्यालय में द्वितीय उत्तीर्ण हुई हैं। जहाँ तक मुझे याद है, प्रथम स्थान भी किसी स्त्री-छात्रा ने ही प्राप्त किया था। शायद उसका नाम श्रीमती मनोरमादेवी था। मुमकिन है, कोई दूसरा नाम हो।"

कुसुमलता की लज्जा धीरे-धीरे कम हो रही थी, और हृदय की धड़कन भी उत्तरोत्तर साधारण गति पर आ रही थी। उसने डॉक्टर आनंदीप्रसाद की बात के उत्तर में कहा—"नहीं, आपका अनुमान बिलकुल सत्य है। श्रीमती मनोरमादेवी या दूसरे शब्दों में मिसेज़ राजेंद्रप्रसाद वर्मा ही ने प्रथम स्थान प्राप्त किया है, और मुझे परिचय कराने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जिन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया है, वह यह हैं, और उनके पति महोदय आपके साथ ही हैं।"

मनोरमा ने लाज से लाल होकर प्रणाम किया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने चकित होकर राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा, और फिर हँसकर कहा—"मिस्टर वर्मा, मैं आपको ऐसी नारी-रत्न प्राप्त करने के लिये बधाई देता हूँ।" और, फिर मनोरमा से कहा—"देवी, प्रथम तो मैं आपको आपके सम्मान-पूर्वक उत्तीर्ण होने पर बधाई देता हूँ, और दूसरे आपको ऐसा पुरुष-रत्न पति

प्राप्त होने के लिये बधाई देता हूँ। ऐसी मेधावी दंपति देखकर किसे हर्ष न होगा ?"

मनोरमा कुछ उत्तर न दे सकी। परंतु राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"आपको हम लोग हृदय से धन्यवाद देते हैं, और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि आप हमसे भी अधिक सौभाग्य से विभूषित हों।"

यह सुनकर मनोरमा मुस्किराई, और कुसुमलता के हृदय की गति फिर तीव्र हो गई।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने प्रसन्न कंठ से कहा—"आज की संध्या तो मेरे लिये बड़ी शुभ है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद के कुछ अधिक कहने के पूर्व ही राजेंद्रप्रसाद ने मंद मुस्कान-सहित कहा—"अभी तो श्रीगणेश ही है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने विस्मित दृष्टि से राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा, और कुछ कहनेवाले ही थे कि सर रामप्रसाद ने मिस ट्रैवीलियन के साथ आकर कहा—"आप लोग यहाँ हैं! चलिए, बैठिए। देर करने से क्या फ़ायदा!"

मिस ट्रैवीलियन ने कुसुमलता के पास जाकर कहा—"आप आज मेज़बान हैं, और आपके आज दर्शन ही नहीं होते!"

फिर राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा, और उसके बाद मनोरमा की ओर।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने आगे बढ़ते हुए कहा—"आज मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ, जो ऐसे-ऐसे महान् व्यक्तियों से परिचय हुआ, और जस्टिस साहब, आपको मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ, और सदैव कृतज्ञ रहूँगा कि आपने कृपा करके मुझे यह शुभ अवसर प्रदान किया।"

सर रामप्रसाद ने सिर पर हाथ फेरते हुए, संकुचित स्वर से कहा—"आपका मनोरंजन हुआ, यह जानकर मुझे प्रसन्नता है।"

उस दिन सर रामप्रसाद ने खाने का पूरा इंतिज़ाम किया था, और एक-से-एक अच्छी चीज़ तयार करवाई थी। मेहमान भी चुने-चुने व्यक्ति थे।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद और राजेंद्रप्रसाद के बैठते ही भोज शुरू हुआ।

राजेंद्रप्रसाद ने खाते हुए कहा—"आपको यह जानकर कष्ट होगा कि श्रीमती कुसुमलतादेवी बाल-विधवा हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने विस्मित-से होकर—"यह जानकर मुझे बहुत दुःख हुआ। सर रामप्रसाद-जैसे समझदार व्यक्ति ने यह भूल कैसे की?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद कुछ सोचने लगे।

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"लेडी रामप्रसाद की ज़िद से उन्हें उनका बाल्यकाल ही में विवाह करना पड़ा, और नतीज़ा यह हुआ!"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने दुःखित स्वर में कहा—"भगवान् की इच्छा!"

राजेंद्रप्रसाद ने उनकी ओर देखते हुए कहा—"सर रामप्रसाद उनका पुनर्विवाह करना चाहते हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अन्यमनस्क भाव से कहा—"पुनर्विवाह, ठीक ही है।"

राजेंद्रप्रसाद ने प्रश्न-भरी दृष्टि से पूछा—"हिंदू-विधवा के पुनर्विवाह के संबंध में आपका क्या मत है?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने एक आम की फाँक खाते हुए कहा—"हिंदू-विधवा हिंदू-समाज का गौरव है। उसके विधवा रहने में ही कल्याण है, और हमारा गर्व है। किंतु रहना चाहिए उसे सत्य-रूप से विधवा।"

राजेंद्रप्रसाद ने कुछ क्षुब्ध होकर कहा—"इसका क्या अर्थ है, मैं समझा नहीं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"विधवा के विधवा होकर रहने में कल्याण है। विधवा तपस्या का उग्र रूप है। जो अपनी इंद्रियों का दमन कर सकती हैं, उन्हें इस तपस्या का व्रत लेना उचित है। वे हमारी जाति का, समाज और देश का मुख उज्ज्वल करेंगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"लेकिन जो विधवा न रहना चाहे?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"उसके लिये तो विवाह ही श्रेष्ठ है।"

राजेंद्रप्रसाद ने उनकी ओर अंतर्भेदी दृष्टि से देखते हुए कहा—"मान लीजिए, आपसे किसी विधवा से विवाह करने का प्रस्ताव किया जाय, तो आप क्या उत्तर देंगे?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर कहा—"वह सौभाग्य मेरे भाग्य में नहीं है। मैं तो अविवाहित ही रहना चाहता हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्कंठित कंठ से पूछा—"यह क्यों? ऐसा कठोर व्रत क्यों लिया है?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"इसलिये कि मैं तपस्या करना चाहता हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"अगर आपको कोई आप-जैसी तपस्विनी मिल जाय, तो आप क्या विवाह नहीं करेंगे?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"मालूम होता है, आप किसी विवाह-संस्था के कार्यकर्ता हैं?"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"ऐसा समझने में कोई हानि नहीं है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने गंभीर होकर कहा—"मिस्टर वर्मा, विवाह जीवन का सबसे अधिक उत्तरदायित्व-पूर्ण कर्म है। वह केवल इंद्रिय-सुख के लिये नहीं। स्त्री भोग की वस्तु नहीं। स्त्री को हमारे मुनियों ने 'माया' के नाम से पुकारा है अवश्य। माया

का अर्थ है मिथ्या। स्त्री तब मिथ्या है। यह 'माया' की उपाधि स्त्री-जाति को क्यों दी गई ? इसलिये कि पुरुष इसके फेर में पड़कर अपना कर्तव्य भूल जाता है, और तब स्त्री केवल मिथ्या का पुंज-मात्र रह जाती है। किंतु शास्त्रकारों ने स्त्री को शक्ति भी माना है, इसलिये कि स्त्री अपनी शक्ति से इस 'मिथ्या' अथवा 'माया' कहलाने के अभिशाप को छिन्न-भिन्न कर सकती है। पतिव्रता और तपस्या का रूप होकर वह उस 'माया'-नामक कलंक को दूर कर सकती है। वह शक्ति अजेय है, अखंड है, और असीम है। उस शक्ति का आभास जिस स्त्री में हो, वही वास्तव में स्त्री है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"लेकिन उस 'शक्ति' का आभास कैसे मिल सकता है ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"शक्ति का आभास मिल सकता है। अगर न मिलेगा, तो मैं विवाह नहीं करूँगा।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"तब आपका यह दृढ़ निश्चय है ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर उत्तर दिया—"निश्चय ही-सा है। मनुष्य सदैव परिवर्तित होता रहता है। परिवर्तन जीवन का सत्व है।

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"आपके विचार समझना मुश्किल है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर कहा—"कुछ मुश्किल नहीं। बिलकुल साफ़ हैं।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—मैं सिर्फ़ यह जानना चाहता हूँ कि अगर आपसे किसी विधवा से विवाह करने के लिये कहा जाय, तो क्या आप उससे विवाह करेंगे ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"मैं विधवा और कुमारी दोनो में से किसी से भी विवाह, तभी कर सकता हूँ, जब मुझे

विश्वास हो जायगा कि उसमें वह शक्ति है, जो 'माया'-नामक कलंक को दूर कर सकेगी, जिसमें मैं अपनी आत्मा का प्रकाश देख सकूँ। मैं विषय-वासना की तृप्ति के लिये विवाह नहीं करना चाहता।"

इसी समय भोज समाप्त हुआ। लोग उठने लगे। डॉक्टर आनंदीप्रसाद और राजेंद्रप्रसाद भी उठे। डॉक्टर आनंदीप्रसाद के चेहरे पर हँसी थी, और राजेंद्रप्रसाद के मुख पर चिंता की एक झलक।

सर रामप्रसाद ने उनके पास आकर कहा—"डॉक्टर साहब, कोई कष्ट तो नहीं हुआ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्किराकर, शांति-पूर्वक कहा—"अब जाने में अवश्य कष्ट होगा।"

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"आज यहीं आराम कीजिए।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"धन्यवाद! कल भी तो आखिर जाना पड़ेगा। जब जाना है, तब देर क्यों की जाय! जस्टिस साहब, मैं आपको इस कृपा के लिये हृदय से धन्यवाद देता हूँ। अब बिदा दीजिए।"

सर रामप्रसाद ने एक भेद-भरी दृष्टि से राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा, और कहा—"नहीं, आप आज यहीं विश्राम करें। रात ज़्यादा हो गई है। कल चले जाइएगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने बहुत विरोध किया, लेकिन राजेंद्रप्रसाद नहीं माने।

इसी समय राजा प्रकाशेंद्र ने आकर कहा—"क्या बात है?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर उत्तर दिया—"आप लोग मुझे घर जाने नहीं देना चाहते, क़ैद करना चाहते हैं।"

राजा प्रकाशेंद्र ने ज़ोर से हँसकर कहा—"यह तो आपका सौभाग्य है।"

सर रामप्रसाद ने थोड़ी देर बाद कहा—"अच्छा, तशरीफ़ ले जाइए। आप किस वक़्त फ़ुर्सत में रहते हैं ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"आजकल तो फ़ुर्सत-ही-फ़ुर्सत है। क्या मैं इतना भाग्यशाली हो सकता हूँ कि आप मेरी कुटीर पवित्र करें ?"

सर रामप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"हाँ, किसी वक़्त आऊँगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद सबसे हाथ मिलाकर विदा हुए।

मोटर में बैठते हुए उन्होंने स्वगत कहा—"यह भी जीवन का एक परिचय है। एक स्वप्न था, जो भंग हुआ। अब कल्पना का मैदान है, और मैं हूँ! इसकी स्मृति! वह तो रहेगी ही।"

शोफ़र ने मोटर चला दी। शीतल समीरण के झोंके कल्पना के परदे उठाने लगे।



तृतीय खंड

(१)

हिमालय के तट पर बसा हुआ दार्जिलिंग बंगाल के धनी-समुदाय का गरमी के दिनों में तीर्थ है, बल्कि उससे भी महत् है। तीर्थों में तो भिखारियों का जमघट देखने में आता है, लेकिन यहाँ फ़ैशनेबुल भिखारियों का ठाठ मिलता है, जो मुँह से माँगते तो नहीं हैं, लेकिन क़र्ज़ लेने के लिये सदैव उत्सुक रहते हैं, यही नहीं, बल्कि क़र्ज़ के लिये अनेकानेक कौशल रचते हैं।

'गवर्नमेंट-हाउस' के समीप राजा भूपेंद्रकिशोर बहादुर की आलीशान अट्टालिका थी, जिसका वैभव किसी प्रकार उससे कम न था। राजा भूपेंद्रकिशोर बहादुर बंगाल के नामी ज़मींदारों में थे। उनकी आय लगभग एक करोड़ सालाना थी। इधर रानी किशोरकेसरी के सुप्रबंध से यह आय किसी अंश तक बढ़ गई थी, और यह आशा थी कि यदि इसी प्रकार उन्नति होती रही, तो थोड़े ही वर्षों में आमदनी दुगुनी हो जायगी। रानी किशोरकेसरी से उनकी प्रजा भी बहुत प्रसन्न थी। कारण, वह अपनी प्रजा के दुःख-सुख में, शादी-विवाह में, जन्म-मरण में निःसंकोच शामिल होतीं, और उनकी यथासाध्य सहायता करतीं। अपनी रियासत को वह एक बृहत्परिवार मानती थीं, और प्रजा भी उन्हें माता की श्रद्धा से पूजती थी, तथा छोटे-बड़े सब उन्हें 'मा' ही कहकर पुकारते थे। दिन-पर-दिन प्रजा संपन्न हो रही थी, और उसकी संपन्नता के साथ-साथ उनका भी कोष भर रहा था। वह सारा काम स्वयं देखतीं, और सबकी फ़रियाद सुनकर यथायोग्य हुक्म देती थीं। उनके हुक्म की अपील कहीं न होती थी, और उनकी तजवीज़ भी ऐसी निष्पक्ष होती थी कि फ़रीक़ैन को स्वयं संतुष्ट हो जाना पड़ता था। प्रजा केवल रानी को ही जानती

थी, राजा से उसका कोई संबंध नहीं था। राजा भूपेंद्रकिशोर भी उस जंजाल से मुक्त रहने में अपना कल्याण समझते थे। उन्हें इँगलैंड से बहुत प्रेम था, और उनके जीवन के बहुत साल वहीं बीते थे। पहलेपहल रानी किशोरकेसरी ने आपत्ति प्रकट की, बाधाएँ डालीं, लेकिन फिर वह भी शांत होकर बैठ गईं। मनुष्य सदा से परिस्थितियों का दास रहा है, और भारतीय नारियाँ तो विशेष-कर होती हैं। उनमें विरोध करने की बहुत कम शक्ति होती है, और वह भी क्षणिक या किसी-किसी विषय में कुछ दिन और ज़्यादा-से-ज़्यादा चंद महीने रहती है। रानी किशोरकेसरी ने जब देखा, राजा भूपेंद्रकिशोर को विदेश रहने में सुख है, तो शांति-पूर्वक वह विच्छेद सहन किया, और अपना ध्यान ज़मींदारी और पुत्र-पुत्री के लालन-पालन में देने लगीं। नियमित रूप से पति को वह ख़र्च भेज देतीं, और वह उसकी सद्गति करते थे। मायावती के विवाह से तो पति-पत्नी में मनोमालिन्य विशेष रूप से बढ़ गया था, परंतु समय के प्रभाव और मायावती के प्रयत्न से दूर हो गया। राजा भूपेंद्रकिशोर कलकत्ते में रहने लगे—अपनी ज़मींदारी के गाँवों में उनका मन न लगता था। रानी किशोरकेसरी ज़्यादातर अपनी ज़मींदारी में रहतीं, अवकाश मिलने पर कलकत्ते चली जातीं, और पुत्र के शिक्षा-प्रबंध की देख-भाल कर फिर चली आतीं। राजा भूपेंद्रकिशोर का रुसूक़ सरकारी कर्मचारियों में विशेष रूप से था, और उनके ख़र्च का ज़्यादा हिस्सा उनकी ख़ातिर-तवाज़ा में व्यय होता था। जब बंगाल के गवर्नर साहब दार्जिलिंग पधारते, तो राजा भूपेंद्रकिशोर का साथ में जाना नितांत आवश्यक होता था। इस वर्ष भी वह दार्जिलिंग गए। इधर रानी किशोरकेसरी का स्वास्थ्य कुछ ख़राब था, इसलिये पति के अनुरोध से उन्हें भी जाना पड़ा।

दोपहर का समय था। हिमालय की पर्वत-श्रेणी-चुंबित समीरण के झोंके शरीर में कँपकँपी पैदा कर रहे थे। रानी किशोरकेसरी शाल ओढ़े 'पुरफ़िज़ाँ महल' के ज़नाने हिस्से के बरामदे में लेटी हुई थीं। कुँअर नरेंद्रकिशोर मेज़ पर बैठा हुआ पाठ याद कर रहा था। इसी समय दोपहर की डाक में एक दासी कुछ अख़बार और पत्र लेकर आई, और चाँदी की एक बड़ी तश्तरी में रखकर रानी किशोरकेसरी के सामने लिए खड़ी रही। उन्होंने एक-एक करके सब चिट्ठियाँ देखीं, और उनमें से एक उत्सुकता से निकालकर व्यग्रता से खोलने लगीं। कुँअर नरेंद्रकिशोर भी उठकर मा के समीप आ गया। उसने कहा—"मा, क्या यह दीदी की चिट्ठी है?"

दीदी से तात्पर्य रानी मायावती से था। बंगाल की प्रथा के अनुसार वह अपनी बड़ी बहन को दीदी कहकर पुकारता था।

रानी किशोरकेसरी ने पत्र खोलते हुए कहा—"हाँ, मालूम तो होता है। अच्छा, तू अब जाकर पढ़, जहाँ आँख चूकी, फ़ौरन् खेलने लगा। माया की कोई चिट्ठी तेरे नाम होगी, तो मैं तुझे दे दूँगी। मास्टर साहब को अगर आज का पाठ नहीं सुनाया, तो फिर लाट साहब के जलसे में तुझे न ले जाऊँगी, यहीं बंद कर जाऊँगी।"

बालक नरेंद्र के लिये यह धमकी काफ़ी थी। वह चुपचाप जाकर, मलीन मन से, अरुचिकर कर्म में मनोयोग देने का उद्योग करने लगा।

रानी किशोरकेसरी पत्र खोलकर पढ़ने लगीं। पत्र इस प्रकार था—

"रूपगढ़-हाउस
लखनऊ
१८-६-१६...

पूजनीया मा के चरणों में माया का सादर प्रणाम।

"यदि मैं लिखूँ कि सकुशल नहीं हूँ, तो अवश्य झूठ होगा।

शारीरिक कुशलता ईश्वर की कृपा और आपके आशीर्वाद से प्राप्त है, किंतु मानसिक कुशलता का इस समय सर्वथा अभाव है। क्या लिखूँ, कुछ समझ में नहीं आता! मैं किस प्रकार पति की निंदा में अपनी क़लम उठाऊँ; किंतु बिना कहे तुम अपनी माया का दुःख कैसे समझ सकोगी?

"मेरे जीवन की शांति कल तारीख़ १७ जून की रात को चली गई, जिस दिन मालूम हुआ कि मुझे कोई सुलानेवाली दवा देकर नींद में लाने का उपाय किया जाता है, और उसी दिन मुझे यह भी मालूम हुआ कि तुम्हारे जमाई किसी अन्य को प्रसन्न करने के लिये रूपगढ़-राजवंश के बेशक़ीमत आभूषण भी दे आए हैं, जिन्हें सुरक्षित रखने के लिये मेरी सासजी अपने अंतिम समय में मुझे आदेश दे गई थीं, जिनमें रूपगढ़-राजवंश की मर्यादा निहित है।

"जब से मालूम हुआ है, तब से अपने मन से निरंतर युद्ध कर रही हूँ, लेकिन मन किसी भाँति शांत नहीं होता। जी में आता है, तुम्हारी गोद में बैठकर, तुम्हारी छाती में मुँह छिपाकर रोऊँ, जी भरकर रोऊँ, तब यह अग्नि शांत होगी। यही आशा मुझे जीवित रक्खे है।

"मैं अपने हृदय की पीड़ा कैसे बयान करूँ? जीवन मेरे लिये भार हो गया है। यह अत्याचार सहन करने के लिये मैं तैयार नहीं हूँ। मैं इसका प्रतिशोध चाहती हूँ। बिना प्रतिशोध के यह अग्नि, जिससे मैं जल रही हूँ, शांत न होगी। यह विश्वासघात! यह अन्याय! केवल इसका स्मरण ही मारात्मक है। मा, मैं प्रतिशोध चाहती हूँ।

"तुम किसी को भेजकर मुझे बुला लो। यहाँ का वायु-मंडल मेरे लिये अग्नि से भी अधिक दुःखदायी है—जलानेवाला है। यहाँ की श्वास-श्वास में विष का भय है। वह अपना रास्ता साफ़

करने के लिये किसी समय विष का प्रयोग कर सकते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे सुलानेवाली दवा खिला देते थे। मैं एक क्षण भी यहाँ रहना नहीं चाहती।

"पूज्य पिताजी से यह कहानी कहकर उन्हें दुःखित और चिंतित न करना। भाई नरेंद्र को आशीर्वाद कहना। जल्दी-से-जल्दी किसी को लेने के लिये भेजो। बस, यह समझ लो, अधिक देर होने से तुम्हारी माया का जीवन आपत्ति से ख़ाली नहीं। मैं उत्कंठा से तुम्हारी राह देख रही हूँ।

अभागिनी

तुम्हारी स्नेह की माया"

पत्र पढ़ते-पढ़ते रानी किशोरकेसरी के मुख के कई परिवर्तन हुए, जिनका बालक नरेंद्र बड़ी सतर्कता से निरीक्षण कर रहा था। पत्र समाप्त होते ही नरेंद्र ने आकर पूछा—"दीदी ने मुझे कुछ नहीं लिखा? मैंने तो दीदी को चिट्ठी लिखी थी, क्या उन्होंने उसका जवाब नहीं दिया?"

रानी किशोरकेसरी को नरेंद्र के ये प्रश्न रुचिकर नहीं हुए। उन्होंने उसका कान उमेठकर कहा—"दुष्ट, पढ़ता नहीं। बातें बनाने फिर आ गया।"

नरेंद्र प्रसाद पाकर चुपचाप चला गया।

रानी किशोरकेसरी सोचने लगीं—"अधःपतन केवल क्षण-मात्र में होता है। मनुष्य का विश्वास करना बड़ी भारी भूल है। मैं समझती थी, मेरा जमाई सुपात्र है, शिक्षित है, सहृदय है, विद्वान् है, सच्चरित्र है, किंतु मेरी धारणा असत्य निकली। माया का भी वैसा ही भाग्य प्रमाणित हुआ, जैसा मेरा! मैंने तो सब कुछ देखकर यह विवाह किया था, लेकिन भाग्य और विधाता के विधान को जीतना असंभव है।

"वह दिन मुझे अच्छी तरह याद है, जब मैं महाकुंभ के अवसर पर त्रिवेणी-स्नान करने गई थी। प्रातःकाल की लालिमा पूर्व दिशा में, क्षितिज के अंतर्पट को हटाकर संसार को अपने रंग में रँगने का प्रयास कर रही थी, और मैं उधर धार में पड़कर, अथाह जल-राशि की ओर बही जा रही थी। माया, बालिका माया, बजरे पर खड़ी रो रही थी। उस समय एक बलिष्ठ युवक एक दूसरी नाव से कूद-कर, मेरे पैर पकड़कर घसीटने लगा। उसके साथ संगम का वेग युद्ध करने लगा, लेकिन जीत उसकी हुई, और क्षण-मात्र में उस युवक ने दूसरों की सहायता पाकर मुझे बचा लिया। मैंने उसका परिचय जानना चाहा, और मुझे मालूम हुआ कि वह रूपगढ़-नरेश का इकलौता पुत्र है। उसकी सहृदयता देखकर मैं द्रवित हो गई, और माया को उसकी कृतज्ञता में उसे समर्पण कर दिया। आज उस घटना को हुए ग्यारह वर्ष बीत गए। इतने दिनों में माया ने कभी कोई शिकायत नहीं की। मैं अपनी सफलता पर आप प्रसन्न होती रही, गर्व से इतराती रही। आज उसका पुरस्कार मिला। मेरा स्वप्न टूट गया। वही युवक विश्वासघाती निकला, और उससे भी नीच, चोर निकला। सोने के आवरण में विष निकला। सत्य है, मेरी माया का जीवन विपत्ति से ख़ाली नहीं है। जो व्यक्ति नशीली वस्तु देकर सुला सकता है, वही विष देकर सदा के लिये सुला सकता है। अधःपतित का विश्वास करना भयंकर भूल है।

"भगवान् ने मेरे भाग्य में सुख नहीं लिखा। पहले अपनी चिंता में विभोर थी, और अब माया की चिंता करनी पड़ेगी। जिनके भाग्य में विधाता ने राज-सुख लिखा है, उनके भाग्य में पति-सुख नहीं लिखा। हमारे गाँव की निस्तारिणी, काली, रेणुका, नीहार, इंदु, सरोजिनी, कुसुम, सुधा, सब कितनी सुखी और कितनी निश्चिंत हैं। पति का प्रेम उन्हें प्राप्त है, और वे अपने घर की सोलह आने

मालिकिन हैं। पति का उन पर विश्वास है, और उनका पति पर। वे दिन-भर परिश्रम के साथ काम करती और शाम को शांति से सोती हैं। कोई चिंता नहीं, कोई दुःख नहीं। उनका जीवन कितना सुखी है! वे मेरे पास आती और अपने-अपने पति की बड़ाई में दिन समाप्त कर देती हैं — गुणावलि कहते-कहते शेष नहीं होती। उनका कैसा आनंदमय जीवन है। स्त्री का सबसे अधिक सुख है—उसके पति का उसके प्रति प्रेम! सांसारिक सुख भले ही हों, लेकिन जो स्त्री अपने पति के आदर की वस्तु नहीं, उसका जीवन निष्फल है। उसका सुहागिनी कहलाना निरर्थक है। मेरा दुःख ही मेरे लिये पर्याप्त था, लेकिन भगवान् की इच्छा, एक नया दुःख मेरे लिये उत्पन्न हुआ।

"प्रकाशेंद्र ऐसा तो नहीं था, फिर यह परिवर्तन अकस्मात् कैसे हुआ! वह एक क्षण में ही मनुष्य से पशु हो गया। प्रवंचक, चोर, विश्वासघाती, सभी कुछ तो हो गया। अपने वंश की मर्यादा के आभूषण तक दे आया। क्या उसके पास रुपयों की कमी थी, जो चोरी करके किसी कलंकिनी को संतुष्ट किया। राजवंश की मर्यादा साथ ही चली गई।

"तभी मेरी माया पर यह विपत्ति आई। माया प्रतिशोध के लिये आकुल है। बालिका है, उसका कातर होना स्वाभाविक है। प्रतिशोध किससे लेगी! मूर्ख, समझती नहीं, जिससे प्रतिशोध लेगी, वह तो उसी का जीवन है। हिंदू-समाज में स्त्रियाँ प्रतिशोध नहीं जानतीं। पति चाहे जैसा हो, उसका पूज्य है। उसका अत्याचार हमारे लिये सत्कार है। उसका विश्वासघात हमारे लिये उसकी भूल है, जो धैर्य और समय पाकर सुधर जायगी। हिंदू-नारी सहनशीलता, सौजन्य, पति-प्रेम की मूर्ति है। उसमें हिंसा, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या, प्रतिशोध के भाव उदय ही नहीं होते। एक मन से, एक प्राण से, एक भक्ति से, एक विश्वास से पति को ईश्वर

मानकर पूजती है, हँसते-हँसते उसके लिये अपना जीवन विसर्जन कर देती है। त्याग उसका शृंगार है, सहनशीलता उसका सौभाग्य है, तपस्या उसका सुहाग-सिंदूर है। पति उसका धर्म है, पति उसका जीवन है, और पति उसका ईश्वर है। तभी तो आज भी हिंदू-नारी का आसन इतना उच्च है। उसकी आत्मा को पवित्रता के सम्मुख विकट-से-विकट अत्याचार चंद्र-किरणों की तरह शीतल हो जाते हैं। सेवा और त्याग हमारी जाति के गुण हैं। माया में वे सब गुण मौजूद हैं, लेकिन उसका वायु-मंडल आजकल दूसरा है, जहाँ वे कुम्हला गए हैं। उसके दुखी हृदय को शांत बनाने के लिये उसे यहाँ लाना सर्वथा उचित है। उसे तपस्या की नई योजना सिखलानी पड़ेगी। धैर्य और शांति से काम लेना पड़ेगा। अब देर करना उचित नहीं मालूम होता। कल ही शिवकुमार को भेज दूँ। सब तरह से विश्वासी है, वृद्ध है, और लखनऊ से भली भाँति परिचित है।"

रानी किशोरकेसरी अपने विचार में लीन थीं, उन्हें न मालूम हुआ कि कब से राजा भूपेंद्रकिशोर आकर उनकी ओर देख रहे हैं। उन्होंने पूछा—"क्या माया की कोई चिट्ठी आई है? तुम क्या सोच रही हो?"

रानी किशोरकेसरी ने चौंककर कहा—"सोच क्या रही हूँ, पुरुष-जाति की बर्बरता! तुम्हारी जाति पर विश्वास करना मूर्खता है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने हँसकर कहा—"लेकिन अब तो मैं तुम्हारा गुलाम हो गया हूँ, अब क्यों व्यर्थ ताना देती हो।"

रानी किशोरकेसरी ने जवाब दिया—"तुम लोगों को गुलाम बनते और गुलामी छोड़ते देर नहीं लगती। तुम्हारे विचार में स्थिरता नहीं होती।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कुरसी पर बैठते हुए कहा—"आख़िर बात क्या है, मैं भी तो सुनूँ।"

रानी किशोरकेसरी ने माया का पत्र देते हुए कहा—"यह लो, पढ़ लो। माया का भी वही हाल हुआ, जो आजकल के राज-घरानों की नारियों के भाग्य में होता है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर पत्र पढ़ने लगे। पत्र समाप्त करते-करते उनका चेहरा क्रोध से लाल हो गया। उन्होंने दाँत पीसकर कहा—"नराधम, चोर, ठग!"

रानी किशोरकेसरी ने मुस्किराकर कहा—"तुम इतना क्यों बिगड़ते हो, प्रकाश ने वही किया है, जो तुम कर चुके हो।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने सक्रोध कहा—"मैंने तुम्हारे आभूषण कभी चोरी नहीं किए, तुम्हें दवा खिलाकर बेहोश नहीं किया। जो कुछ किया है, तुम्हारी जान में किया है। मैं नीचात्मा नहीं हूँ। मैं स्वयं जाऊँगा, और दुष्ट को दंड दूँगा। माया सत्य कहती है, प्रतिशोध लेना ही होगा।"

रानी किशोरकेसरी ने शांत स्वर में कहा—"हिंदू-नारी प्रतिशोध नहीं लेती। मैंने क्या तुमसे प्रतिशोध लिया है? हिंदू-नारी क्षमा करती है। क्षमा हमारा शिरस्त्राण है, सेवा हमारी तलवार है, और सहनशीलता हमारा कवच है। जब हिंदू-नारी पति के विरुद्ध युद्ध ठानती है, उसे ये शस्त्र ग्रहण करने पड़ते हैं। इनके प्रहार से जो विजय प्राप्त होती है, उसमें द्वेष नहीं होता, ग्लानि नहीं होती, संकोच नहीं होता। दोनो ओर सुख और शांति होती है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उत्तेजित होकर उठते हुए कहा—"तुम यह गंदा उपदेश अपने लिये रक्खो। हमारी माया के लिये इन चीज़ों की ज़रूरत नहीं। मुझमें शक्ति है, तेज है, और है पौरुष। तुम्हारे हथियार ग़ुलामी के हथियार हैं। तुम ग़ुलाम

देश में पैदा हुई, और गुलामी तुम्हें पसंद है। मैं आज शाम को कलकत्ते के लिये रवाना होऊँगा, और वहाँ से लखनऊ जाऊँगा। अगर तुम्हें मेरे साथ चलना हो, तो चलो, नहीं तो मैं जाऊँगा।"

यह कहकर वह कमरे के बाहर हो गए। रानी किशोरकेसरी चुपचाप सोचने लगीं।

---

(२)

राजा प्रकाशेंद्र ने अपनी हैट उतारते हुए कहा—"आज बहुत तंग होकर तुम्हारे पास आया हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने अपनी सहज मृदु मुस्कान से स्वागत करते हुए कहा—"किससे तंग होकर? धूप से, गरमी से, दुश्मनों से, किससे तंग होकर आप आए हैं?"

राजा प्रकाशेंद्र ने खीझकर कहा—"अपने जीवन से।"

मिस ट्रैवीलियन ने अपनी हँसी अधरों के भीतर छिपाते हुए पूछा—"ख़ैरियत तो है? आज हुआ क्या? ऐसी बहकी-बहकी बातें क्यों करते हो?"

राजा प्रकाशेंद्र ने आराम-कुरसी पर लेटते हुए कहा—"माया को सब हाल मालूम हो गया है।"

मिस ट्रैवीलियन की हँसी तिरोहित हो गई, और चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उन्होंने घबराकर कहा—"क्या, रानी साहबा को सब मालूम हो गया? ग़ज़ब हुआ!"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"हाँ, सब मालूम हो गया। वह चोरी मालूम हो गई, और यह भी मालूम हो गया कि मैं रोज़ रात को उन्हें 'स्लीपिंग डोज़' देता हूँ, और कहीं बाहर जाता हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन का चेहरा सफ़ेद हो गया। उन्होंने धड़कते हुए कलेजे से पूछा—"और यह भी मालूम हो गया कि तुमने वे गहने मुझे दिए हैं?"

राजा प्रकाशेंद्र ने छत की ओर देखते हुए कहा—"नहीं, यह

तो मालूम नहीं हुआ। जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह उसे नहीं मालूम।"

मिस ट्रैवीलियन को शांति मिली। उनकी भय से विस्फारित आँखें अपनी सहज चंचलता से मुस्किराने लगीं। पाप का भेद ज्यों-का-त्यों छिपा है, यह विचार पापी के मन को सबसे अधिक शांति-दायक होता है।

राजा प्रकाशेंद्र ने चिंतित स्वर में कहा—"माया इस समय क्रुद्ध सिंहनी हो रही है। वह इस संबंध में अपने पिता से भी लिखा-पढ़ी करेगी। मैं देख रहा हूँ, एक तूफ़ान उठनेवाला है, जो धीरे-धीरे आकर हम दोनो को अपने बवंडर में उड़ा ले जायगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने चिंतित स्वर में पूछा—"क्यों, इससे मेरा क्या संबंध है?"

राजा प्रकाशेंद्र ने परेशान होते हुए कहा—"हमारा और तुम्हारा संबंध अब छिपाकर नहीं रक्खा जा सकता। जल्द या देर में यह तो प्रकट होगा ही।"

मिस ट्रैवीलियन ने भीत स्वर में कहा—"लेकिन मैं अपनी इज़्ज़त खोने के लिये तैयार नहीं।"

राजा प्रकाशेंद्र ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"यह क्यों?"

मिस ट्रैवीलियन ने दृष्टि नत करते हुए कहा—"यह इस-लिये......' कहते-कहते रुककर बाहर की ओर देखने लगीं।

राजा प्रकाशेंद्र की दृष्टि भी बाहर चली गई। दरवाज़े पर क्रोध से विह्वल रानी मायावती खड़ी थीं।

राजा प्रकाशेंद्र उठ खड़े हुए। मिस ट्रैवीलियन भी उठ खड़ी हुईं। दोनो के चेहरों का रंग ग़ायब था।

रानी मायावती ने कमरे के भीतर आकर राजा प्रकाशेंद्र से

कहा—"आपके सवाल का जवाब मिस साहबा नहीं दे सकतीं, मैं उनकी तरफ़ से देती हूँ। सुनिए, मिस ट्रैवीलियन आपके साथ का संबंध इसलिये प्रकट नहीं होने देना चाहतीं कि उनका यह जाल, जो लखनऊ में भले-भले घर की स्त्रियों के ठगने के लिये फैला रक्खा है, टूट जायगा, और फिर पेट के लाले पड़ जायँगे !"

पापी उसी वक़्त तक डरता रहता है, जब तक उसका पाप प्रकट नहीं होता, लेकिन पाप प्रकट हो जाने पर वह बेशरमी का लबादा पहन लेता है, और पाप के विरुद्ध ऊँची आवाज़ से बोलकर अपने को निष्पापी घोषित करता है।

मिस ट्रैवीलियन ने आगे बढ़कर, सक्रोध कहा—"रानी साहबा, मैं नहीं समझी कि आप क्या कह रही हैं ? आप क्या मेरा अपमान करने के लिये आई हैं ?"

रानी मायावती ने प्रतिरोध पाकर, ग़ुस्से से उबलकर कहा—"अपमान ! और फिर तुम्हारा ! जिसकी इज़्ज़त है ही नहीं, उसका क्या अपमान हो सकता है ? अगर एक वेश्या का अपमान हो सकता है, तो आपका भी अपमान हो सकता है।"

मिस ट्रैवीलियन ने फड़कते हुए होठों से कहा—"बस, रानी साहबा, बहुत हो चुका ; अगर आप एक शब्द भी निकालेंगी, तो आपकी ज़बान पकड़कर खींच लूँगी, और नौकरों से जूते लगवाकर बँगले के बाहर निकलवा दूँगी।"

रानी मायावती ने ग़ुस्से से काँपते हुए कहा—"रूपगढ़-हाउस के पुश्तैनी गहनों के चोर की इतनी हिम्मत ! देखो, वह पुलिस आ रही है।"

इसी समय बाहर एक मोटर के आने का शब्द सुनाई दिया। मिस ट्रैवीलियन का क्रोध काफ़ूर हो गया, और उन्होंने भय-विह्वल दृष्टि से राजा प्रकाशेंद्र की ओर देखा।

राजा प्रकाशेंद्र ने आगे बढ़ते हुए कहा—"माया, क्या तुमने पुलिस में रिपोर्ट कर दी ?"

रानी मायावती ने कमरे के दरवाज़े के पास आकर कहा—"पुलिस लेकर आई हूँ । ईश्वर को धन्यवाद है कि मेरा अनुमान सत्य निकला ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने सक्रोध कहा—"मैं रूपगढ़ का राजा हूँ । वे आभूषण मेरे पुश्तैनी हैं, जिन पर तुम्हारा बिलकुल अधिकार नहीं है । मुझे यह हक़ हासिल है कि मैं उन्हें किसी को दूँ । मैंने अपनी इच्छा से मिस ट्रैवीलियन को उपहार में दिए हैं । तुम्हारी पुलिस उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकती ।"

मोटर पर आनेवाले राजेंद्रप्रसाद और मनोरमा थीं । दोनो कमरे के अंदर पैर रखनेवाले ही थे कि भीतर का दृश्य देखकर उन्हें ठहरना पड़ा । वे विस्मित दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे ।

सबसे पहले सतर्क होनेवाली मिस ट्रैवीलियन थीं । उन्होंने एक शुष्क हँसी से उनका स्वागत करते हुए कहा—"आइए, आइए, तशरीफ़ लाइए, रुक क्यों गए ?"

राजेंद्रप्रसाद ने तीनो को अभिवादन करते हुए कहा—"मैंने समझा, शायद आप लोग किसी प्राइवेट मामले पर बहस-मुबाहिसा कर रहे हैं । माफ़ कीजिएगा ।"

रानी मायावती कुछ बोलनेवाली थीं कि राजा प्रकाशेंद्र ने अपनी हैट सिर पर रखते हुए कहा—"मिस्टर वर्मा, क्षमा कीजिएगा । रानी साहबा मुझे किसी ज़रूरी काम से बुलाने आई हैं, इसलिये मैं जा रहा हूँ । माफ़ कीजिएगा ।"

यह कहकर उन्होंने रानी मायावती का हाथ पकड़कर बाहर की ओर घसीटते हुए कहा—"आइए रानी साहबा, आप जल्दी कर रही थीं, चलिए ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने यह काम इतनी शीघ्रता से किया कि किसी को कुछ कहने-सुनने का मौक़ा ही न मिला। रानी मायावती भी विस्मित और अवश होकर राजा प्रकाशेंद्र के साथ खिंचती हुई चली गईं। राजेंद्रप्रसाद और मनोरमा एक दूसरे को देखने लगे।

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराते हुए कहा—"बैठिए मिस्टर वर्मा, आपने आज बड़ी मेहरबानी की, जो अपनी तशरीफ़ावरी से मेरा घर पवित्र किया।"

राजेंद्रप्रसाद ने एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"यह तो आपकी मेहरबानी है, नवाज़िश है।"

मनोरमा ने मिस ट्रैवीलियन से कहा—"आप अपनी सभा का वार्षिक अधिवेशन कब करेंगी?"

मिस ट्रैवीलियन ने कुछ सोचते हुए, अन्यमनस्क स्वर में कहा—"देखो, अब कब होता है।"

मनोरमा ने उत्कंठित स्वर में कहा—"क्या कोई निश्चित तारीख़ नहीं है? आपने तो एक दिन कहा था कि सभा का वार्षिक अधिवेशन बड़े समारोह से किया जायगा, और उसमें विदेश से भी प्रतिनिधि और दर्शक बुलाए जाएँगे। और, आज आपका रंग कुछ और ही है।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक विष-भरी दृष्टि से मनोरमा की ओर देखा, और फिर राजेंद्रप्रसाद की ओर। लेकिन इसी क्षण-भर में उनमें वह परिवर्तन हो गया था, जो एक जादूगर से ही हो सकता है। मनोरमा उनका वह रूप देखकर सिहर उठी, और राजेंद्रप्रसाद चकित हो गए!

राजेंद्रप्रसाद ने विषय बदलते हुए कहा—"राजा प्रकाशेंद्र-सरीखा उन्नत-हृदय मनुष्य मिलना मुश्किल है।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक क्षण-भर उनकी ओर देखकर उनके हृदय

का भेद जानना चाहा, और फिर सरल भाव से कहा—"हाँ, वास्तव में ऐसे मनुष्य बहुत कम देखने में आते हैं। ऐसे निःस्पृह और समाज-सेवक मनुष्य तो किसी-किसी युग में उत्पन्न होते हैं।"

मनोरमा को हँसी आ गई। उसने अपनी हँसी दबाने की बहुत चेष्टा की, लेकिन मिस ट्रैवीलियन की चकित आँखों ने उसे देख ही लिया। उसका शंकित हृदय फिर काँपने लगा।

राजेंद्रप्रसाद ने शांत स्वर में कहा—"आज मैं आपको कुछ कष्ट देने आया हूँ, आशा है, आप......।"

बीच में ही मिस ट्रैवीलियन ने बात काटकर, एक मनोहर मुस्कान-सहित कहा—"कहिए, कहिए, आप इतना शिष्टाचार क्यों करते हैं। यह तो आपको मालूम ही है कि मेरा जन्म केवल आप लोगों की सेवा के लिये हुआ है।"

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"मैं अपने कुछ मित्रों को निमंत्रित करना चाहता हूँ, उसमें आपको भी शामिल होना पड़ेगा। आशा है, आप अपने दूसरे काम बंद रक्खेंगी, और भोज में सम्मिलित होकर मुझे कृतज्ञ बनाएँगी।"

मिस ट्रैवीलियन की आशंका शांत हो चुकी थी, और उनकी सहज-सुश्री उन्हें एक अनुपम सुंदरी बना रही थी।

उन्होंने एक मधुर हँसी से कहा—"मिस्टर वर्मा, आप तो आज-कल लच्छेदार बातें करने लगे हैं। आपका निमंत्रण स्वीकार करना, इससे बढ़कर मेरे लिये और क्या गौरव का विषय होगा?"

राजेंद्रप्रसाद हँसने लगे, और मिस ट्रैवीलियन भी हँसने लगीं।

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"मिस्टर वर्मा, माफ़ कीजिएगा, मैं बहुत भुलक्कड़ हूँ। आपकी अभ्यर्थना करना तो मैं बिलकुल भूल ही गई। इस गरमी में सोडा आइसक्रीम और बर्फ़ ठीक होगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने उठते हुए कहा—"नहीं-नहीं, कष्ट करने की

कोई ज़रूरत नहीं। अभी-अभी डॉक्टर आनंदीप्रसाद के यहाँ खूब पेट भरकर शरबत पिया है। अब आप हमें आज्ञा दीजिए। दूसरे मित्रों को भी निमंत्रित करना है।"

मिस ट्रैवीलियन ने बहुत अनुरोध किया, लेकिन राजेंद्रप्रसाद ने किसी प्रकार स्वीकार नहीं किया। वह मनोरमा के साथ उठकर कमरे के बाहर हो गए।

मिस ट्रैवीलियन ने उन्हें उनकी मोटर तक पहुँचाते हुए कहा—"मिस्टर वर्मा, यह आपका अन्याय है, जो आप बग़ैर जल-पान किए जा रहे हैं।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"क्षमा कीजिए, अगर ज़रा भी इच्छा होती, तो आपका अनुरोध हम लोग नहीं टालते। हाँ, तो फिर अगले रविवार को ठीक है। यथासमय आपके पास निमंत्रण-पत्र तो आ जायगा, लेकिन अभी से इसलिये कह दिया है, जिसमें आप उस दिन कोई दूसरा इनगेजमेंट न कर लें।"

मिस ट्रैवीलियन ने आश्वासन-पूर्ण कंठ से कहा—"नहीं, मैं इतनी मूर्ख नहीं हूँ, जो आपका निमंत्रण भूल जाऊँ, और यह अवसर हाथ से गँवा दूँ।"

राजेंद्रप्रसाद और मनोरमा ने अभिवादन किया, और मोटर बँगले के बाहर हो गई। मिस ट्रैवीलियन के मुख से एक 'आह' निकल गई। उस आह में क्या था—एक ईर्ष्या की झलक और चोट की कसक!

सर रामप्रसाद अपने ख़ास कमरे में टहलते हुए कहने लगे—"बिट्टन के भाग्य में क्या है, यह तो ईश्वर ही जाने! लेकिन मेरा कर्तव्य मुझे पुकारता है। मैंने जो अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल की थी, उसका अब भी प्रायश्चित्त हो सकता है। बिट्टन की मा की साध पूरी करने में जो कष्ट मुझे हुआ था, उसकी याद मुझे अभी तक है। उस वक़्त मेरे मन में यह विचार आया था कि जानते-बूझते अपनी एकमात्र संतान को बलिदान की वेदी पर न चढ़ाऊँ, लेकिन उसका नैराश्य-पूर्ण मुख देखकर मेरे साहस ने मुझे जवाब दे दिया, और मैंने निष्ठुर वधिक की भाँति अपनी संतान का वध कर डाला—उसका बाल-विवाह करके उसे विधवा बनाने का सार्टीफ़िकेट हासिल कर लिया। बिट्टन की मा प्रसन्न हुई, और उसकी बीमारी दूर होने लगी। मुझे यह उम्मेद होने लगी कि मैंने भूल नहीं की, बल्कि एक श्रेयस्कर कर्म करके अपनी मुमूर्षु स्त्री की जान बचा ली है। यह विचार उठा ही था कि वज्र-पात हुआ। सहसा मेरी बिट्टन विधवा हो गई। मेरा हृदय ग्लानि और अनुताप से भर गया। रोने के लिये हृदय के आँसुओं ने जवाब दे दिए। पत्थर का कलेजा करके वह हृदय-विदारक कष्ट सहन किया। बिट्टन की मा तो उस कष्ट को सहन नहीं कर सकी, और काल-कवलित हो गई। लेकिन मैं सहने को तैयार था, और मैंने सहा। बिट्टन अपने खेल में संलग्न थी, अपनी गुड़ियों के साथ खेलने में मग्न थी, उसे क्या मालूम था कि उसका क्या नष्ट हो गया है। उसे नहीं मालूम हुआ कि उसका सुहाग लुट गया है, और वह हिंदू-समाज की निम्न श्रेणी में एकदम

ढकेल दी गई है—विधाता की क्रूर हँसी का शिकार बनकर अपने जीवन का सुख धूल के स्तूप में उसने खो दिया है।

"लेकिन मैं उसका खोया हुआ सुख ढूँढ़ निकालूँगा, और उसे एक बार फिर उसी श्रेणी में प्रतिष्ठित करूँगा, जहाँ से मैंने उसे घसीटा है। इस विषय में बिट्टन का या विधाता का कोई अपराध नहीं है, मेरा है। उसके वैधव्य के लिये उत्तरदायी मैं हूँ, और इसका उपाय, इसका उपचार मुझे ही करना पड़ेगा। बिट्टन को मैं वधू-वेष में फिर देखना चाहता हूँ, और उसके जीवन का सुख, जो मैंने हरण कर लिया था, उसे लौटा देना चाहता हूँ।

"विधवा-विवाह! यह हिंदू-समाज के लिये एक नई पहेली है—एक नवीन समस्या है। हमारी समाज इसे बुरा कहती है; मैं भी इसे बुरा कहता हूँ, लेकिन क्या करू, मैं अवश हूँ। कर्तव्य, कर्तव्य की पुकार मुझे वह काम करने का आदेश देती है, जिसे मेरी आत्मा करने की गवाही नहीं देती। संतान की ममता है—हर-एक पिता के हृदय में होती है, लेकिन उससे ऊँचा, उससे भी श्रेष्ठ मेरा कर्तव्य है। पिता का कर्तव्य संतान के प्रति क्या हो सकता है, ऐसी परिस्थिति में यह एक ऐसा प्रश्न है, जो मुझे रात-दिन चैन नहीं लेने देता। बिट्टन मेरे अपराध से विधवा हुई है, अतएव मुझे ही उस भूल को सुधारना पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि इसमें मेरी आत्मा की आवाज़ साथ नहीं देती, मैं यह मानता हूँ कि हिंदू-विधवा का जीवन तपस्या का जीवन है, लेकिन कर्तव्य मुझे यह बात मानने नहीं देता। कर्तव्य कहता है, इसका पुनर्विवाह करो, और मुझे वह करना पड़ेगा। मैं बिट्टन का विवाह करूँगा।

"बिट्टन क्या इस विवाह से सुखी होगी? इस प्रश्न का उत्तर कौन दे? पिता का कर्तव्य है कि वह ऐसे साधन उत्पन्न कर दे, जो

उसकी संतान को सुखी करनेवाले हों, और दरअसल उसका सुखी होना या न होना उसके भाग्य का खेल है। मेरा कर्तव्य कर्म करना है, उसके फल की इच्छा करना नहीं। आह ! मैं फिर भूला जा रहा हूँ अपना वह मूल-मंत्र, जो मुझे आज ग्यारह वर्ष से इस संसार में संलिप्त कराए हुए है। स्वयं भगवान् कहते हैं—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।' यह सत्य है, सरल सत्य है। यही मूल-मंत्र मुझे अब तक जीवित किए है।

"बिट्टन का पुनर्विवाह करना मेरा कर्तव्य है। मैं करूँगा। इस विषय में मैंने उसकी इच्छा जानने की कोशिश की, हालाँकि उसने कोई उत्तर नहीं दिया, और वह उत्तर दे ही क्या सकती है, यह तो मेरा कर्तव्य है कि मैं उसे परिणय-सूत्र में बाँधकर संसार में प्रविष्ट कराऊँ। मैं मूर्ख हूँ, जो उसकी इच्छा जानने के लिये उत्सुक हूँ। इन दिनों न-मालूम क्यों मैं अपना विवेक खोता जा रहा हूँ। बिट्टन की समस्या ने मुझे एक तरह से बिलकुल पागल कर दिया है। मेरी क्रिया-शक्ति, मेरी विचार-शक्ति, सब एक-एक करके लुप्त होती जा रही हैं। मैं बिलकुल भोंदू हो गया हूँ।"

जस्टिस रामप्रसाद थककर एक कुरसी पर बैठ गए। मानसिक और शारीरिक क्लांति से क्षुब्ध होकर वह गिर पड़े, और उनकी आँखें बंद हो गईं। धीरे-धीरे वह अचेत हो गए।

इसी समय कुसुमलता किसी कार्य-वश उस कमरे में आई। पिता को देखकर वह चकित हो गई। उसने दौड़कर उनके हृदय की गति देखी—हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था। उसने भय-विह्वल कंठ से पुकारा—"बाबूजी, बाबूजी !"

सर रामप्रसाद ने अपने नेत्र धीरे-धीरे खोलकर कुसुमलता की ओर देखा—उनकी दृष्टि शून्य और डरावनी थी। कुसुमलता भय-भीत होकर उनकी ओर देखने लगी।

सर रामप्रसाद की विचार-शक्ति धीरे-धीरे लौट रही थी। उन्होंने कुसुमलता को पहचानकर कहा—"कौन, बिट्टन ! तुम कब आईं ?"

कुसुमलता के जी में जी आया। उसने विह्वल कंठ से उत्तर दिया—"मैं अभी-अभी आई हूँ। आपकी तबियत ख़राब है, डॉक्टर को बुलाती हूँ, आप उठिए नहीं।"

सर रामप्रसाद ने चैतन्य होकर कहा—"नहीं, डॉक्टर बुलाने की कोई ज़रूरत नहीं, मैं अब ठीक हूँ। तुम मत घबराओ। यह 'बेहोशी का दौरा' नया नहीं है। आज ग्यारह वर्षों से बराबर आता रहता है। जब से तुम्हारे विधवा होने की ख़बर सुनी थी, तब से इस रोग ने जड़ पकड़ी है, और तुम्हारी मा के मरने के बाद तो मैं इसका शिकार ही हो गया हूँ। इसका कोई इलाज नहीं है।"

कुसुमलता ने उठते हुए कहा—"तो भी डॉक्टर को बुला लेना उचित होगा। देर क्या लगेगी, अभी टेलीफ़ोन से बुलाए लेती हूँ। तीसरा पहर है, डॉक्टर दास कहीं बाहर न गए होंगे, अपने दवा-ख़ाने में मिलेंगे। आप बहुत कमज़ोर हैं। बाबूजी, मेरे अनुरोध से आप उठें नहीं, आराम करें।"

कुसुमलता की आँखों में विनय के आँसू झाँक रहे थे। दूसरे क्षण वह कमरे के बाहर हो गई। थोड़ी देर बाद ठंडे पानी का एक गिलास लिए हुए आई, और कहा—"आपके सिर को लाओ, धो दूँ।"

सर रामप्रसाद ने एक मलीन हँसी हँसकर कहा—"बिट्टन, तू घबरा नहीं, मैं बिलकुल ठीक हूँ। वह अलमारी खोलकर दवा का बॉक्स ले आ।"

कुसुमलता दवा का बॉक्स ले आई।

सर रामप्रसाद ने धीमे स्वर में कहा—"इसे खोलो। तीसरे ख़ाने

में एक लाल शीशी मिलेगी, उसे निकाल लो, और उस दवा की पाँच बूँदें जल में मिलाकर दो, मैं पी लूँ, फिर यह कमज़ोरी दूर हो जायगी।"

कुसुमलता ने दवा पिलाकर कहा—"आप मुझे पकड़कर उठ आवें, और पलँग पर लेट जायँ। डॉक्टर दास आने ही वाले हैं।"

सर रामप्रसाद ने सधीर शब्दों में कहा—"डॉक्टर साहब को क्यों बुलाया? अब मेरी तबियत बिलकुल अच्छी हो जायगी। जब मैं किसी मानसिक उलझन में पड़ जाता हूँ, तब यह बेहोशी आकर मुझे दबा लेती है।"

कुसुमलता ने पिता का सिर सहलाते हुए पूछा—"आप क्यों इतना ज़्यादा सोचते हैं?"

सर रामप्रसाद ने कुसुमलता की ओर देखने की चेष्टा करते हुए कहा—"बिट्टन, मुझे इस जीवन में किसी की चिंता नहीं—केवल तुम्हारी चिंता है। रात-दिन तुम्हारा भविष्य सोचा करता हूँ।"

कुसुमलता का हृदय कसकने लगा।

सर रामप्रसाद ने सप्रेम कुसुमलता का हाथ पकड़कर कहा—"बिट्टन, मैं नहीं जानता कि कैसे तुम्हें सुखी करूँ! मैंने तुम्हारा जीवन नष्ट किया है, अब इसे कैसे बनाऊँ, यह मेरी समझ में नहीं आता। मुझे संसार के सब सुख प्राप्त हैं—इज़्ज़त है, मान है, राज-पद है, संपत्ति है, सब कुछ है, लेकिन शांति फिर भी मेरे मन को नहीं। मैं इस संसार का सबसे दुखी व्यक्ति हूँ।"

कहते-कहते सर रामप्रसाद फिर कातर हो गए।

कुसुमलता ने अधीर होकर कहा—"बाबूजी, आप शांत होइए। मेरे लिये क्यों इतना चिंतित हैं। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि बहुत सुखी हूँ। आप जो आज्ञा देंगे, मैं नत-मस्तक होकर उसका सहर्ष पालन करूँगी। बाबूजी, आज मुझे बड़ा डर मालूम होता है!"

कहते-कहते वेदना-सिंधु का एक उष्ण बूँद सर रामप्रसाद के सिर पर गिर पड़ा। उन्होंने चौंककर ऊपर की ओर देखा। वह भी विह्वल हो गए। कुसुमलता अपने को अब सँभाल न सकी, दूसरे ही क्षण अपने पिता के हृदय में उसने उसी भाँति अपना सिर छिपा लिया, जिस तरह वह बाल्यावस्था में छिपाती थी। पिता का हृदय कातर होकर रोने लगा।

क्षण-भर दोनों रोते रहे। सर रामप्रसाद ने उसका सिर सूँघते हुए कहा—"बिट्टन, मैं तुम्हारा विवाह करूँगा, अपने पाप का प्रायश्चित्त करूँगा।"

कुसुमलता ने सर रामप्रसाद का वक्ष अपने अश्रुओं से भिगोते हुए कहा—"आप जो करेंगे, वह मुझे शिरोधार्य है। बाबूजी, आप मेरे लिये दुखी न हों।"

इसी समय डॉक्टर दास ने कमरे में सवेग प्रवेश किया। पिता-पुत्री के उस शोकमय दृश्य का उपसंहार हुआ। कुसुमलता अपने आँसू पोंछती हुई उठ खड़ी हुई।

डॉक्टर दास वह दृश्य देखकर स्थिर रह गए।

सर रामप्रसाद ने एक मलीन हँसी हँसकर कहा—"आइए डॉक्टर साहब, आज मुझे बेहोशी का दौरा फिर हो गया। बिट्टन उसे देखकर घबरा गई है। अभी बच्ची है, ज़रा-ज़रा-सी बात पर घबरा जाती है। आपकी दवा, जो आपने ऐसे मौक़ों के लिये दे रक्खी है, खा ली है। अब कमज़ोरी कम होती जा रही है। आइए, बैठिए!"

सर रामप्रसाद ने एक कुरसी की ओर संकेत किया।

डॉक्टर दास ने बैठते हुए कहा—"आप लोग तो डॉक्टर की बात पर कभी ध्यान नहीं देने सकता, और रोग बढ़ता है, फिर ऐसा डाक मारता है। फिर आप ही बताओ, डॉक्टर क्या करने सकता है।"

कुसुमलता को हँसी आ गई, और सर रामप्रसाद भी हँसने लगे। डॉक्टर की दवा ने जो काम नहीं किया, वह उनकी बोली ने कर दिया।

डॉक्टर दास पिता-पुत्री को हँसते देखकर क्रुद्ध हो गए। उन्होंने सक्रोध कहा—"फिर आप लोग हँसता है! कितना आपको वारन किया कि दिमाग से अधिक काम लेने नहीं सकता, लेकिन कुछ खयाल में नहीं लाता। आपको आराम, 'कमप्लीट रेस्ट' की जरूरत है। अगर आप हमारे कहने माफिक नहीं करेगा, तो हम आपकी जिम्मेवारी नहीं लेने सकता।"

कुसुमलता ने अपनी हँसी रोकने की चेष्टा करते हुए कहा—"आपके हुक्म के माफ़िक़ काम होगा, बतलाइए, आप क्या कहते हैं?"

डॉक्टर दास का इस परिवार के साथ पुराना संबंध था। कुसुमलता के जन्म के पहले से उनका आना-जाना था। वह इस परिवार से उसी तरह अवगत थे, जिस तरह अपने परिवार से।

डॉक्टर दास ने कुछ शांत होते हुए कहा—"आपका ब्याह करने पीछे सर साहब को मंसूरी ले जाना होगा, और वहाँ कुछ महीना तक बिलकुल काम नहीं करना होगा। सबसे पहला काम है आपका ब्याह करना। आपका ब्याह होने बाद यह बीमारी आधा हो जावेगा, और फिर इसको जीत लेना मुश्किल नहीं होगा।"

कुसुमलता सिर नत कर पृथ्वी की ओर देखने लगी।

सर रामप्रसाद ने कहा—"हाँ डॉक्टर साहब, कहीं जाने के पहले बिट्टन का ब्याह करना होगा। मैंने वर निश्चित कर लिया है, इसी जुलाई में बिट्टन का ब्याह कर दूँगा।"

डॉक्टर दास ने प्रसन्न-कंठ से कहा—"हाँ, अब ठीक है। फिर कोई डर का बात नहीं है। आपको दिमाग का बीमारी है, कोई

मोटा रोग नहीं है । जुलाई में ठीक है । जितना जल्दी विवाह करेगा, उतना जल्दी फायदा होगा । पात्तर (वर) कौन-सा ठीक किया है ?"

सर रामप्रसाद ने कहा—"लखनऊ-युनिवर्सिटी के फ़िलॉसफ़ी के रीडर डॉक्टर आनंदीप्रसाद को निश्चित किया है । अभी कोई बात-चीत तय नहीं की, लेकिन उम्मेद है, सब कुछ तय हो जायगा । वर सुपात्र हैं, और शिक्षित । आपकी क्या राय है ?"

डॉक्टर दास ने प्रसन्न होकर कहा—"बहुत ठीक है । मैं उसे जनता हूँ । उसका भी इलाज किया है । बहुत भला आदमी है । खूब पढ़ा-लिखा है ।"

सर रामप्रसाद ने संतुष्ट होकर कहा—"जब आपका इतना अनुरोध है, तब कल ही जाकर मैं यह संबंध ठीक कर आऊँगा । एक ख़ूराक दवा क्या और ले लूँ ? कमज़ोरी अभी मालूम होती है ।"

डॉक्टर दास ने चौंककर कहा—"ओह ! बड़ा भूल हुआ, माफी चाहता हूँ । आपको दवा देना भूल गया । ख़ैर, कुछ हरजा की बात नहीं है । अभी बात-का-बात में सब ठीक किए देता हूँ ।"

यह कहकर उन्होंने अपना दवा का बॉक्स खोला, और कुसुम-लता को पानी लाने को कहा । कुसुमलता एक नौकर को पानी लाने का आदेश देकर, फिर वहाँ आकर खड़ी हो गई । डॉक्टर दास अपने बैग से दवाएँ निकाल रहे थे । शीशे के गिलास में दो-तीन दवाएँ मिलाकर पानी मिलाया, और उसे देते हुए कहा—"आप यह दवा पी जावें । थोड़ी देर बाद आपको ख़ूब नींद आवेगा । यह आपका नींद रात को नौ बजे के करीब खुलेगा । आप उस वक्त खाना खाकर आध घंटा पीछे फिर इस दवा का एक ख़ूराक खा लीजिएगा, थोड़ी देर में गहरी नींद आ जावेगा, और कल सुबह

यह कमजोरी बिलकुल दूर हो जावेगा। मैं एक खूराक बनाकर रक्खे जाता हूँ। कल फोन से हमको सब खबर बोलेगा। अब हम जाने माँगता है। मरीज लोग जमिया होगा।"

यह कहकर डॉक्टर दास ने एक दूसरी खूराक बनाकर कुसुमलता को दे दी, और चले गए।

कुसुमलता ने सर रामप्रसाद को उठाकर पलँग पर लिटा दिया, और उनके सिरहाने बैठकर उनके सिर पर हाथ फेरने लगी। सर रामप्रसाद दवा के प्रभाव से धीरे-धीरे सोने लगे, और पाँच मिनट बाद गहरी नींद में सो गए। कुसुमलता बैठे-बैठे सोचने लगी—अपना भविष्य।

---

(४)

दूसरे दिन सर रामप्रसाद की नींद लगभग ८ बजे सुबह खुली। ग्रीष्मकालीन सूर्य की किरणों में प्रखरता उत्पन्न हो गई थी, और थोड़-थोड़ी गरमी पड़ने लगी थी। आँख खुलते ही जिस पर सबसे पहले उनकी दृष्टि पड़ी, वह कुसुमलता थी, जो एक आराम-कुरसी पर बैठी उनकी ओर ध्यान से देख रही थी। आँख खुलते ही कुसुमलता ने पूछा—"बाबूजी, अब तबियत कैसी है ?"

सर रामप्रसाद ने उत्तर दिया—"अब ठीक है। तू क्या रात-भर यहीं बैठी रही, सोई नहीं ?"

कुसुमलता ने एक जम्हुआई लेते हुए कहा—"सोई क्यों नहीं, यहीं सोफ़े पर सो गई थी। आपको अकेले छोड़कर कैसे जाती ?"

सर रामप्रसाद ने उठते हुए कहा—"तूने ऐसा क्यों किया ? यह तो तुझे मालूम ही था कि मैं रात-भर सोऊँगा। डॉक्टर दास सोने की दवा दे गए थे, फिर जागने की क्या ज़रूरत थी ? फ़िज़ूल तंदुरुस्ती ख़राब करना ठीक नहीं।"

सर रामप्रसाद के स्वर में वात्सल्य-पूर्ण मीठी झिड़की थी।

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"मैं रात-भर जागती नहीं रही। आप मेरे लिये चिंता न करें, मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ।"

सर रामप्रसाद ने उठकर एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"बिट्टन, ज़रा फ़ोन से राधारमण को तो बुला। कह दे कि बहुत ज़रूरी काम है, अभी-अभी चले आवें।"

कुसुमलता आदेश-पालन के लिये कमरे के बाहर हो गई। सर रामप्रसाद कुछ सोचने लगे। थोड़ी देर में कुसुमलता ने वापस

आकर कहा—"वह अपने दामाद के साथ कहीं बाहर गए हैं। मन्नी ने कहा है कि आते ही उन्हें भेज दूँगी।"

सर रामप्रसाद ने धीमे स्वर में कहा—"राधारमण का दामाद बड़ा ही सुशील और सभ्य है। वह मेरी उतनी ही इज़्ज़त करता है, जितनी राधारमण की।"

कुसुमलता के मुख का रंग धीरे-धीरे लाल हो रहा था—शरीर काँप रहा था। वह चुपचाप एक चित्र की ओर देखने लगी।

सर रामप्रसाद ने उसकी ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। वह कहते ही रहे—"उस दिन भोज दिया था। वह मेरे पास आया, और मुझे प्रणाम किया। उसकी शिष्टता देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। उसकी बातों से मेरा हृदय प्रसन्न हुआ। विनय और सौजन्य की वह मूर्ति है। बिट्टन, उसका नाम क्या है?"

कुसुमलता के हृदय की धड़कन बढ़ती जा रही थी। कपोलों की सहज अरुणिमा गाढ़ी होती जा रही थी। उसने अपना सिर दूसरी ओर घुमाते हुए कहा—"बाबू राजेंद्रप्रसाद।"

सर रामप्रसाद की स्मृति ताज़ी हो गई। उन्होंने तुरंत ही कहा—"हाँ, राजेंद्रप्रसाद। नाम भी अच्छा है। राजेंद्र वास्तव में राजेंद्र है। राधारमण भाग्यशाली है, जो उसे ऐसा दामाद मिला। शुरू से ही वह भाग्यशाली रहा है। मेरे साथ उसने वकालत शुरू की थी, और तब से हम दोनो बराबर उन्नति करते आ रहे हैं। अभी हाल में मैंने सरकारी नौकरी कर ली, लेकिन उसने नहीं की, यह अच्छा ही किया। मैंने सम्मान के लालच से स्वीकार कर ली, और अब पछता रहा हूँ।"

इसी समय सवेग राधारमण ने कमरे में प्रवेश किया। साथ में मनोरमा और राजेंद्र भी थे।

बाबू राधारमण ने आते ही कहा—"आपकी तबियत अब कैसी है?"

सर रामप्रसाद ने एक मलीन हँसी हँसकर कहा—"अब तो अच्छी है।"

राजेंद्रप्रसाद ने आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम किया। सर रामप्रसाद ने उनकी ओर देखकर कहा—"बेटा, अभी-अभी तुम्हारा ही गुण-गान कर रहा था। तुम सदैव प्रसन्न रहो, यही मेरा हार्दिक आशीर्वाद है।" यह कहते हुए वह उनकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। कुसुमलता मनोरमा को लेकर कमरे के बाहर हो गई।

बाबू राधारमण ने चिंतित स्वर में पूछा—"जब आपकी तबियत इतनी ख़राब हो गई थी, तब आपने मुझे बुलवा क्यों नहीं भेजा? कोई ख़बर तक नहीं दी!"

सर रामप्रसाद ने एक मलीन हँसी के साथ कहा—"यह तो तुम्हें मालूम है, मुझे बेहोशी के दौरे आते हैं। यह कोई नई बीमारी नहीं है, कल भी दौरा हो गया, और तबियत बहुत ख़राब हो गई। ऐसी कमज़ोरी आ गई, मानो बरसों से बीमार हूँ। तुम्हें बुलाकर ही क्या करता, डॉक्टर दास मुझे सोने की दवा दे गए थे, उससे तुरंत ही नींद आ गई। अभी-अभी नींद टूटी है। उन्होंने कहा था कि रात को नौ बजे नींद टूट जायगी, लेकिन मैं तो मुतवातिर १६ घंटे सोता रहा। अब तबियत अच्छी है। दिमाग़ भी शांत है, लेकिन कमज़ोरी अब भी मालूम होती है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कुरसी से उठते हुए पूछा—"डॉक्टर दास को बुला लाऊँ?"

सर रामप्रसाद ने उनका हाथ सप्रेम पकड़ते हुए कहा—"नहीं, अब कोई ज़रूरत नहीं। थोड़ी देर में सब ठीक हो जायगा। तुम बैठो, मेरे लिये कोई कष्ट न करो।"

राजेंद्रप्रसाद ने सरलता-पूर्वक कहा—"इसमें मुझे क्या कष्ट होगा। डॉक्टर को दिखा देना अच्छा होगा।"

बाबू राधारमण ने आँखों से राजेंद्रप्रसाद को जाने के लिये संकेत किया। सर रामप्रसाद आपत्ति करते ही रहे, और राजेंद्रप्रसाद कमरे के बाहर हो गए।

राजेंद्रप्रसाद के जाने के बाद सर रामप्रसाद ने कहा—"देखो, बिट्टन का विवाह करना है, यही रात-दिन सोचता रहता हूँ। पहले भी इस मामले में तुम्हारी सलाह ले चुका हूँ, और आज भी पूछता हूँ, बिट्टन का विवाह करूँ या न करूँ?"

बाबू राधारमण ने तुरंत उत्तर दिया—"बिट्टन का ब्याह क्यों न किया जाय? मैं तो इसमें कोई आपत्ति नहीं देखता, बल्कि यह कहूँगा कि अगर बिट्टन का विवाह नहीं करें, तो इससे बेहतर है, ज़हर देकर हम लोग उसे मार डालें। आप भी न-मालूम किस उलझन में पड़े हैं।"

सर रामप्रसाद ने चिंतित स्वर में कहा—"इसी उलझन ने तो मुझे ऐसी अवस्था में पहुँचा दिया है। इस विवाह में हमें अपनी जाति से विरोध करना पड़ेगा। केवल यही डर है। इसके अलावा हिंदू-धर्म की पवित्रता क्या इसे स्वीकार करेगी?"

बाबू राधारमण ने उत्तर दिया—"बेशक, बिट्टन के विवाह से हिंदू-धर्म की पवित्रता नष्ट नहीं होती। जब हम अछूतों को अपने साथ मिलाकर हिंदू-जाति का संगठन कर रहे हैं, तब तो हमें विधवाओं को, जो हमारे समाज की एक मुख्य अंग हैं, अपने साथ लेना पड़ेगा। उन्हें विवाह के पवित्र सूत्र से बाँधकर हिंदू-संतान उत्पन्न कराना होगा। लेकिन बिट्टन तो केवल नाम-मात्र को विवाहित है, उसका सुहाग तो हमारे ही कर्म से नष्ट हुआ है। हमारे अपराध का फल वह क्यों भोगे?"

सर रामप्रसाद ने प्रसन्न होकर कहा—"बस, यही मेरा कहना है। वाक़ई मेरे पाप का फल वह क्यों भोगे? यही चिंता, यही प्रश्न

मुझे रात-दिन परेशान किए रहता है। बस, अब निश्चय हो चुका, बिट्टन का विवाह करना है। तुम तो मेरा साथ देने को तैयार हो ?"

बाबू राधारमण ने प्रसन्न-कंठ से कहा—"सबसे पहले। संसार आपको त्याग दे, लेकिन मैं नहीं छोड़ने का। आप बिट्टन का विवाह करें, नहीं आप चुपचाप बैठे रहें, मैं करूँगा। मेरे लिये तो वह मन्नी से भी बढ़कर है।"

सर रामप्रसाद ने उठते हुए कहा—"तो बस, ठीक है। आज ही डॉक्टर आनंदीप्रसाद के यहाँ जाकर सब ठीक कर आओ। अगर कहो, तो मैं भी चलूँ ?"

राधारमण ने कहा—"नहीं, आप फ़िज़ूल तकलीफ़ न उठाएँ, मैं अभी-अभी जाता हूँ। राजेंद्र बाबू आ जायँ, तो उन्हें लेकर जाऊँ। इधर डॉक्टर आनंदीप्रसाद से उनका बहुत घनिष्ठ संबंध हो गया है।"

सर रामप्रसाद ने क़द्दे-आदम शीशे के सामने खड़े होकर कहा—"वाक़ई तुम्हारा दामाद बड़ा ही सुशील और विनयी है। उसे देखकर मेरा चित्त प्रसन्न हो जाता है। क्या ही अच्छा होता, अगर मैं ऐसे लड़के का पिता होता!" पुत्र के अभाव में एक शोक-सूचक आह निकल गई।

बाहर पद-ध्वनि सुनाई दी, और दूसरे ही क्षण डॉक्टर दास ने वेग के साथ कमरे में प्रवेश किया, और कहा—"जज साहब, अब आपका तबियत कैसा है। मैंने बोला था कि मुझको फ़ोन से इत्तला देना, लेकिन आप लोग वैसा नहीं करेगा।" फिर बाबू राधारमण को अभिवादन कर कहा—"ओह-हो, बैरिस्टर साहब, आप भी आ गया, यह बहुत अच्छा बात है। हमारी बात जज साहब कभी नहीं सुनने का।"

बाबू राधारमण ने हँसते हुए कहा—"आपकी बात क्यों नहीं सुनेंगे, हमें सुनना ही पड़ेगा। आपके हुक्म के ख़िलाफ़ अपील कहीं नहीं होती!"

डॉक्टर साहब ने प्रसन्न होकर कहा—"हाँ, यह बात तो ठीक है। डॉक्टर का हुक्म सबको मानना पड़ता है। हमारे शहंशाह को भी हम लोगों का हुक्म माथा पर रखना होता है।"

डॉक्टर दास आत्मसंतुष्टि से हँसने लगे।

सर रामप्रसाद ने कहा—"अब तो तबियत अच्छी है, केवल थोड़ी-सी कमज़ोरी बाक़ी है। अब कोई दवा दीजिएगा?"

डॉक्टर दास ने नब्ज़ देखते हुए कहा—"नहीं, अब दवा की कोई जरूरत नहीं। खाना खाने के बाद सब ठीक हो जायगा। आपने कल रात को क्या खाया?"

सर रामप्रसाद ने उत्तर दिया—"आपकी दवा नें कल मुझे सुलाया था, और मैं आज अभी एक घंटा पहले उठा हूँ। मैं नहीं जानता कि क्यों मेरी नींद नहीं टूटी।"

डॉक्टर दास ने कुछ सोचते हुए कहा—"ओह, तभी आपके कमजोरी ज्यादा है। खैर, कोई चिंता की बात नहीं है। तब तो मुझे दवा देना होगा। दवाखाना से दूसरी दवा बनाकर भेजूँगा, उसको खाना खाने के बाद खा लीजिएगा, और एक रात को सोने के पहले। कल सब ठीक हो जायगा। आज आप ठंडे पानी से स्नान कीजिए और सोच-विचार बिलकुल नहीं करना होगा।"

सर रामप्रसाद ने अपनी अनुमति ज़ाहिर की। डॉक्टर दास ने संतुष्ट होकर कहा—"बस, हमारे कहने माफिक काम कीजिए, फिर आपकी तंदुरस्ती का हम जिस्मेवार होने सकता है। बैरिस्टर साहब, आप लोग कुसुम का विवाह क्यों नहीं करता है? हमारा बंगाली लोगों में विधवा-विवाह तो होता है।"

बाबू राधारमण ने उत्तर दिया—"बिट्टन का विवाह तय करने के लिये मैं जा रहा हूँ। अगले महीने तक विवाह हो जायगा।"

डॉक्टर दास ने हँसकर कहा—"अभी कल जज साहब कहता था कि विवाह डॉक्टर आनंदीप्रसाद से तय कर दिया है, और आज आप कहता है कि हम विवाह तय करने जाता है। क्या बात है, कुछ समझ में नहीं आता है।"

बाबू राधारमण ने उत्तर दिया—"हम लोगों ने तो ठीक कर लिया है, लेकिन अभी डॉक्टर आनंदीप्रसाद से इस विषय पर बात नहीं की है। आज अभी जा रहा हूँ।"

डॉक्टर दास ने उठते हुए कहा—"बस, आप लोग यह समझ लेवें कि जितनी जल्दी आप कुसुमलता का ब्याह कर देगा, उतनी जल्दी जज साहब का तबियत अच्छा हो जायगा।"

यह कहकर वह बाबू राधारमण और राजेंद्रप्रसाद के साथ चले गए।

चंद्रमा की शीतल किरणें मेदिनी की श्यामल छटा को अपनी धवलता से चमकाने का निष्फल प्रयत्न उसी तरह कर रही थीं, जिस तरह विवाह का सुखमय संदेश कुसुमलता को उद्वेलित कर उसे अनजान आशंका के गंभीर सागर में निमग्न कर रहा था। द्वंद्व का युद्ध जीवन की मधुरिमा नष्ट कर उसे कंकाल की तरह भयावह बना देता है। मानव-पुतला किसी अदृश्य सूत्र से बँधा हुआ एक खिलौना है, जिससे विधि का विधान हँसता हुआ खेल खेला करता है, और वह निर्बल पुतला अहंकार से कहता है—संसार का कर्ता मैं हूँ। यद्यपि कुसुमलता यह जानती थी कि विवाह का सुख अनुपम है—उसकी आंतरिक आत्मा उस सुख को पाने के लिये लालायित थी, किंतु वह आज किसी अकथनीय, अदृश्य आशंका से सिहर रही थी। उसने अपने अशांत चित्त को स्थिर करने के लिये रेडियो का सहारा लिया। बंबई-बाज़ार की दैनिक रिपोर्ट वह कह रहा था; उसने खीझकर सुनना बंद कर दिया। नौकर को बुलाकर आइसक्रीम सोडा लाने को कहा। नौकर बात-की-बात में ले आया। वह रखकर चला भी गया। बर्फ़ गलकर ठंडी हो गई, और फिर वायु-मंडल उसकी शीतलता पान कर गया, लेकिन कुसुमलता को चेत न हुआ। वह अपने विचार-सागर में डूबी रही, जहाँ वह अनजाने चली गई थी। वह सोच रही थी—"मनुष्य जब किसी वस्तु की कामना करता है, तो उसे पाने के लिये उत्सुक होता है, उसके लिये प्रयत्न करता है, और जब वह उसके सामने आती है, तो झिझककर पीछे हट जाता है। मनोरमा के

सुहाग-सिंधु का उज्ज्वल फेन देखकर मेरे मन में इच्छा, नहीं, लालसा जागरित हुई कि मैं भी इस फेन को पान करूँ। मैं प्रेम-कथाएँ पढ़कर सोचा करती थी कि लेखक केवल कल्पना से यह प्रेम का संसार रचते हैं—'प्रथम साक्षात् में प्रेम' यह एक असंभव कल्पना है, लेकिन मेरी यह धारणा झूठ साबित हुई, और मैं स्वयं उसका शिकार बन गई। उन्हें देखकर मैं पागल हो गई। मनोरमा के प्रति भी द्वेष उत्पन्न हुआ, जो दूध की तरह निष्कपट है, मिश्री की तरह मधुर है, नवनीत की तरह कोमल है, जिसकी आत्मा प्रेम और सौहार्द्र से ओत-प्रोत है, जो उषा की तरह पवित्र है, प्रकाश की तरह उज्ज्वल है, और आभा की तरह मनोरम है। उस मनोरमा को मैंने शाप दिया है, उसे कोसा है, और उससे कपट रक्खा है। मैं कितनी नीच हो गई! यह क्यों? केवल उनके लिये। लेकिन क्या उन्होंने मेरी ओर देखा? नहीं। क्या उन्होंने मेरी वह पीड़ा अनुभव की, जिससे मेरा रोम-रोम दुखी है? नहीं। क्या उन्होंने मुस्किराकर मेरी ओर कभी देखा है? नहीं। लेकिन फिर भी मैं उन्हें प्यार करती हूँ। उनकी छाया मेरे रोम-रोम में व्याप्त है। मैंने इतने दिनों तक निरंतर, अविराम रूप से, इससे युद्ध किया है, लेकिन मैं सदैव हारती रही। हारते-हारते मेरी आत्मा का नैतिक बल निःशेष हो गया है। उफ़्! मैं अब नहीं सोच सकती।

"पिताजी मेरा विवाह करना चाहते हैं। इस चिंता ने उनका सारा सुख हरण कर लिया है। वह मेरी चिंता में रात-दिन विभोर रहते हैं। इस संसार में मेरे सगे केवल पिता हैं। वह भी मेरे लिये कातर होकर आकुल हैं—एक भयंकर बीमारी से पीड़ित हैं, जो किसी दिन उनके हृदय की गति सदा के लिये बंद कर सकती है। भगवान्, अगर तुम हो, तो मेरा यह बंधन मत छिन्न-भिन्न कर देना। माँ का सुख भाग्य में था ही नहीं;

केवल पिता का सुख है, वह मेरा संचित रहे, यही प्रार्थना है। डॉक्टर दास ने साफ़-साफ़ शब्दों में कह दिया है कि अगर वह अपना स्वास्थ्य चाहते हैं, तो मेरा विवाह कर दें। मैं अब क्या करूँ? यही तो प्रश्न है।

"डॉक्टर आनंदीप्रसाद मेरे भावी पति हैं। आज वह ख़ुद मनोरमा के पिता के साथ जाकर तय कर आए हैं। उन्होंने ख़ुद यह फाँसी का फंदा मेरे गले में डाला है। वह नहीं जानते कि वह क्या अनर्थ कर रहे हैं, क्योंकि वह तो मनोरमा के प्रेमोद्यान में भ्रमण कर रहे हैं—उसकी प्रेम-मदिरा में बेसुध हैं। लेकिन अगर उन्हें मेरे प्रेम-सिंधु की लहरें भिगो भी दें, तो क्या वह मेरे हो सकेंगे? नहीं! मनोरमा कब मुझे उस सिंहासन का एक कोना देगी, जिस पर वह स्वयं आसीन है, और शायद वह भी ऐसा करने के लिये तैयार न हों। लेकिन कहने में क्या दोष है? किससे कहूँ? मनोरमा से? मैं नहीं कह सकती। उनसे? नहीं कह सकती। फिर किससे कहूँ?

"आह! वह कितने भव्य हैं, कितने सुंदर हैं। मैं उन्हें शायद जन्म-जन्मांतर से जानती हूँ। वह मेरे चिर-परिचित हैं, लेकिन फिर भी मेरे बेगाने हैं। नहीं, मैं विवाह नहीं करूँगी। डॉक्टर आनंदी-प्रसाद से विवाह करके मेरे जीवन की शांति नष्ट हो जायगी। मैं दुराचारिणी हो जाऊँगी। मनोरमा के आदेशानुसार तपस्या करूँगी, हिंदू-विधवा की तपस्या करूँगी, ईश्वर पर विश्वास करूँगी, सत्य पर विश्वास करूँगी, और भाग्य पर विश्वास करूँगी। मैं हिंदू हूँ, हिंदू-नारी की भाँति उस कठोर व्रत का पालन करूँगी, जिसे मनोरमा ईश्वर की पवित्रता कहती है। इसी में शांति मिलेगी। उन्हें पाने के लिये तपस्या करूँगी। मैं अपनी जीवन-धारा आज उस ओर ले जाऊँगी, जिसे मैंने सदैव घृणा की दृष्टि से देखा है, हमेशा जिसका मज़ाक़ उड़ाया है। आज से मैं आस्तिक बनती हूँ।

"प्रेम भी कितना पागल है, जो मनुष्य को अपने प्यारे के रंग में रँग देता है। इन विचारों से मुझे आज स्वयं आश्चर्य होता है। मेरा हृदय कितना निर्बल हो गया है। पहले की तीव्रता, पहले का जोश, पहले की स्फूर्ति, सब निस्तेज हो गए। मैं सोचती थी कि समाज से लड़ूँगी, पुरुष-जाति से लड़ूँगी, विधाता से लड़ूँगी, और भाग्य से लड़ूँगी, लेकिन आज मैं उनकी दास हूँ। उन पर मैं शासन करना चाहती थी, लेकिन आज उनकी प्रजा हूँ। कितना विरोध है! कैसा परिवर्तन है!

"उनकी इच्छा जानना भी तो उचित है। मैं नारी हूँ, लोभ संवरण नहीं कर सकती। मैं उनकी होना चाहती हूँ। उनकी आत्मा में मिलकर उनमें लीन होना चाहती हूँ। उन्होंने मेरी उच्छृंखलता नष्ट की है। मैं उनकी ही होकर जीवित रहना चाहती हूँ।

"मैं सचमुच पागल हो गई हूँ। मेरी विचारों की स्थिरता कहाँ लुप्त हो गई? मैं कहाँ भटकी-भटकी फिर रही हूँ, कैसी भूलभुलैया में चक्कर काट रही हूँ? ये सब फ़िज़ूल की बातें न सोचूँगी। मेरे लिये कर्तव्य-क्षेत्र असीम है। उन्होंने मेरा जीवन नष्ट कर दिया है, यह सत्य है। मेरे जीवन की शांति भंग कर दी है, लेकिन फिर भी वह मेरे प्यारे हैं, प्राणों से भी प्यारे हैं। उन्हें कैसे छोड़ूँ? उफ़! मैं कितनी कमज़ोर हो गई हूँ। जिस बात का अहद करती हूँ, वह तुरंत ही भूल जाती हूँ। वह कितना मेरे प्राणों में समा गए हैं, यह स्वयं मुझे नहीं मालूम!

"पिताजी मेरे लिये कितने व्याकुल हैं। उनकी जीवन-रक्षा तो मुझे करनी ही होगी। वह मेरे लिये प्राण संकट में डाल रहे हैं, उनकी रक्षा करना ही मेरा धर्म है, परम कर्तव्य है। मेरे विवाह में देर होने से उन पर विपत्ति आ सकती है, और तब मेरा

हठ-धर्म रक्खा रह जायगा । नहीं, ऐसे हठ-धर्म को छोड़ना पड़ेगा। मेरी आशाओं का खून चाहे भले हो, लेकिन मैं पिताजी को दुःखित नहीं करूँगी। यों भी संतान का कर्तव्य है पिता को सुख देना। फिर मैं अपने कर्तव्य से च्युत क्यों होऊँ ?

"हिंदू-नारियाँ तो निर्वाक् होती हैं। वे अपने पिता, पति और पुत्र के अधीन होती हैं। उनकी गुलामी का दस्तावेज़ उनकी आँचल में लिखा हुआ है। वे गुलाम पैदा हुईं, और गुलाम ही मरेंगी। परिस्थितियों की कशमकश में उनका जीवन बीतता है, और वे उसी तरह अपना जीवन विसर्जन करती हैं। बाल्यकाल में वे पिता की इच्छा पर बलिदान होती हैं, यौवन में पति की गुलामी करती हैं, और वृद्धावस्था में पुत्र की उपेक्षा सहन करती हैं। ये हैं हमारी हिंदू-नारियाँ !

"मैं शिक्षित हूँ, अपना मूल्य समझती हूँ, अपना बल मुझे मालूम है, लेकिन आज मैं असहाय हूँ, उसी तरह, जैसे एक साधारण हिंदू-नारी होती है। मुझे पिता के लिये अपने सिद्धांतों का खून करना पड़ेगा। अनिच्छित पुरुष से जानते-बूझते विवाह करना पड़ेगा। मैं यह स्वीकार करती हूँ कि डॉक्टर आनंदीप्रसाद में वे सब गुण हैं, जो एक पुरुष में होने चाहिए, लेकिन फिर भी मैं उन्हें प्यार नहीं कर सकती। मैं उन्हें अपना वह भेंट नहीं कर सकती, जिसे मैंने किसी दूसरे के लिये उत्सर्ग कर दिया है। किंतु मुझे विवाह करना पड़ेगा, यह सत्य है।"

इसी समय मनोरमा ने आकर उसकी आँखें बंद कर लीं। कुसुमलता चौंक पड़ी, और भयभीत होकर उसके दोनो हाथ पकड़कर अपनी आँखें खोलने का प्रयत्न करने लगी। मनोरमा मधुर हँसी में हँस पड़ी।

कुसुमलता ने शांत होकर कहा—"अरे ! तुम हो मनो !"

मनोरमा ने हँसकर कहा—"हाँ, मैं हूँ, तुम्हारी......... ।"

कुसुमलता ने उसकी ओर देखकर कहा—"क्या, कहती क्यों नहीं, रुक क्यों गई ?"

मनोरमा ने उसकी ओर देखते हुए कहा—"कह दूँ, बुरा तो न मानोगी ?"

कुसुमलता ने विश्वास दिलाते हुए कहा—"नहीं, मैं बुरा न मानूँगी, तुम कहो ।"

मनोरमा ने उसके कान के पास जाकर धीमे स्वर में कहा—"तुम्हारी सौत !"

यह कहकर मनोरमा हँसने लगी, लेकिन कुसुमलता भय से श्वेत हो गई । उसका मुख चूने की तरह शुष्क हो गया ।

मनोरमा ने गंभीर होकर कहा—"मैं कहती थी कि तुम बुरा मान जाओगी ।"

कुसुमलता ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह कुछ और सोच रही थी ।

मनोरमा कहने लगी—"कुसुम, कई रोज़ हुए जब मेरे मन में एकाएक यह विचार उत्पन्न हुआ कि कैसा हो, अगर मैं तुम्हें अपनी सौत बनाकर सदैव अपने पास रक्खूँ । हमारी मित्रता का सूत्र कभी छिन्न न हो । लेकिन इस प्रस्ताव को तुम्हारे सामने रखने की हिम्मत नहीं हुई ।"

कुसुमलता ने एक शुष्क हँसी हँसकर कहा—"लेकिन सखी, जानती हो, मैं तुम्हारा वह सुहाग, जिसमें तुम आज विभोर हो, अपने विष से जला दूँगी, और तुम पथ की भिखारिनी हो जाओगी ।"

मनोरमा ने मृदुल हास्य-सहित कहा—"लेकिन फिर भी तुम्हारे और उनके साथ तो रहूँगी । उनका प्रकाश मेरा जीवन है, और तुम्हारा साथ मेरा हास्य । मुझे इसका भय नहीं है कुसुम !"

कुसुमलता ने एक अंतर्भेदी दृष्टि से मनोरमा की ओर देखते हुए कहा—"लेकिन वह क्या इसे स्वीकार करेंगे?"

मनोरमा ने सरलता से उत्तर दिया—"अगर तुम्हारी आज्ञा हो, तो उनसे तय करूँ।"

कुसुमलता ज़ोर से हँस पड़ी। उसकी हास्य की कर्कश ध्वनि निःशेष होने पर भी झंकरित होती रही।

मनोरमा ने चकित होकर कहा—"तुम मज़ाक़ करती हो?"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"और क्या तुम सत्य कहती हो?"

मनोरमा ने कहा—"हाँ, मैं सत्य कहती हूँ। मैंने इस प्रश्न पर विचार किया है, और मैं यह चाहती हूँ कि हमारा और तुम्हारा संबंध-विच्छेद न हो। क्या हम लोग साथ नहीं रह सकतीं?"

कुसुमलता ने कुरसी से उठते हुए कहा—'मन्नी तुम बड़ी भोली हो।"

मनोरमा ने मुस्किराकर कहा—"और तुम बड़ी शैतान हो!"

यह कहकर कुसुमलता कमरे के बाहर चली गई। मनोरमा एक मासिक पत्र उठाकर देखने लगी।

---

(६)

रानी मायावती ने करवट बदलकर कहा—"अरी रेणू, तू कहाँ चली गई ?"

रेणू उर्फ़ रेणुका ने, जो पास ही बैठी हुई ऊँघ रही थी, सजग होकर अपनी स्वामिनी के पास आकर कहा—"मैं तो पास ही बैठी हूँ।"

रानी मायावती ने सामने दीवार की ओर दृष्टि स्थिर करके कहा—"देख, किसी को मेरे पास मत आने दे। मुझे यहाँ की वायु में विष मिला हुआ मालूम होता है। मैं यहाँ किसी का विश्वास नहीं करती। आज मा को पत्र लिखे छ दिन हो गए हैं। कोई-न-कोई आज मुझे लेने आवेगा। आज अभी-अभी मैंने स्वप्न देखा है कि बाबा (राजा भूपेंद्रकिशोर) आए हैं। रेणू, तू मुझे छोड़कर कहीं मत जा। मुझे बड़ा भय मालूम होता है।"

रेणुका रानी मायावती के मायके की दासी है, जिसे दहेज़ में रानी किशोरकेसरी ने उन्हें दिया था। आज ५-६ दिनों से रानी मायावती मानसिक उद्विग्नता से बीमार हैं, कमरे के बाहर निकलने का साहस उन्होंने नहीं किया। रात-दिन केवल काल्पनिक भय से सिहरती और चारो ओर विष का वायु-मंडल अनुभव करती रहती हैं। उन्हें यह विश्वास था कि राजा प्रकाशेंद्र मौक़ा मिलने पर विष दे देंगे। इस भय से वह राजमंदिर की रसोई में बना हुआ कोई पदार्थ न खाती थीं, यहाँ तक कि रक्खा हुआ जल तक न पीती थीं। जब रेणुका बाज़ार से जाकर उनके लिये भोजन लाती, तब खाती थीं, और उसकी लाई हुई लेमनेड या आइसक्रीम की बोतल पीकर अपनी प्यास शांत करती थीं। किसी को वह अपने कमरे में नहीं आने देती थीं।

उपर्युक्त घटना के बाद राजा प्रकाशेंद्र को भी साहस न होता था कि वह रानी मायावती के सम्मुख जायँ। वह उनसे दूर-ही-दूर रहते, और अशांत चित्त से अपने दिन व्यतीत कर रहे थे। राज-मंदिर के नौकरों को केवल यह मालूम था कि राज-दंपति में कुछ झगड़ा हो गया है। वे आपस में कानाफूसी करते, और तरह-तरह के अनुमान लगाते, लेकिन सत्य रहस्य से वे बिलकुल अपरिचित थे। रेणुका से वे पूछते, लेकिन वह भी कहती कि मुझे कुछ नहीं मालूम। राजा प्रकाशेंद्र चिंतित होकर उस उठते हुए तूफ़ान को देख रहे थे, जो धीरे-धीरे पूर्व से आ रहा था, और इसके लिये वह पूर्ण रूप से तैयार थे। रानी मायावती भी उत्कंठित चित्त से अपने पिता अथवा माता के आने की राह देख रही थीं, और यह विषाक्त वायु-मंडल छोड़कर दार्जिलिंग के शीतल वायु-मंडल में जाकर श्वास लेना चाहती थीं। विरोध के प्रथम रूप का नाम है अविश्वास।

राजा प्रकाशेंद्र भी इधर ज़्यादातर अपने कमरे के बाहर न निकलते थे। वह स्वयं कोई उलझी हुई गुत्थी सुलझाने में व्यस्त थे। उन्होंने स्वप्न में भी यह अनुमान न किया था कि उनका प्रेम-अभिनय इस तरह और इतनी जल्दी प्रकट हो जायगा। रानी मायावती ने कितनी शीघ्रता से वह प्रेम-रहस्य खोल लिया, यह उन्हें आश्चर्य होता था। जिस रमणी को वह भोली और बेवक़ूफ़ समझते थे, वह इतनी चतुर निकली!

रानी मायावती ने रेणुका से पूछा—"रेणु, आज कौन दिन है?"

रेणुका ने गिनकर बतलाया—"रानी साहबा, आज शुक्रवार है।"

रानी मायावती चुप हो गईं। वह सोचने लगीं—"मनुष्य का जीवन क्या है? एक अविराम संघर्ष, जहाँ क्षण-मात्र में विजयी पराजित हो जाता है, और नत उन्नत! एक निरंतर

परिवर्तित पट है, जिसकी ओट में प्रकाश और छाया आँख-मिचौनी खेलते हैं। समय की उँगली में घूमता हुआ एक चक्र है, जिसका केवल अर्धभाग ही प्रकाश में रहता है, और वह सदैव घूमा ही करता है। मैं बुलबुल की तरह गीत गा रही थी। आशा, उत्साह, यौवन के उद्दाम से ओत-प्रोत थी। मेरे सामने एक विस्तृत क्षेत्र था, जहाँ मैं अपनी कल्पना के मंदिर-पर-मंदिर बना रही थी। ख्याति के शृंग पर चढ़ रही थी। रूपगढ़ की रानी को लोग ईर्ष्या से देखते थे, और सभ्य समाज आदर से नाम लेती थी। स्त्रियों के अधिकार प्राप्त करनेवाली संस्था की मैं सभानेत्री थी। एक शक्ति का केंद्र थी। परंतु...परंतु आज क्या हूँ ? एक प्रताड़ित, निर्बल हिंदू-अबला। मेरे सामने कल्पना की नहीं, सत्य की लड़ाई है। मेरा पति मेरे प्रति अविश्वासी सिद्ध हुआ, चोर प्रमाणित हुआ। उसका दंड-विधान क्या है ? हिंदू-समाज यह अपराध दंड-संग्रह की किस दफ़ा में निर्धारित करेगी ? हिंदू-समाज में पुरुष स्वतंत्र है। अबला-जाति यथार्थ अबला कर दी गई है। किंतु हिंदू-पुरुष-शास्त्रकारों का धूर्त कौशल देखो कि शब्दों में वे स्त्रियों को सर्वोच्च आसन देते हैं। मनु कहते हैं—'यत्र नारियस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।' पूजा-ग्रंथ-रचयिता कहते हैं—'या देवी सर्वभूतेषु...।' वे नमस्कार करते हैं। कवि गान करता है—'के बोले मा, तुमि अबले।' परंतु असली तत्त्व क्या है, असलियत क्या है ? स्त्री पुरुष-जाति की ग़ुलाम है। वह निर्बल है, उसके पास कोई उपाय नहीं, जिससे वह अपने पति के ख़िलाफ़ खड़ी होकर न्याय-युद्ध कर सके। हिंदू-नारी एक आततायी द्वारा हरण की जाकर अपनी इच्छा के विरुद्ध पवित्रता के साथ रहकर बड़े ही कष्ट में अपने दिन व्यतीत करती है, और जब उसका पति उस आततायी से छुड़ाता है, तो वह अपने सतीत्व की परीक्षा अग्नि में बैठकर देती है, और वही सती केवल

एक मूर्ख के उपालंभ से एक मर्यादा-पुरुषोत्तम द्वारा, जिन्हें भगवान् की पदवी से विभूषित किया गया है, भयंकर जंतुओं के क्रीड़ा-प्रांगण में कुत्ते की मौत मरने के लिये छोड़ दी जाती है। यह है हिंदू-नारी की वास्तविक स्थिति, उसका हिंदू-समाज में स्थान। यदि भगवान् ने स्त्री-जाति को मोहक शक्ति से सज्जित न किया होता, तो हिंदू-नारी का अस्तित्व ही न मिलता। पुरुष-जाति किस सफ़ाई से इस कलंक-कालिमा को धो डालती है, यह कहकर कि यह राजा का आदर्श है। वाह ! कैसा आदर्श है ! कितना खोखलापन है !

"मैं एक स्त्री-समाज की, उसके एक संगठन की केंद्र हूँ, लेकिन मैं भी आज निरुपाय हूँ। मेरा पति मेरी आँखों के सामने व्यभिचार करता है, परंतु क्या मैं उसे न्यायालय में उत्तर देने के लिये खड़ा कर सकती हूँ ? नहीं। क्या मैं संबंध-विच्छेद करने के लिये उसे मजबूर कर सकती हूँ ? नहीं। क्या मैं अपनी फ़रियाद किसी के सामने कर सकती हूँ ? नहीं। परंतु वह, अगर मैं अपराधिनी होऊँ, तो मुझे दंड दे सकता है। हिंदू-शास्त्र यही कहते हैं, हिंदू-क़ानून में यही लिखा है, और हिंदू-समाज का यही कथन है। एकांगी न्याय का कितना सत्य उदाहरण है। पक्षपात का पूर्ण प्रमाण है। यह है हिंदू-समाज का गौरव, उसकी गरिमा और उसका आदर्श। सभ्यता के खोखलेपन का यह जीवित चित्र है, जिस पर हिंदू-धर्म को नाज़ है।

"जब मेरी यह दशा है, तब दूसरी बहनों की क्या होगी ? वे तो ग़ुलामी में पैदा हुईं, ग़ुलामी में ही मरेंगी। उन्हें यह नहीं मालूम कि उनके अधिकार क्या हैं। उन्हें यह विश्वास है कि उनका जन्म पुरुष-जाति की ग़ुलामी करने के लिये हुआ है, और इसी में उनकी मुक्ति है। देखो, कितनी चतुरता से वह ग़ुलामी का पाठ हमारी जाति को पढ़ाती है ! उसका प्रमुख कवि, जो स्वयं

पह तो विलासिता का कीड़ा था, कितने मीठे शब्दों में उपदेश देता है – नहीं, भय प्रदर्शित करता है—

'वृद्ध, रोग-बस, जड़, धन-हीना, अंध, बधिर, क्रोधी, अति दीना —
ऐसेहु पति कर किय अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना।'

फिर लोभ देता है—

'बिनु स्रम नारि परम गति लहई, पतिव्रत-धरम छाँड़ि छल गहई।'

"यह तो ठीक है, किंतु पुरुष-जाति के लिये न कोई उपदेश है, न कोई भय-दर्शन है, और न कोई लोभ। वह उच्छृंखल है, वह स्वतंत्र है। भौंरे की तरह पुष्प-पुष्प पर बैठकर रस लेने को वह स्वच्छंद है। एक स्त्री रहते हुए दूसरी स्त्री से व्यभिचार कर सकता है, संतान पैदा करने के मिस से पुरुष एक नहीं, लाख, करोड़, अगणित विवाह कर सकता है। उसका भोग करना धर्म-विहित है, न्याय-संगत है, और प्रमाण-पूर्ण है। भगवान् ने समग्र सृष्टि पुरुष के भोग के लिये बनाई है, और सृष्टि में स्त्री है, वह भी उसके भोग की वस्तु है। कितना अविचार है, कितना अन्याय है!

"जब तक स्त्रियों की यह ग़ुलामी रहेगी, तब तक देश और राष्ट्र का कल्याण नहीं। भारतवासी नेता भी कितने मूर्ख हैं कि स्वराज्य चाहते हैं, स्वराज्य के लिये शोर मचाकर दिशाएँ कंपित करते हैं, किंतु उनके घर में स्वराज्य कहाँ है? ग़ुलामी की छाप से अंकित पुरुष-जाति क्या स्वराज्य पाने की अधिकारिणी है? पुरुष स्वयं अपने घर में अत्याचार करें, अन्याय करें, और फिर स्वराज्य की कामना करें। स्वार्थांध पुरुष-जाति इसे नहीं समझती, और इसीलिये स्वराज्य के बदले उसे मिलते हैं काले क़ानून! जब तक भारत की पुरुष-जाति अपनी स्त्रियों को समान अधिकारों से विभूषित न करेगी, तब तक स्वराज्य की आशा करना बालू से तेल निकालना है। किसी भी राष्ट्र को जगानेवाली वहाँ की स्त्रियाँ होती

हैं, और जब तक स्त्रियाँ नहीं जागतीं, तब तक राष्ट्र स्वतंत्र नहीं हो सकता। पुरुष स्त्रियों को अबला समझते हैं, और यही उनकी सबसे बड़ी भूल है। दरअसल स्त्रियाँ शक्ति की केंद्र हैं। यदि पुरुष-जाति सचमुच स्वराज्य चाहती है, तो उसे उचित है कि वह अपनी स्त्री-जाति को शिक्षित करे, उसे समान अधिकार दे, फिर जो संतान पैदा होगी, वह स्वतंत्र पैदा होगी। उसे संसार की कोई शक्ति परतंत्र नहीं रख सकती। आजकल स्वराज्य की लड़ाई एकांगी युद्ध है, तभी सफलता प्राप्त नहीं होती, और दिन-पर-दिन काले क़ानूनों के शिकंजों से गला घोटा जा रहा है। संसार के इतिहास में देखो, जब स्त्रियों ने क्रांति में भाग लिया, तभी क्रांति सफल हुई है। राष्ट्र की भीतरी सतह में तो स्त्रियों का स्थान है। जब तक वह भीतरी शक्ति विरोध के लिये नहीं उठेगी, तब तक क्या कोई क्रांति सफल हो सकती है? उदाहरण के लिये रूस की राज्य-क्रांति लो। रूस में लेनिन को उसी समय सफलता मिली, जब रूस की नारी-समाज ने उसका साथ दिया। फ्रांस की राज्य-क्रांति पहले सफल नहीं हो सकी—सन् १७६३ की क्रांति 'आतंक का राज्य' ही रहा, क्योंकि उसमें स्त्रियों का हाथ न था, वह पुरुषों की बर्बरता का नग्न नृत्य था, लेकिन बाद में वही फ्रांस सफल हुआ, जब वहाँ की स्त्रयों ने भी उस क्रांति में सहयोग किया। यह सत्य है, बिलकुल सत्य है कि पुरुष-जाति का कल्याण स्त्री-जाति को ग़ुलामी में बाँध रखने से नहीं हो सकता।"

रानी मायावती की विचार-धारा में धक्का लगा, क्योंकि उसी वक्त, रेणुका ने कहा—"रानी साहबा, मालूम होता है, बंगाल से कोई आया है!"

रानी मायावती चौंककर उठ बैठीं। उन्होंने अपने स्लीपर पहनते हुए कहा—"तुझे कैसे मालूम हुआ रेणू?"

रेणुका ने उत्तर दिया—"अभी-अभी मैंने एक मोटर आने की आवाज़ सुनी है।"

रानी मायावती फिर पलँग पर बैठ गईं, और मलीन हँसी हँसकर कहा—"अच्छा, जाकर देख आ। १॥ तो बज गया है। पेशावर-मेल आने का वक्त तो हो गया है। मुमकिन है, बाबा आ गए हों। जा, जल्दी जाकर देख आ।"

रेणुका ने बड़ी सावधानी से कमरे का दरवाज़ा खोला, और एक बार बाहर झाँककर कहा—"मुझे तो मालूम होता है कि कोई नहीं आया। शायद मेरा भ्रम है।"

रानी मायावती ने चिल्लाकर कहा—"अरी पगली, बाहर जाकर देख आ, यहीं से बातें बनाती है।"

रेणुका कमरे के बाहर हो गई। रानी मायावती उत्कंठित मन से उसकी राह देखने लगीं। उनके हृदय की गति में तीव्र स्पंदन था, जो प्रतीक्षा का बाह्य रूप है।

इसी समय कमरे का द्वार खुला, और राजा प्रकाशेंद्र ने प्रवेश किया। उनके केश रुक्ष थे, उनका देदीप्यमान चेहरा आज मुरझाया हुआ था। इन ५-६ दिनों की चिंता ने उनका रूप-लावण्य सब हरण कर लिया था।

रानी मायावती उन्हें पहचान न सकीं, खड़ी होकर भीत दृष्टि से उनकी ओर देखने लगीं।

राजा प्रकाशेंद्र ने एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"माया, क्या मैं इन ५-६ दिनों में ही बिलकुल अपरिचित हो गया हूँ, जो मुझे पहचानती भी नहीं?"

रानी मायावती ने द्वार की ओर जाते हुए कहा—"अब आप मुझे ज़हर खिलाने आए हैं। जब देखा कि किसी कौशल से मैं ज़हर नहीं खिला सका, तो आज ज़बरदस्ती खिलाने आए हो। लेकिन मैं अभी

होश में हूँ, तुम्हारा ज़हर नहीं खा सकती। मैं शोर मचाऊँगी, और अपनी सहायता के लिये सैकड़ों आदमी इकट्ठे कर लूँगी......"

कहते-कहते वह द्वार उन्मुक्त करके बाहर जाने लगीं, लेकिन किसी से टकराकर वह भय से चिल्ला उठीं। दूसरे क्षण दरवाज़े पर राजा भूपेंद्रकिशोर रेणुका के साथ खड़े थे, और बेहोश माया उनके दोनो हाथों पर थी। राजा भूपेंद्रकिशोर ने अग्नि-से दीप्त नेत्रों से राजा प्रकाशेंद्र की ओर देखा। क्रोध और आवेश से उनका शरीर काँप रहा था।

बेहोश माया को उन्होंने उठा लिया, और रेणुका से पानी लाने को कहा। रेणुका के जाने के बाद राजा प्रकाशेंद्र से कहा—"दुष्ट, तेरा यह नीच कर्म! तू इतना पतित हो गया! यहाँ तक तो मैंने भी ख़याल नहीं किया था। तू मेरी माया को ज़हर खिलाने आया! देख, मैं तेरी क्या दशा करता हूँ, कुत्तों की मौत न मारूँ, तो मेरा नाम भूपेंद्रकिशोर नहीं।"

घटना-चक्र में पड़कर एक बार निर्दोष भी ख़ूनी साबित होकर फाँसी के फंदे पर झूल जाता है। राजा प्रकाशेंद्र के विरुद्ध ऐसे प्रमाण आकर इकट्ठे हो गए कि वह घबरा गए। वह किंकर्तव्य-विमूढ़ की भाँति राजा भूपेंद्रकिशोर की ओर देखने लगे।

रेणुका ने बर्फ़ लाकर देते हुए कहा—"आप हट जाइए, मैं अभी रानी साहबा को सचेत करती हूँ। वह आजकल बहुत कमज़ोर हो गईं, और अक्सर बेहोश हो जाती हैं।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने माया का भार रेणुका को सौंपकर कहा—"तू होश में ला, मुझे यह देखना है कि कहीं माया को ज़बरदस्ती ज़हर तो नहीं दिया गया!"

राजा प्रकाशेंद्र ने, जो अपराधी की भाँति खड़े थे, उनकी ओर देखकर कहा—"बाबा, आप यह क्या कहते हैं? मैं नीच ज़रूर हो

गया हूँ, लेकिन इतना नीच नहीं कि एक स्त्री के खून से अपने हाथ रँग लूँ ।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"जो स्त्री को सोनेवाली दवा दे सकता है, वह ज़हर भी दे सकता है ।"

राजा प्रकाशेंद्र चुप हो गए। कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने अपनी सफ़ाई के लिये जो दलीलें सोच रक्खी थीं, वे सब विस्मृति के अंधकार में खो गईं। चुपचाप अपराधी की भाँति नीचे दृष्टि करके वह पृथ्वी की ओर देखने लगे।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने अपनी जेब से पिस्तौल निकालते हुए कहा—"तुम्हें मुझसे द्वंद्व-युद्ध करना होगा। अगर तुम्हारे पास पिस्तौल न हो, तो मेरे पास दो हैं, जो तुम्हारी इच्छा हो, तुम ले सकते हो।"

यह कहकर अपनी दूसरी जेब से दूसरी पिस्तौल भी निकाल ली, और दोनो को राजा प्रकाशेंद्र के सम्मुख कर दिया।

राजा प्रकाशेंद्र काँप रहे थे, उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया।

राजा भूपेंद्रकिशोर भयंकर शब्द से हँस पड़े। हँसने के बाद उन्होंने कहा—"केवल स्त्रियों पर ही बल की आज़माइश की है। आह, मैं भूलता हूँ, जो पुरुष अपनी स्त्री के गहने चुराकर ले जाता है, उससे नैतिक बल की आशा करना मूर्खता है। उससे सम्मान-युद्ध कब हो सकता है? वह तो केवल छिपकर चोर की तरह ज़हर खिलाने में पटु हो सकता है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर फिर हँस पड़े। उनकी हँसी की कर्कशता ने बेहोश माया को भी चौंका दिया। उसने धीरे-धीरे अपने नेत्र खोले। बेसुधी ने उसके मस्तिष्क को घुमा दिया था, और ज्ञान-तंतु रक्त-संचालन की तीव्रता से पहचानने की शक्ति खो चुके थे।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने माया के पास जाकर कहा—"माया, अब तू भय मत कर, मैं आ गया हूँ।"

मायावती ने विस्फारित नेत्रों से अपने पिता की ओर देखकर, फिर पहचानकर कहा—"बाबा-बाबा, तुम आ गए। क्या मैं सच-मुच तुम्हें देख रही हूँ, या यह भी मेरा भ्रम है ?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने मायावती के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"नहीं माया, मैं सचमुच आया हूँ।"

रानी मायावती ने उठने की चेष्टा करते हुए कहा—"मा कहाँ हैं, क्या वह नहीं आई ?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उन्हें गोद में बिठाते हुए कहा—"नहीं, मैं उन्हें नहीं लाया। मैं तुम्हें लेने आया हूँ। आज हम लोग अभी यहाँ से चल देंगे। तुम ज़रा सबल हो जाओ।"

रानी मायावती की आँखें बंद थीं। वह अपने पिता के वक्षःस्थल में मुँह छिपाए परम शांति अनुभव कर रही थीं। आज छ दिन बाद उनके चित्त को यह स्थिरता मिली थी। राजा भूपेंद्रकिशोर सप्रेम उनके शरीर पर हाथ फेरकर उनकी यंत्रणा दूर कर रहे थे, और राजा प्रकाशेंद्र खड़े हुए कुछ सोच रहे थे।

रानी मायावती ने कहा—"बाबा, यहाँ से शीघ्र चलो, अभी चलो, मैं बिलकुल अच्छी हूँ। ज़्यादा देर रहने से, मौक़ा मिलने पर, वह मुझे ज़हर दे देंगे।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने घृणा से राजा प्रकाशेंद्र की ओर देखकर कहा—"अगर अब तक तुझे किसी ने ज़हर नहीं दिया, तो अब तुझे ज़हर देनेवाला कोई नहीं है। तू निश्चिंत रह। आज रात की गाड़ी से हम लोग चल देंगे। शिवकुमार को मैं साथ लाया हूँ, उसे तेरे पास रखकर मैं ज़रा बाहर जाता हूँ।"

रानी मायावती ने भय-विह्वल कंठ से कहा—"नहीं बाबा, तुम मुझे छोड़कर कहीं मत जाओ। अकेले मुझे बड़ा डर लगता है। आज मैं सात दिनों से इसी कमरे में अपने को बंद किए हूँ। यहाँ

की हवा विषाक्त है, मुझे उससे भी डर मालूम होता है। मैं तुम्हें अपने पास से नहीं जाने दूँगी।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने आश्वासन देते हुए कहा—"तू मत घबरा माया, मैं तुझे छोड़कर कहीं न जाऊँगा। अगर तुझे इतना डर है, तो हम लोग अभी-अभी यह घर छोड़कर किसी होटल में ठहरेंगे।"

यह कहकर उन्होंने वक्र भृकुटियों से राजा प्रकाशेंद्र को कमरे के बाहर जाने का संकेत किया। राजा प्रकाशेंद्र सिर झुकाए कमरे के बाहर हो गए।

---

(७)

"आप तो कहते थे, मुझे खेलना ही नहीं आता, और आज कैसे खेल रहे हैं ?" हँसती हुई कुसुमलता ने राजेंद्रप्रसाद से पूछा।

दंपति का खेल रुक गया।

मनोरमा ने हँसकर कहा—"जैसे झूठ बोलने में चतुर हैं, वैसे ही खेलने में। मुझे 'लव-गेम' दिया है। अगर तुम्हारे मन में कुछ अरमान हो, तो आओ, तुम भी निकाल लो।"

कुसुमलता ने एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"भई, यह खेलना तुम्हीं को मुबारक हो।"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"और, तुमने संसार से वैराग्य ले लिया है, क्यों ?"

राजेंद्रप्रसाद हँस पड़े, और मनोरमा भी मुस्किराने लगी। कुसुमलता लजाकर चुप रही।

मनोरमा ने कुसुमलता के पास आकर कहा—"क्यों, तुम नहीं खेलतीं ? आज तो चाहे जो हो, तुम्हें खेलना ही पड़ेगा।"

कुसुमलता ने अन्यमनस्क की भाँति कहा—"यह भी कोई ज़बरदस्ती है !"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"आप विश्वास रखिए, मुझे खेलना नहीं आता। आप ही जीतेंगी।"

कुसुमलता ने मुस्किराकर कहा—"मैं अपना रैकेट नहीं लाई। अगर जानती कि यहाँ खेलना पड़ेगा, तो रैकेट ले आती।"

मनोरमा ने अपना रैकेट देते हुए कहा—"लीजिए, यह सेवा में प्रस्तुत है। आपका और मेरा एक ही 'मेकर' का बना है। कोई फ़र्क़ नहीं है।"

कुसुमलता ने अनिच्छा-पूर्वक रैकेट लेते हुए कहा—"चलिए, एक गेम खेल लूँ। आप लोगों का हुक्म तो मानना ही पड़ेगा।"

कुसुमलता और राजेंद्रप्रसाद दोनो खेलने लगे। मनोरमा बैठकर देखने लगी। टेनिस-संसार में कुसुमलता का विशेष स्थान था, और लखनऊ की स्त्री-जाति में वह अद्वितीय प्रमाणित हो चुकी थी। पिछले साल ही उसे लेडी-चैंपियनशिप का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। कुसुमलता को जिताना राजेंद्रप्रसाद ने विचार लिया था, इसलिये वह उसके वार तो बचा जाते, लेकिन उनके खुद के 'स्ट्रोक' सादे और अलहड़ खिलाड़ियों-जैसे होते थे, जिनका जवाब देना कुसुमलता के लिये आसान था। खिलाड़ी को सच्चा खेल खेलने में मज़ा आता है। कुसुमलता को यह विदित हो गया कि राजेंद्रप्रसाद उससे मन लगाकर नहीं खेलते। उसने खेल बंद करते हुए कहा—"आप तबियत लगाकर नहीं खेलते, महज़ मुझे खेला रहे हैं। ऐसा खेल मैं नहीं खेलती। रहने दीजिए।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"जैसा खेल सकता हूँ, वैसा खेलता हूँ।"

कुसुमलता ने अपनी भृकुटियों को चढ़ाते हुए कहा—"यह क्या आप सत्य कहते हैं? सत्य ही बोलिएगा!"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"अच्छा, अब ठीक से खेलूँगा।"

कुसुमलता ने गेंद फेकते हुए कहा—"स्पोर्ट्समैन की स्पिरिट से खेलने में मज़ा आता है। यों तो दिन-भर गेंद पीटा कीजिए।"

राजेंद्रप्रसाद ने गंभीरता से खेलना आरंभ किया, और उधर कुसुमलता भी वेग से खेलने लगी। कुसुमलता को अब मालूम हुआ कि किसी प्रतिद्वंद्वी से सामना है, वह भी पूर्ण कौशल से खेलने लगी। राजेंद्रप्रसाद कुसुमलता के वार रोकते, और स्वयं वार करते, जिनका जवाब देना कुसुमलता के लिये मुश्किल पड़

रहा था। मनोरमा तल्लीन होकर खेल देख रही थी। ऐसा अच्छा मैच उसने इसके पहले कभी नहीं देखा था।

इसी समय मिस ट्रैवीलियन की मोटर आ गई। मिस ट्रैवीलियन को देखकर मनोरमा उनका स्वागत करने के लिये उठ खड़ी हुई।

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"अच्छा, आज खेल हो रहा है?"

राजेंद्रप्रसाद ने अभिवादन करके कहा—"हाँ, आज खेलने की इच्छा हो आई। आइए, आप भी खेलिए।"

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"अब आप ही खेलिए। हाँ, मैं आप लोगों का खेल अवश्य देखूँगी। यू० पी० की लेडी-चैंपियन से बाज़ी जीतना ज़रा मुश्किल है!"

कुसुमलता ने मुस्किराकर उत्तर दिया—"नहीं, आज वह स्वप्न भंग हो गया। मिस्टर वर्मा-जैसे अद्‌भुत खिलाड़ी के सामने मेरी एक नहीं चलती। कैसे मास्टर स्ट्रोक हैं, मैं तारीफ़ नहीं कर सकती।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर कहा—"तब तो मैं अपनी किरकिरी कराने को तैयार नहीं। आप ही खेलिए।"

दोनो का खेल शुरू हो गया। मिस ट्रैवीलियन अद्‌भुत तल्लीनता से खेल देखने लगीं। लगभग आध घंटे बाद कुसुमलता ने कहा—"बस, अब मैं बिलकुल थक गई। अब खेल बंद कीजिए।"

मिस ट्रैवीलियन ने ताली पीटकर कहा—"लीजिए, आपने तो बड़ी जल्दी हार मान ली। मुझे अभी आए हुए मुश्किल से आध घंटा हुआ। मिस्टर वर्मा का खेल तो ज़रा देखने दीजिए। भाई वाह! मिस्टर वर्मा ग़ज़ब का खेल खेलते हैं। यह असलियत तो मुझे आज मालूम हुई। उस दिन जब आपका परिचय प्राप्त हुआ

था, और मेरे क्लब में आप खेले थे, तब तो ऐसी चतुरता से नहीं खेले थे, आप भी छिपे रुस्तम हैं !"

सब लोग हँसने लगे ।

कुसुमलता ने एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"पहले थोड़ा-सा लेमनेड पी लूँ, तब कुछ कहूँ । वाह ! क्या खेल है, ऐसा खेल खेलने में मज़ा आता है । वाक़ई मैं यह मुक्त कंठ से कहूँगी कि मिस्टर वर्मा खेल में अपना सानी नहीं रखते । अगर आपके साथ कुछ दिनों तक खेलने का मौक़ा मिले, तो निश्चय ही मैं बहुत ही चतुर हो जाऊँ, और फिर वास्तव में लेडी-चैंपियन हो सकती हूँ ।"

मनोरमा पति-गौरव का मन-ही-मन वह अनिर्वचनीय आनंद अनुभव कर रही थी, जो एक पतिगर्विता रमणी को उसके पति की प्रशंसा पर प्राप्त होता है । उसने लेमनेड के गिलास तैयार कर कुसुमलता और राजेंद्रप्रसाद को देते हुए कहा—"मैं कहती थी कि जैसे झूठ बोलने में चतुर हैं, वैसे ही खेलने में भी ।"

हालांकि मनोरमा ने कोई विशेष बात अपने पति की तारीफ़ में नहीं कही थी, लेकिन उसकी इस बात से मिस ट्रैवीलियन और कुसुमलता, दोनो प्रसन्न नहीं हुईं ।

मिस ट्रैवीलियन ने किंचित् भृकुटी वक्र कर मनोरमा की ओर देखा, और कुसुमलता चुपचाप लेमनेड पीने लगी ।

मिस ट्रैवीलियन ने राजेंद्रप्रसाद से कहा—"मिस्टर वर्मा, आज आपका निमंत्रण-पत्र मिला । उसके देखने से मालूम हुआ कि आप हम लोगों से बहुत शीघ्र बिदा होकर इँगलैंड चले जायँगे ।"

कुसुमलता ने आश्चर्य के साथ पहले राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा, और फिर मिस ट्रैवीलियन की ओर । उसे अभी तक न निमंत्रण-पत्र मिला था, और न यही मालूम था कि उनके जाने की अवधि समीप आ गई है । उसने मिस ट्रैवीलियन से पूछा—"आप क्या

कह रही हैं, मिस्टर वर्मा कहाँ जायँगे, और कैसा निमंत्रण-पत्र ?"

यह कहकर उसने मनोरमा की ओर देखा।

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर तुरंत उत्तर दिया—"आपकी सखी ने यह भेद आपसे छिपा रक्खा है ?"

यह कहकर वह सवेग हँसने लगीं, जिसमें व्यंग्य की ध्वनि झंकृत होती थी।

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"हाँ, अभी तक आपको निमंत्रण-पत्र नहीं पहुँचा है, कल पहुँच जायगा। बात यह है कि मैं १५ जुलाई को यहाँ से इलाहाबाद जाऊँगा, और पहली अगस्त को इँगलैंड के लिये रवाना हो जाऊँगा। यह बिलकुल निश्चित-सा हो गया है। आप लोगों ने जिस प्रकार मेरा आदर-सत्कार किया है, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। मेरे जीवन की सबसे सुखद घटनाएँ यहीं हुई हैं; जिन्हें भूलना मेरी शक्ति के बाहर है। अपने जाने के पहले आप लोगों को मैं निमंत्रित करना चाहता हूँ, और यथाशक्ति सेवा की भेंट चढ़ाना चाहता हूँ।"

कुसुमलता शंकित हृदय से राजेंद्रप्रसाद का कथन सुन रही थी। क्षण-क्षण में उसके मुख का रंग बदल रहा था, जिसे संध्या की कालिमा बड़ी सफलता से अपने श्यामल आवरण में छिपा रही थी। उसने मन-ही-मन एक गहरी साँस लेकर अपना मुख दूसरी ओर छिपा लिया।

मिस ट्रैवीलियन भी मुग्ध होकर उस सुंदर नवयुवक की ओर देख रही थीं, जिसने उनके हृदय के सबसे कोमल स्थान में आघात कर उन्हें तड़पा दिया था। एक अद्भुत शांति छाई हुई थी।

और, मनोरमा ? उसके हृदय की पीड़ा का अनुभव केवल उसका हृदय ही कर रहा था। अभी तक जो एक आनंदमय मंडली में बुल-

बुल की तरह चहक रही थी, वही जुदा की याद आ जाने से मन-ही-मन तड़प रही थी। उसके मन ने कहा—"हाँ, सचमुच वह पहली अगस्त को चले जायँगे। धूमिल सत्य इस समय ज्वलंत सत्य था। उसका मन रोने का उपक्रम करने लगा। अपनी असहाय दशा छिपाने के लिये वह उठ खड़ी हुई, और बँगले की ओर चल दी। सब अपनी-अपनी चिंता में व्यस्त थे; किसी को अवकाश न था कि उसे रोके।

राजेंद्रप्रसाद ने उस शांति को भंग करते हुए कहा—"मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि इन दिनों की स्मृति कभी मेरे हृदय-पटल से मिटनेवाली नहीं। यहाँ की छोटी-से-छोटी घटना अपने उर में एक सुखमय स्मृति छिपाए हुए है। मेरे मन में यह विचार बार-बार उठता है कि मैं इँगलैंड न जाऊँ, और सदा आप लोगों की सेवा में रहूँ, लेकिन कर्तव्य के आगे मैं भी लाचार हूँ। अभी मुझे घर जाना भी नितांत आवश्यक है। यहाँ आए हुए मुझे ढाई महीने से ज़्यादा हो गया है, मा से केवल दस-पंद्रह दिन के लिये कहकर आया था, लेकिन आप लोगों के प्रेम ने, आदर-सत्कार ने, मेरे पैरों में बेड़ियाँ डाल दीं, और मुझे रहना पड़ा।"

कुसुमलता और मिस ट्रैवीलियन चुप रहीं। उन्होंने कुछ नहीं कहा।

राजेंद्रप्रसाद फिर कहने लगे—"यह तो आप लोगों को मालूम है कि यह मेरी ससुराल है, मेरा घर नहीं। यहाँ मैं पराधीन हूँ, यद्यपि यह भाव कभी मेरे मन में उदय होने नहीं पाया, परंतु जो सत्य है, वह हमेशा, हर हालत में, सत्य रहेगा। इसलिये उस दिन अगर मेरे आदर-सत्कार में कुछ त्रुटि हो, तो मैं उसकी माफ़ी चाहता हूँ। आप लोग सहृदय हैं, जो त्रुटि हो, क्षमा करेंगी। इतना मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि यथासाध्य अपनी तरफ़

से कोई ऐसी कोशिश उठा नहीं रक्खूँगा, जिसमें आपके मनोरंजन में कमी रह जाय।"

कुसुमलता चुप रही। उसमें उत्तर देने की शक्ति न थी।

मिस ट्रैवीलियन ने नीरस हँसी के साथ कहा—"आप यह नहीं जान सकते कि आपके जाने की बात सुनकर हम लोगों के हृदय पर क्या बीत रही है। जब यह विचार हमारे मन में आता है, तभी हमारा हृदय धक् से रह जाता है। आपने अपने मधुर व्यवहार से हमारे हृदय पर विजय प्राप्त कर ली है।"

मिस ट्रैवीलियन के शब्दों में सभ्यता का आभास था—कृत्रिमता का नाम-मात्र न था। कुसुमलता उठकर खड़ी हो गई। उसके नेत्र अश्रुओं से पूर्ण थे, क्षण-भर भी वहाँ ठहरने से वे परदे के बाहर निकलकर उसका भंडा-फोड़ कर देते। इसी भय से वह चुपचाप उठी, और जिस मार्ग पर मनोरमा कुछ देर पहले गई थी, उसी का उसने अनुसरण किया।

मिस ट्रैवीलियन एकांत पाकर कुछ कहनेवाली थीं कि इसी समय बाबू राधारमण टहलते हुए आ गए। मिस ट्रैवीलियन के मन की साध मन ही में रह गई। उन्होंने आगे बढ़कर बाबू राधारमण से कहा—"आइए बैरिस्टर साहब, आज आपके बहुत दिनों बाद दर्शन हुए।"

बाबू राधारमण ने मुस्किराकर उत्तर दिया—"आप ही के दर्शन नहीं होते। मालूम होता है, आप आजकल अपनी उस संस्था में बहुत व्यस्त रहती हैं। हमने सुना था, आप उसका विशेष अधिवेशन करनेवाली थीं। कहिए, कब तक होगा?"

मिस ट्रैवीलियन ने अपनी सहज मुस्कान-सहित कहा—"जी हाँ, उसके लिये चंदा इकट्ठा कर रही हूँ। अभी तक केवल दस हज़ार ही इकट्ठे हुए हैं? यह तो आप जानते ही हैं कि सार्वजनिक संस्थाएँ

दान और बड़े आदमियों की संरक्षकता पर अवलंबित होती हैं। उनकी निज की कोई संपत्ति नहीं होती, इसलिये कोई काम करने में बड़ी मुश्किलात का सामना करना पड़ता है।"

बाबू राधारमण ने उत्तर दिया—"हाँ-हाँ, आपका कथन सत्य है। आप धन्य हैं, जो इस प्रकार समय और धन देकर समाज की सेवा करती हैं। आपकी जितनी तारीफ़ की जाय, थोड़ी है।"

मिस ट्रैवीलियन ने संतुष्ट होकर कहा—"मैं क्या सेवा करती हूँ, सेवा आप लोग करते हैं, जो धन से सहायता करते हैं। मैं तो एक उपलक्ष-मात्र हूँ। रूपगढ़-नरेश को लीजिए, उन्होंने अपनी आमदनी की एक ख़ासी रक़म हमारी संस्था को प्रदान की है।"

बाबू राधारमण को स्मरण हुआ कि रूपगढ़ की रानी इस संस्था की सभानेत्री हैं। उन्होंने कहा—"शायद रूपगढ़ की रानी तो आपकी संस्था की प्रेसीडेंट हैं।"

मिस ट्रैवीलियन के मुख का रंग बदल गया। उन्होंने धीमे स्वर में कहा—"जी हाँ, अब तक थीं, लेकिन अब नहीं हैं। उन्होंने अपना इस्तीफ़ा, आज चार दिन हुए, भेज दिया है, और लखनऊ छोड़कर अपने बाप के साथ चली गई हैं। तीन-चार दिनों में सभा का विशेष अधिवेशन होनेवाला है, उसमें कोई दूसरा व्यक्ति चुना जायगा।"

बाबू राधारमण को यह भी विदित हुआ कि मिस ट्रैवीलियन इससे बहुत ही दुःखित हुईं, और वेदना छिपाने का निष्फल प्रयत्न कर रही हैं।

बाबू राधारमण ने अपने हृदय का भाव छिपाते हुए कहा—"ऐसा क्यों; मैं रूपगढ़ की रानी साहबा से भली भाँति परिचित हूँ, क्योंकि दो-एक मुक़दमे मेरे पास आए हैं। जब कभी उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन्होंने अपना बहुत समय इसी संस्था की बातचीत में सर्फ़ किया है, जिससे यह साफ़ ज़ाहिर होता था

कि उन्हें बड़ी दिलचस्पी है। फिर उन्होंने इस्तीफ़ा क्यों दिया, यह मेरी समझ में नहीं आता।"

मिस ट्रैवीलियन ने जाने के लिये क़दम उठाते हुए कहा—"इसका उत्तर मैं कैसे दे सकती हूँ। शायद वह बंगाल में ज़्यादा दिनों तक रहेंगी, इसलिये उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया है।"

बाबू राधारमण ने मिस ट्रैवीलियन के साथ-साथ चलते हुए कहा—"शायद ऐसा ही हो। बंगाल में ज़्यादा दिनों तक क्यों रहेंगी, यह भी कुछ समझ में नहीं आता, क्योंकि उन्होंने मुझसे कई मर्तबे कहा है कि लखनऊ छोड़कर जाने का मन कभी होता ही नहीं। लखनऊ पर वह जी-जान से फ़िदा थीं।"

मिस ट्रैवीलियन ने अपनी कार के पास पहुँचकर कहा—"मुझे स्वयं ताज्जुब है, लेकिन मैं भी यह रहस्य अभी नहीं समझ सकी। बड़े घरों की बात है, कोई क्या जान सकता है। अच्छा, अब आज्ञा दीजिए। मिस्टर वर्मा से मालूम हुआ कि वह पहली अगस्त को इँगलैंड के लिये रवाना हो जायँगे। प्यारे इँगलैंड की याद ताज़ी हो गई। अगर इधर झंझटों में फँसी न होती, तो मैं भी उनके साथ चली जाती।"

यह कहकर वह बाबू राधारमण और राजेंद्रप्रसाद को अभिवादन कर अपनी मोटर में बैठ गईं। शोफ़र ने संकेत पाकर मोटर स्टार्ट कर दी।

बाबू राधारमण ने राजेंद्रप्रसाद से कहा—"चलिए, आज सिनेमा जाने का प्रोग्राम है। रात के शो में चलना ठीक हुआ है। आपकी अम्मा भी आज चलने के लिये तैयार हैं।"

राजेंद्रप्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बाबू राधारमण के साथ बँगले की तरफ़ चले गए।

बाबू राधारमण और राजेंद्रप्रसाद को यह भय था कि डॉक्टर आनंदीप्रसाद कुसुमलता के साथ विवाह करने के लिये तैयार न होंगे, क्योंकि उनके विवाह-विषयक मनोभावों का आभास राजेंद्र-प्रसाद ने अपने ससुर को बतला दिया था, परंतु उनके आश्चर्य, आनंद तथा संतोष की सीमा न रही, जब उन्होंने मुस्किराकर तुरंत ही अपनी स्वीकृति दे दी। मानव-जीवन में घटनाएँ कभी-कभी आश्चर्य का संदेश लेकर ही प्रकट होती हैं।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद का जन्म एक कुलीन वंश में हुआ था। वह ज़िला उन्नाव के रहनेवाले थे। उनके पिता एक साधारण स्थिति के मनुष्य थे, और अपना जीवन विशेषकर धार्मिक कार्यों में व्यतीत करते थे। उन्नाव-ज़िले में कुछ थोड़ी ज़मींदारी थी, जिसकी आय से उनके परिवार का ख़र्च बड़ी सरलता से चल जाता था। डॉक्टर आनंदीप्रसाद के पिता का नाम था मुंशी गंगा-प्रसाद। मुंशी गंगाप्रसाद अपने गाँव और पड़ोस के दस-बीस गाँवों में अपनी साख रखते थे, उनकी बातों का मूल्य था। वह जो कहते थे, उसे करते थे। किसानों के वह मा-बाप थे। उनकी चौपाल में हमेशा किसानों का जमघट लगा रहता था, और वे लोग प्रेम तथा भक्ति के साथ उनकी बातें सुनते तथा उन पर अमल करते थे। उनका उन पर इतना विश्वास था कि वे अपने सारे मुक़दमे-झगड़े वहाँ लाते, और बिना कोर्ट-फ़ीस दिए ही फ़ैसला ले लेते थे। वादी-प्रतिवादी, दोनो संतुष्ट होकर जाते। मुंशी गंगा-प्रसाद की आत्मिक शक्ति का प्रभाव इतना था कि झूठ बोलने-

वाला अपराधी हाथ जोड़कर अपना क़ुसूर इक़बाल करता, और जो दंड उसे पंचायत देती, उसे वह सिर नत कर स्वीकार करता। महाजनों और काश्तकारों का झगड़ा वह इतनी ख़ूबी से निबटाते कि दोनो प्रसन्न रहते। उनकी तजवीज़ के विरुद्ध कहीं अपील न होती थी, और न कोई असंतुष्ट ही होता था।

मुंशी गंगाप्रसाद नियमित जीवन व्यतीत करनेवाले पुरुष थे। उनका प्रातःकाल विशेषतः पूजा इत्यादि में बीतता, और बारह बजे हमेशा अपनी चौपाल में आकर बैठ जाते। तीन बजे तक मुक़द्दमों का फ़ैसला या कृषि-संबंधी बातें करते। कभी-कभी उद्योग-धंधों पर भी बातें छिड़ जाती थीं। बाद में भगवच्चर्चा करते, और यह प्रसंग शाम के आठ बजे तक चलता। वह महात्मा तुलसीदास के अनन्य भक्त थे, और एक विशेष ध्वनि से उनकी चौपाइयाँ गाते थे। कभी-कभी लहर आ जाती, और सभा जुट जाती, तो गायन भी होता था। आठ बजे के उपरांत वह फिर पूजन पर बैठ जाते, और दो घंटे बाद भोजन करते। यह जीवन-प्रणाली इतनी बँधी हुई थी कि इसमें अणु-मात्र कभी फ़र्क़ न पड़ता था।

मुंशी गंगाप्रसाद के केवल एक संतान थी, और वह डॉक्टर आनंदीप्रसाद थे। आनंदीप्रसाद शुरू से ही मेधावी और कुशाग्र-बुद्धि थे। पाँच वर्ष की अवस्था में ही उन्हें संध्या-विधि वग़ैरह कंठस्थ हो गई थी, और वह अपने पिता के साथ पूजन में दत्त-चित्त रहते। बाल्यकाल से धार्मिक संस्कारों का प्रभाव पड़ते-पड़ते वह बिलकुल धार्मिक हो गए थे। मुंशी गंगाप्रसाद की इच्छा थी कि उन्हें संस्कृत का प्रकांड पंडित बनावें, इसीलिये उन्होंने उन्हें अपनी पुश्तैनी भाषा उर्दू-फ़ारसी छोड़कर हिंदी पढ़ाना आरंभ किया, और फिर गाँव के पंडित टीकाराम शास्त्री के यहाँ संस्कृत पढ़ने भेज दिया। पंडित टीकाराम विद्वान् वेदांती थे।

मेधावी छात्र पाकर वह बड़े प्रसन्न हुए, और व्याकरण एवं साहित्य पढ़ाकर वेदांत-ग्रंथ पढ़ाने लगे। यह अध्ययन दस वर्ष तक जारी रहा। इधर अँगरेज़ी-भाषा के महत्त्व की विजय-भेरी शहरों की चहारदीवारी उल्लंघन करके देहातों तक पहुँच गई थी। मुंशी गंगाप्रसाद को, लोगों की सलाह से, यह सर्वथा उचित जान पड़ा कि आनंदीप्रसाद को अँगरेज़ी शिक्षा देना भी आवश्यक है, और यह कार्य उस वक़्त शुरू हुआ, जब वह सोलहवें वर्ष में प्रवेश कर रहे थे। गाँव के पास ही एक अँगरेज़ी हाईस्कूल स्थापित हुआ था। उसके हेडमास्टर पंडित रमाप्रसाद एक सज्जन और सहृदय पुरुष थे, जो दूर के रिश्ते से पंडित टीकाराम के भानजे लगते थे। पंडित टीकाराम की सिफ़ारिश और उद्योग से उन्होंने आनंदीप्रसाद को पढ़ाना स्वीकार किया। कुशाग्र-बुद्धि छात्र पाकर शिक्षक की उत्साह-कलिका खिल जाती है। पंडित रमाप्रसाद भी उस अद्भुत मेधावी छात्र को मन से पढ़ाने लगे, और बीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने आनंदीप्रसाद को प्रवेशिका-परीक्षा में, प्राइवेट छात्र की भाँति, बैठा दिया। लोगों को महान् आश्चर्य हुआ, जब आनंदीप्रसाद उसमें सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। हाँ, पं० रमाप्रसाद को प्रसन्नता और संतोष अवश्य हुआ, और जब मुंशी गंगाप्रसाद ५००) और कुछ फल लेकर पंडित रमाप्रसाद को भेंट करने के लिये गए, तो उन्होंने संतुष्ट होकर कहा—"आप इसे ले जाइए, आनंदी सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुआ, यही मेरे लिये यथार्थ पुरस्कार है।" मुंशी गंगाप्रसाद किसी तरह न माने, और उनके घर वह तुच्छ भेंट रख ही आए।

आनंदीप्रसाद आगे पढ़ने के लिये इलाहाबाद गए, और छ साल में फ़िलॉसफ़ी में एम्० ए० पास किया। युनिवर्सिटी में उन्हें छात्र-वृत्ति बराबर मिलती रही थी, और फिर सरकार ने भी उन्हें छात्र-

वृत्ति देकर इँगलैंड भेजना निश्चित किया । यही विषय गाँव में एक बड़ा विचारणीय प्रश्न रहा । मुंशी गंगाप्रसाद अपने एकमात्र पुत्र को विदेश नहीं भेजना चाहते थे । पंडित टीकाराम और उनके मित्रों का भी यही मत था । परंतु पंडित रमाप्रसाद की राय इसके विरुद्ध थी । वह कहते थे—"ऐसे होनहार बालक का जीवन नष्ट नहीं करना चाहिए ।" और, अंत में उन्हीं की जीत रही । मुंशी गंगाप्रसाद आनंदीप्रसाद का विवाह करने के लिये कई साल से छटपटा रहे थे, परंतु आनंदीप्रसाद की ही ज़िद से वह अब तक रुका हुआ था । मुंशी गंगाप्रसाद और उनकी पत्नी, दोनो ने यह निश्चय कर लिया था कि वे आनंदीप्रसाद की एक न सुनेंगे, और इस वर्ष विवाह कर देंगे । परंतु आनंदीप्रसाद अपनी ज़िद पर क़ायम रहे, यहाँ तक कि वह भागकर इलाहाबाद चले गए । मुंशी गंगाप्रसाद मन-ही-मन कुपित होकर रह गए । अगस्त-मास में आनंदीप्रसाद विलायत के लिये रवाना हो गए । आनंदीप्रसाद की माता अपनी इच्छा पूर्ण न कर सकीं, यहाँ तक कि वह इतनी कातर हुईं कि बीमार पड़ गईं, और एकाएक एक दिन अपनी साध लेकर चली गईं !

मुंशी गंगाप्रसाद के ऊपर शोक का पहाड़ टूट पड़ा । उन्होंने उस दिन ऊबकर कहा—"ऐसे कपूत से तो लाऔलाद होता, तो ठीक था ।" क्रोध और क्षोभ से उन्होंने आनंदीप्रसाद को पत्र लिखना बंद कर दिया । पंडित रमाप्रसाद के पत्र से उन्हें मालूम हुआ कि उनकी माता का देहांत हो गया, तब उन्हें भी अनुताप हुआ, और एक व्यथा-पूर्ण क्षमा-पत्र अपने पिता को लिखा । मुंशी गंगाप्रसाद ने वह पत्र पढ़ा, और फाड़कर फेंक दिया ।

दो वर्ष बाद जब वह वापस आए, तो उन्होंने अपने पिता को भी मरणासन्न अवस्था में पाया । दो वर्ष के मानसिक अवसाद तथा

चिंता ने उनके शरीर को जर्जरित कर दिया था, और वह अपने इष्टदेव से सतत यही प्रार्थना करते थे कि उनकी इहलीला का यवनिका-पात हो जाय। पुत्र के आने पर भी मुंशी गंगाप्रसाद ने विवाह का नाम नहीं लिया, और दिल खोलकर बात भी न की। आनंदीप्रसाद अपने तन-मन से पिता की सेवा-शुश्रूषा करते रहे। उनकी एकाग्र सेवा देखकर वृद्ध पिता का मन पसीज उठा, परंतु उनके जीवन-दीपक का तेल समाप्त हो चुका था। थोड़े ही दिनों में वह भी यह लोक छोड़कर किसी अनजान लोक की ओर प्रस्थान कर गए। परंतु इतना ज़रूर था कि वह प्रसन्न थे, और आनंदीप्रसाद के प्रति जो क्रोध था, वह कुछ शांत हो गया था।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद इस संसार में अकेले रह गए। गाँव में उनका मन बिलकुल न लगता। जब लखनऊ-विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, तो उन्हें सम्मान के साथ आमंत्रित किया गया, और उन्होंने वह निमंत्रण स्वीकार किया। वह फ़िलॉसफ़ी के रीडर नियुक्त हुए, और उन्होंने एक नवीन कर्म-क्षेत्र में प्रवेश किया।

मुंशी गंगाप्रसाद के महाप्रस्थान करते ही उनकी चौपाल का मेला बिखर चुका था, और जब से डॉक्टर आनंदीप्रसाद लखनऊ आकर रहने लगे, तब से उनके घर का द्वार भी बंद हो गया था। गाँव के पुराने लोग अपने अतीत जीवन की घटनाएँ याद कर आँसू बहाते, और अँगरेज़ी शिक्षा के प्रति उनका अविश्वास दिन-पर-दिन बढ़ता ही जाता था। डॉक्टर आनंदीप्रसाद को लोग मातृ-पितृहंता कहने में न चूकते थे, और कुछ बड़े-बूढ़े यह भी कहते संकोच न करते थे कि डॉक्टर आनंदीप्रसाद का वैवाहिक जीवन, यदि कभी उन्होंने विवाह किया तो, सुखमय न बीतेगा, क्योंकि वह माता-पिता के अभिशाप की छाप से मुद्रित हो चुका था।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद इधर उन्नति और यश के शिखर की

और बड़ी सफलता के साथ अग्रसर हो रहे थे। उनके बाल्यकाल के संस्कृत के अध्ययन ने इस ओर अनुपम सहायता प्रदान की थी। वह भारतीय ऋषियों के ज्ञान-भांडार के उज्ज्वल रत्नों की परीक्षा पश्चिमीय शास्त्रकारों के अनुभव के आलोक में कर रहे थे, और अपने विचारों एवं निर्णयों की माला गूँथकर उन्होंने एक अद्भुत ग्रंथ लिखा था, जिसका आदर समग्र संसार ने किया, तथा पश्चिमीय विद्वानों ने चकित होकर भारत की ओर देखा था।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने यह विचार कर लिया था कि वह आजन्म अविवाहित रहेंगे, परंतु फिर भी उन्होंने कुसुमलता के साथ विवाह करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। कभी-कभी उन्हें स्वयं आश्चर्य होता कि उन्होंने यह क्यों स्वीकार किया। परंतु अब पीछे लौटना असंभव था, क्योंकि दूसरे ही दिन स्थानीय पत्रों में इस विषय में समाचार निकल चुका था।

राजेंद्रप्रसाद को भी कुछ कम आश्चर्य न हुआ था, परंतु वह तो यह चाहते ही थे, इसलिये आश्चर्य से ज़्यादा उन्हें प्रसन्नता हुई थी। यह उनकी हार्दिक अभिलाषा थी कि कुसुमलता का पुनर्विवाह हो जाय, क्योंकि वह एक सौरभमय पुष्प को इस तरह नष्ट होते देखने के लिये तैयार न थे। बाबू राधारमण की भी यही इच्छा थी। वह कुसुमलता को मनोरमा की भाँति ही मानते थे, और उससे वैसा ही स्नेह करते थे।

जिस समय बाबू राधारमण ने यह शुभ संवाद जस्टिस सर राम-प्रसाद को सुनाया, उन्होंने संतोष-पूर्ण, आनंदमय नेत्रों से उनकी ओर देखकर कुछ कहा, जो इतना अस्फुट था, जिसे किसी दूसरे का सुनना असंभव था। परंतु इतना ज़रूर हुआ कि उनके दिमाग़ का बड़ा भारी बोझ उतर गया। उस दिन वह कुछ प्रसन्न दिखाई दिए, और उनके मुख पर एक संतोष की हँसी थी, वैसी, जैसी आज

से ग्यारह वर्ष पूर्व डॉक्टर दास और उनके मित्र अक्सर देखा करते थे।

जब डॉक्टर दास को यह संवाद सुनाया गया, तो वह उछल पड़े, और बोले—"अब मार लिया। हम इस बात का ताँबा-पत्तर लिखने सकता है कि आपका बीमारी हम जीत लेगा, और आप देखेगा कि हम आपको कितनी जल्दी आराम करता है। हमारा 'लक्खी' (लक्ष्मी) बेटी का भाग्य अच्छा है, जो डॉक्टर आनंदी-प्रसाद-जैसा 'पात्तर' मिला है। हम आप लोगों को बधाई देना माँगता है।"

बाबू राधारमण और राजेंद्रप्रसाद हँसने लगे। सर रामप्रसाद भी हँसने लगे। ग्यारह वर्ष बाद उनकी हार्दिक हँसी का यह प्रथम प्रयत्न था।

अस्तिम सर रामप्रसाद ने विवाह की तैयारियाँ शुरू कर दीं। वैदिक रीति से विवाह होना सर्व-सम्मति से निश्चय हुआ। इस विवाह को लेकर समाज में एक छोटा-सा आंदोलन शुरू हो गया। विरोधियों के दल-के-दल सर रामप्रसाद के पास आते, लेकिन उनसे निबटने की ज़िम्मेवारी बाबू राधारमण के ऊपर थी, जो अपनी दलीलों से उन्हें परास्त तथा निराश कर वापस भेजते थे। जहाँ विरोधक होते हैं, वहाँ समर्थक भी पैदा हो जाते हैं। उन्होंने विवाह को वर्तमान दशा के अनुकूल बतलाकर मुक्त कंठ से सराहना की थी। यह वृद्ध संसार सदा से दुरंगा चला आया है, जहाँ कुछ ही लोग संतुष्ट होते हैं, और असंतुष्ट रहनेवालों की संख्या हमेशा ज़्यादा रहती है।

कुसुमलता की सखियाँ अधिकतर प्रसन्न थीं, और वे आकर उसे बधाई देतीं। किंतु उसके हृदय की बड़ी शोचनीय स्थिति थी। इस विवाह से वह संतुष्ट थी, यह कहना भूल होगा। संतुष्ट के अतिरिक्त वह सब कुछ थी। कभी-कभी उसके मन में यह विचार उठता कि जाकर अपने पिता से कह दे कि वह विवाह न करेगी, इसी तरह विधवा रहकर जीवन व्यतीत करेगी, परंतु जहाँ पिता की वह दुर्बल अवस्था याद आती, उसका साहस काफ़ूर हो जाता। उसके उठते हुए क़दम पीछे पड़ जाते, और मन को बोध देती कि जैसा होता है, होने दो।

मनुष्य की जीवन-गति हमेशा से एक कभी न सुलझनेवाली प्रहेलिका रही है। अपनी अवस्था से संतुष्ट होना मनुष्य ने आज तक नहीं सीखा, और आगे सीखेगा, यह कुछ संभव नहीं मालूम पड़ता। मनुष्य

सदैव अप्राप्य को प्राप्त करने के लिये आकुल रहता है, और जब वह अप्राप्य उसे प्राप्त हो जाता है, तो चंचल मन किसी अन्य अप्राप्य के पाने को उत्कंठित होता है। यदि मनुष्य अपनी वर्तमान दशा से संतुष्ट हो जाय, तो मनुष्य की परिभाषा में अंतर आ जाय।

आषाढ़-बदी अष्टमी, तदनुसार ८ जुलाई को विवाह का दिन नियुक्त हुआ। मित्रों और संबंधियों के नाम निमंत्रण-पत्र भेज दिए गए। संबंधियों के सम्मिलित होने की बहुत कम उम्मेद थी, परंतु मित्रों का सहयोग प्राप्त होने की पूर्ण आशा थी। सर रामप्रसाद की आर्थिक स्थिति बहुत ही संतोष-जनक थी, और उनकी इच्छा एक अद्भुत विवाह करने की थी। कई हज़ार रुपए अनेकानेक सामाजिक संस्थाओं को इस अवसर पर दान कर उन सबका आशीर्वाद कुसुमलता के लिये वह ख़रीदना चाहते थे। उनके अनुरोध से बाबू राधारमण ने एक अच्छी सूची तैयार की, और आपस के बहस-मुबाहिसे के बाद यह तय हुआ कि कितनी-कितनी रक़म कहाँ-कहाँ देना उचित होगा। निमंत्रित व्यक्तियों में यू० पी० के गवर्नर और उनकी सभा के अनेक व्यक्ति थे, जिन्होंने उनके इस साहस-पूर्ण कार्य की मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी।

राजेंद्रप्रसाद, मनोरमा और राजेश्वरी, तीनो को कुछ समय के लिये सर रामप्रसाद के यहाँ आना, कुसुमलता के विवाह का इंतिज़ाम करना अनिवार्य हो गया। बाबू राधारमण ने इस समय सच्चे मित्र का काम किया। राजेश्वरी ने चतुर गृहिणी की भाँति सारे ज़नाने महल का इंतिज़ाम अपने हाथ में लिया, और मनोरमा ने वधू की संगिनी का कर्तव्य पालन करने की ज़िम्मेवारी ली। राजेंद्रप्रसाद बाहरी और भीतरी इंतिज़ाम की देख-रेख पर नियुक्त हुए। बाहर के लिये केवल बाबू राधारमण काफ़ी समझे गए। इतना

आयोजन देखकर कुछ लोग आश्चर्य से चकित होकर दाँतों-तले उँगली दबाते और कहते—"बड़े घर की बड़ी बातें हैं।"

यह आयोजन देखकर कुसुमलता का मन बार-बार अधीर होता। मनोरमा उसका परिवर्तन निरख रही थी। परंतु कुसुमलता बड़ी सतर्कता से अपने मनोभाव छिपा रही थी।

ज्येष्ठ की पूर्णिमा का चाँद अपनी सोलहो कलाओं से उदय होकर संसार को रजतमय दिखलाने का प्रयत्न कर रहा था, और कुछ थोड़े तारे उसके इस निष्फल प्रयत्न पर छिपे-छिपे मुस्किरा रहे थे। कुसुमलता अपने बँगले के उद्यान में बैठी हुई अपनी विचार-तरंगों में डूब-उतरा रही थी। वह सोच रही थी—"मैं ज्यों-ज्यों इस भाव को दबाती हूँ, त्यों-त्यों यह बल पकड़ता है। उनके प्रति मेरा निर्बोध मन अपने आप खिंचता जाता है। मैं किसी दूसरे मनुष्य की पत्नी होने जा रही हूँ, और मैंने अपना मन किसी दूसरे के चरणों पर न्योछावर कर दिया है। मैं नहीं जानती कि उनमें कौन-सी गुप्त शक्ति है, जो मुझे अहर्निश उनकी ओर खींचे लिए जाती है। जब से वह आकर यहाँ रहने लगे हैं, तब से मेरे मन को शांति मिलने की अपेक्षा उसमें अशांति ज़्यादा इकट्ठी हो गई है। यह ठीक है, मेरी आँखों की परेशानी मिट गई, लेकिन मन की परेशानी तो बेतरह बढ़ गई है। अब सहन करना मेरी ताक़त के बाहर है। मैं आज इसका निर्णय कर डालूँगी।

"न-मालूम कौन-सी गुप्त शक्ति है, जिसने मुझे बिलकुल अपंग बना दिया है। मैं इतनी दुर्बल हो गई हूँ कि जो कुछ विचारती हूँ, वह कर नहीं पाती। हृदय सदैव द्विविधा में पड़ा रहता है। मानसिक भावों के कंपन मेरे विचारों को भूकंप की भाँति उथल-पुथल करने में संलग्न रहते हैं। मैंने इस पर बहुत विचार किया, लेकिन इसका आदि और अंत नहीं मिलता।

"मेरी समझ में आज तक यह नहीं आया कि कैसे मनोरमा ने उस संध्या को कहा था कि तुम मेरी सौत हो, अगर तुम कहो, तो इस विषय में उनसे तय करूँ। यह उसने क्यों कहा था? कुछ समझ में नहीं आता। क्या उसने मेरे मन की थाह लेनी चाही थी, या उसका एक व्यंग्य था? मैं सतर्क तो बहुत रहती हूँ, क्या मेरे मनोभावों का आभास उसे मिल गया है? स्त्री का हृदय स्त्री बहुत शीघ्र पहचान लेती है। संभव है, उसे यह मालूम हो गया हो कि मैं उन पर आसक्त हूँ। अगर उसे यह पता लग गया, तो मुझे विश्वास है, वह यह कठिन त्याग भी मेरे लिये कर सकेगी। वह इतनी महत् है कि मेरे लिये अपना जीवन भी दे सकती है, तभी तो उसकी वस्तु अपहरण करने की इच्छा नहीं होती।

"अपनी इच्छाओं को दमन करना, यह सबसे बड़ी तपस्या है। यह ठीक है, परंतु क्या मैं वह तपस्या करने की अधिकारिणी हूँ। एक सप्ताह बाद मैं किसी की ग़ुलामी का दस्तावेज़ लिखकर उस पर हस्ताक्षर करूँगी, फिर मैं तपस्या कैसे कर सकती हूँ! पिता के जीवन की रक्षा करना मेरा परम कर्तव्य है, चाहे इसके लिये मुझे अपने विचारों और उद्देश्यों से हटना पड़े। जिनका जीवन मेरी सतत चिंता से विषमय हो गया है, उनके प्रति क्या मेरा यह कर्तव्य है कि मैं अपनी साध और उद्देश्य लेकर उनका ख़ून हो जाने दूँ? अपना प्राण खोना मुझे स्वीकार है, किंतु उन्हें किसी तरह असंतुष्ट नहीं करना चाहती।"

"आप किसे संतुष्ट नहीं करना चाहती हैं, डॉक्टर आनंदीप्रसाद को?" यह कहकर राजेंद्रप्रसाद ज़ोर से हँस पड़े।

कुसुमलता चौंककर उनकी ओर देखने लगी। भावावेश में उसके विचारों ने शब्दों को झंकृत कर दिया था, जिसका ज्ञान स्वयं उसे नहीं था। राजेंद्रप्रसाद दिन-भर की क्लांति शांत करने के लिये

बाग़ की शरण आए थे, और उन्होंने कुसुमलता के अंतिम शब्द सुनकर प्रश्न किया था।

कुसुमलता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप नीची गरदन किए बैठी रही।

राजेंद्रप्रसाद ने धीमे स्वर में कहा—"देवीजी, क्षमा कीजिएगा, मैं नहीं जानता था, आप किसी विचार में लीन हैं। आपको मैंने विरक्त किया है, इसलिये क्षमा कीजिएगा, मैं जाता हूँ।" यह कहकर वह जाने लगे।

कुसुमलता ने साहस कर कहा—"आप यहाँ आइए, मैं आप-से........" कहते-कहते वह रुक गई, क्योंकि साहस ने उसका साथ छोड़ दिया था।

राजेंद्रप्रसाद ने वापस आकर कहा—"कहिए, क्या कहती हैं?"

कुसुमलता ने सिर नत किए हुए कहा—"बैठिए, फिर कहती हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद एक दूसरी संगमरमर की बेंच पर बैठ गए।

कुसुमलता ने बड़े गंभीर शब्दों में कहा—"मैं यह विवाह नहीं करूँगी, आप पिताजी से कह दीजिए।"

राजेंद्रप्रसाद सब कुछ सोच सकते थे, लेकिन स्वप्न में भी उनके मन में यह विचार न उठा था कि कुसुमलता विवाह के प्रति अपनी असम्मति प्रकट करेगी।

उन्होंने चकित होकर कहा—"आप यह क्या कहती हैं!"

कुसुमलता ने दृढ़ शब्दों में कहा—"नहीं, मैं सत्य कहती हूँ। मैं यह विवाह नहीं करना चाहती। मैं हिंदू-घर की विधवा हूँ, वैधव्य जीवन व्यतीत करूँगी। इसी में मेरा कल्याण है, इसी तपस्या में मेरी निष्कृति है।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"देखता हूँ, आपकी सखी ने आपको अपना मतावलंबी कर लिया है। आपको चेला बनाकर अपनी छूत की बीमारी से आपको भी बीमार बना दिया है।"

कुसुमलता ने एक मलीन हँसी हँसकर कहा—"नहीं, मनोरमा का इसमें कोई अपराध नहीं। मैं अब तक भ्रम में भूली हुई अपना मार्ग नहीं देख पाती थी, परंतु अब मुझे मालूम हुआ है कि मेरा कर्तव्य क्या है। मनुष्य अपने पहले जीवन में यदि भूल करे, तो उसके यह मानी नहीं कि वह उसी भूल पर आजन्म क़ायम रहे, उसका सुधार कभी न करे। मैं अब अपनी भूल समझ गई हूँ, और उसका सुधार करना चाहती हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने किंचित् गंभीर होकर कहा—"परंतु तुम्हें विधवा कहना भूल होगी। तुमने तो अपने पति को कभी अपनी याद में देखा भी नहीं, फिर किस तरह अपने को विधवा कहती हो! यह समय सामाजिक सुधार का है, हम लोग समाज के ग़ुलाम होकर नहीं रहना चाहते, बल्कि उसे समयानुसार बदलना चाहते हैं। यह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है कि तुम गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर अपना कर्तव्य पालन करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है।"

कुसुमलता ने दृढ़ कंठ से कहा—"नहीं, मैं अपना नफ़ा-नुक़सान समझती हूँ। मेरा कल्याण इस विवाह में नहीं है, कदापि नहीं है।"

राजेंद्रप्रसाद ने पूछा—"यह आप कैसे जानती हैं ?"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"मेरा मन कहता है कि मैं इस विवाह से सुखी नहीं हो सकती। मैंने इस प्रश्न पर बहुत विचार किया है, और मैं इसी निष्कर्ष पर सदैव पहुँचती हूँ कि मेरा कल्याण वैधव्य जीवन व्यतीत करने में है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कुछ सोचते हुए-से कहा—"किंतु अब पीछे लौटना मुश्किल ही नहीं, असंभव है। सब कुछ तय हो गया है, आज से विवाह के केवल आठ दिन रह गए हैं। आपके विवाह को लेकर समाज में एक हलचल पैदा हो गई है। अब अगर हम लोग पीछे हटते हैं, तो......"कहते-कहते वह रुक गए।

कुसुमलता ने कहा—"लेकिन अब भी पीछे लौटना संभव है।"

राजेंद्रप्रसाद ने दुःखित शब्दों में कहा—"हाँ, अगर आप ज़िद करें, तो; लेकिन क्या आप जानती हैं कि इसका परिणाम बहुत शोचनीय हो सकता है, यहाँ तक कि सर साहब के जीवन पर भी आपत्ति आ सकती है। जिस मानसिक रोग से वह आक्रांत होकर जर्जरित हो गए हैं, वह आपसे पोशीदा नहीं। जब बाबूजी आपका विवाह तय करके आए, और उनसे वह सुखद संवाद कहा, तो उनके चेहरे पर संतोष की जो हँसी मैंने देखी थी, वह आपसे बयान नहीं कर सकता। उस दिन उनका आधा रोग जाता रहा, और इस समय वह पूर्ण स्वस्थ हैं। अगर आप उन्हें दुबारा बीमार करने में अपना कर्तव्य और कल्याण समझती हैं, तो ठीक है, वरना जो कुछ वह आपके लिये कर रहे हैं, वह सर्वथा शास्त्र-विहित और सामाजिक नियमों के अनुकूल है।"

कुसुमलता ने भय-विह्वल स्वर में कहा—"हाँ, यह अवश्य सोचने क़ाबिल बात है। मेरी ज़िद से उनके प्राणों पर संकट आ सकता है, परंतु............"

राजेंद्रप्रसाद ने प्रसन्न होते हुए कहा—"परंतु क्या?"

कुसुमलता ने कुछ हिचकिचाहट के साथ कहा—"परंतु मैं अपने मन की स्वयं मालिक नहीं हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने चकित होकर कहा—'इसके क्या अर्थ?"

कुसुमलता ने सिर नत कर कहा—"मैं विधवा हूँ अवश्य, लेकिन ......" कहते-कहते वह रुक गई। लाज ने गला दबा लिया।

राजेंद्रप्रसाद ने उत्कंठित होकर कहा—"लेकिन क्या? आप कहते-कहते रुक क्यों जाती हैं?"

कुसुमलता ने कहा—"अच्छा, मैं आपसे यह पूछती हूँ कि स्त्री का कर्तव्य क्या है?"

राजेंद्रप्रसाद ने पूछा—"यह प्रश्न क्यों ?"

कुसुमलता ने मलीन हँसी हँसकर कहा—"यह प्रश्न इसलिये पूछती हूँ कि विवाह के पहले मुझे अपना कर्तव्य तो मालूम हो जाय !"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"स्त्री का कर्तव्य है पति को संतुष्ट करना। देखिए, यह बड़ा विवाद-पूर्ण प्रश्न आपने किया है, जिसका दो शब्दों में उत्तर नहीं दिया जा सकता।"

कुसुमलता ने कहा—"आप दो शब्दों में क्यों, हज़ार, बल्कि उससे भी ज़्यादा शब्दों में उत्तर दें।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"इसके पहले कि मैं आपके प्रश्न का जवाब दूँ, आपसे यह पूछूँगा, किस स्त्री का ?"

कुसुमलता ने मुस्किराकर कहा—"उस स्त्री का, जो किसी अन्य से प्रेम करती हो, परंतु जिसे बाध्य होकर किसी और से विवाह करना पड़ता हो !"

यह कहकर कुसुमलता ने अपना सिर नत कर लिया। उसमें इतना साहस न था कि वह राजेंद्रप्रसाद की ओर देखती।

राजेंद्रप्रसाद ने कुछ सोचकर कहा—"ऐसी स्त्री का कर्तव्य यह है कि यदि वह प्रसन्न होना चाहती है, तो अपने अभिभावकों से कह दे कि अमुक व्यक्ति से विवाह करेगी, तभी उसका कल्याण है।"

कुसुमलता ने साहस करके कहा—"लेकिन अगर उस व्यक्ति से, जिससे वह प्रेम करती है, उसका विवाह होना असंभव है, तब वह क्या करे ?"

राजेंद्रप्रसाद ने कुछ सोचकर कहा—"तब तो उसे अविवाहित जीवन ही व्यतीत करना श्रेयस्कर होगा।"

कुसुमलता कुछ कहने जा रही थी कि किसी के पैरों की आहट मिली। वह कहते-कहते रुक गई। आगंतुका मनोरमा थी।

मनोरमा ने आकर कहा—"मैं तुम्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते परेशान हो गई, और तुम यहाँ बैठी वाद-विवाद कर रही हो!"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"आपने अपनी बीमारी के कीटाणु अपनी सखी के शरीर में भी प्रविष्ट करा दिए हैं।"

मनोरमा ने चकित होकर कहा—"मैं नहीं समझी, आप क्या कह रहे हैं?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"आज आपकी सखी कह रही हैं कि मैं डॉक्टर आनंदीप्रसाद से विवाह नहीं करूँगी।"

मनोरमा ने हँसकर कहा—"डॉक्टर साहब से न करेंगी, लेकिन आपसे तो करेंगी?"

यह कहकर मनोरमा हँसने लगी। राजेंद्रप्रसाद चुप हो गए, और कुसुमलता उठ खड़ी हुई।

कुसुमलता ने मनोरमा के पास आकर, कुछ क्रोधमय शब्दों में, कहा—"तुम्हें हमेशा मज़ाक़ सूझता है। पक्षियों का मरण है, परंतु बच्चों का खेल।" यह कहकर वह सवेग चली गई।

राजेंद्रप्रसाद ने मनोरमा से कहा—"यह तुम्हें क्या सूझा?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"यह सत्य है, मैं झूठ नहीं कहती। कुसुम तुमसे प्रेम करती है। मैं उसका यह भेद जानती हूँ।"

राजेंद्र अवाक् होकर मनोरमा की ओर देखने लगे।

मनोरमा ने बेंच पर बैठते हुए कहा—"मैं आज दो महीने से निरंतर उसकी भाव-भंगी निरख रही हूँ। वह अपने हृदय का भाव छिपाती है, लेकिन मुझसे छिपा नहीं सकती। मैं सत्य कहती हूँ, कुसुम तुमसे प्रेम करती है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कुछ सोचते हुए कहा—"तुम्हारा यह भ्रम है। ईर्ष्या का दूसरा नाम स्त्री है। तुम ईर्ष्या से ऐसा कहती हो।"

मनोरमा ने दुःखित स्वर में कहा—"तुम चाहे जो कुछ समझो,

लेकिन मैं तुम्हें यह विश्वास दिलाती हूँ कि मेरे मन में कुसुम के प्रति ईर्ष्या भाव का कभी उदय नहीं हुआ। मैं उसे अपनी सौत बनाने के लिये तैयार हूँ, और इस संबंध में उसका मत भी जानना चाहा था, परंतु उसने हँसकर टाल दिया। पहले मैं कुसुमलता के वैधव्य जीवन व्यतीत करने की समर्थक थी, परंतु जब मुझे मालूम हुआ कि वह तुमसे प्रेम करती है, मैंने कहना छोड़ दिया, और उसके विवाह की समर्थक हो गई। मैं यह देखती थी कि कुसुमलता धीरे-धीरे तुम्हारी ओर आकर्षित हो रही है। पहले मेरे मन में कुछ भय उत्पन्न हुआ, लेकिन वह भय अपने आप जाता रहा, और यह सोचा कि अगर दोनो सखियाँ साथ रहें, तो हमारा जीवन कितना सुखमय बीतेगा, परंतु कुसुमलता ने मेरे प्रस्ताव को ठुकरा दिया। मैं मन-ही-मन अनुमान करती रही कि शायद डॉक्टर आनंदीप्रसाद से विवाह-संबंध स्थिर हो जाने से यह बात जाती रहे, और कभी यह शक होता कि कहीं यह मेरी भूल न हो, इसलिये यह भाव किसी पर प्रकट नहीं किया। परंतु यहाँ आकर जो देखा, उससे मुझे निश्चय हो गया कि कुसुम तुमसे, केवल तुमसे विवाह करके प्रसन्न हो सकती है। जब तुम उसके सामने आ जाते हो, उसका म्लान मुख खिल जाता है, परंतु दूसरे ही क्षण चोरों की भाँति देखकर वह ज़बरदस्ती अपना मुख मलीन कर लेती है। उसके नेत्रों की उज्ज्वलता तो छिपाने से छिप नहीं सकती। जब तुम बात करते हो, तो वह मन-प्राण से तुम्हारी बातें सुनती है, उसकी कली-कली खिल जाती है। यह प्रेम के लक्षण नहीं, तो क्या हैं! मैं कहती हूँ, कुसुम तुम्हारे प्रेम में पागल है। उसका और हमारा, दोनो का कल्याण इसी में है कि तुम उससे विवाह करो, नहीं तो उसके अभिशाप से हमारे जीवन का सुख-स्वप्न नष्ट हो सकता है।" कहते-कहते उसके नेत्र सजल हो गए।

राजेंद्रप्रसाद ने सप्रेम उसका हाथ पकड़ते हुए कहा - "मनो, तुम्हारा यह विचार ग़लत है। कुसुमलता के मन में अगर कुछ ऐसा विकार है, तो वह डॉक्टर आनंदीप्रसाद के साथ विवाह हो जाने से जाता रहेगा। तुम वह बात कहती हो, जो सर्वथा असंभव है। मुझे अपने कर्तव्य का ज्ञान है। मैं तुम्हारे प्रति विश्वास-घात इस जीवन में तो नहीं कर सकता। मनुष्य का विवाह केवल एक बार और एक ही स्त्री से होता है, और इसी विशेषता से हम अन्य पशुओं से ऊपर हैं। इसी प्रकार स्त्री का विवाह केवल एक बार और एक पुरुष से होता है। यही हमारे हिंदू-धर्म की विशेषता है, उसका रहस्य है। हिंदू-समाज में विवाह एक धार्मिक, पवित्र संस्कार है, विषयोपासना नहीं। समय सदा बदलता रहता है। यौवन के उद्दाम के साथ मनुष्य के मस्तिष्क में अनेक विचार उठा करते हैं, जो समय पाकर शून्य में अदृश्य हो जाते हैं। कुसुमलता के मन में अगर यह दुर्बलता है, तो डॉक्टर आनंदीप्रसाद के साथ विवाह करने से जाती रहेगी। ऐसी अवस्था में उसका विवाह होना आवश्यक है।"

मनोरमा ने उठते हुए कहा —"मैंने आज यह भेद तुमसे कह दिया, जिसे मैं कई दिनों से कहना चाहती थी। अब तुम जानो। अगर कुसुमलता से तुम विवाह करो, तो मुझे इससे अधिक प्रसन्नता और किसी बात से नहीं हो सकती।"

राजेंद्रप्रसाद ने उठते हुए कहा—"चलो, फ़िज़ूल ख़यालातों से अपना दिमाग़ परेशान मत करो। जो बात असंभव है, वह कभी नहीं हो सकती।"

राजेंद्रप्रसाद और मनोरमा, दोनो अपने-अपने विचारों में मग्न चुपचाप हवेली की ओर चल दिए।